अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ

सम्पादक

आचार्य शिवपूजन सहाय
श्रीनलिनविलोचन शर्मा

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

विक्रमाब्द २०१७; शकाब्द १८८२; खृष्टाब्द १९६०

मूल्य सजिल्द पाँच रुपये मात्र

मुद्रक
नागरी प्रकाशन प्रा० लि० द्वारा
युगान्तर प्रेस, पटना-४

वक्तव्य

खत्री-स्मारक ग्रन्थ को पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें आनन्द हो रहा है। पुराने अलभ्य दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन भी परिषद् का एक उद्देश्य रहा है और उसकी पूर्त्ति की दिशा में इस ग्रन्थ का प्रकाशन एक विनम्र प्रयत्न है।

स्वर्गीय अयोध्याप्रसाद खत्री का निधन ४ जनवरी, १९०५ ई० में हुआ था। वे आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी कविता के युग-निर्देशक और सफल आन्दोलक के रूप में सदा स्मरण किये जायँगे। सन् १८७७ ई० में जिस समय खत्रीजी ने खड़ी बोली में कविता का आन्दोलन उठाया था, उस समय उर्दू और व्रजभाषा का ही प्रचलन था। वे देवनागरी लिपि और उसकी शैलियों में उर्दू या मिश्रित हिन्दी की बोलियों को हिन्दी ही मानते थे। खड़ी बोली में कविता-आन्दोलन और हिन्दी-शैली के निरूपण के पक्ष-विपक्ष में उन दिनों जो बौद्धिक संघर्ष हुआ, वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक अनमोल अध्याय है।

मुजफ्फरपुर (बिहार) की नवयुवक-समिति ने परिषद् के सामने उक्त ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रस्ताव के साथ ही उस समय तक उपलब्ध सामग्री भी परिषद् को सौंप दी थी। परिषद् ने खत्रीजी जैसे हिन्दी के सफल आन्दोलक और उन्नायक की स्मृति को चिरजाग्रत् रखने और उनके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करने के लिए प्रस्तुत स्मारक-ग्रन्थ के प्रकाशन का भार सहर्ष ग्रहण किया। परिषद् ने यथासाध्य खत्रीजी सम्बन्धी सामग्री की खोज की; जो प्राप्त हो सकी, वह प्रस्तुत ग्रन्थ में सन्निहित है। संस्मरण और शुभाशंसाओं के रूप में जिन साहित्य-मनीषियों और सहृदय विद्वानों ने अपनी रचनाएँ भेजने की कृपा की, हम उनके प्रति, परिषद् की ओर से, कृतज्ञता-प्रकाश करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सामग्री के जुटाने और समय-समय पर उचित परामर्श देने के लिए हम श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर' के विशेष उपकृत हैं। सच तो यह कि यदि उनकी प्रेरणा और साहाय्य हमें प्राप्त न होते, तो इस रूप में यह ग्रन्थ शायद ही प्रकाशित होता।

हम श्रीउदयशंकर शास्त्री के प्रति विशेष रूप से आभारी हैं, जिन्होंने कृपापूर्वक खत्रीजी-लिखित खड़ीबोली हिन्दी गद्य की प्रतिलिपि और मूल की प्रतिच्छवि (फोटोस्टाट)-प्रति भेजकर एक बड़ी भारी कमी पूरी की है।

अन्त में प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक-द्वय आचार्य श्रीशिवपूजन सहाय और आचार्य श्रीनलिनविलोचन शर्मा के प्रति हम परिषद् की ओर से हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

विश्वास है, हिन्दी-शोधकर्त्ताओं और जिज्ञासु पाठकों के लिए यह ग्रन्थ लाभदायक एवं प्रेरणाप्रदायक सिद्ध होगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना
पौष शुक्ल २, २०१७ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
परिषद्-संचालक

भूमिका

[१]

वर्त्तमान हिन्दी-संसार में साहित्यिक शोध और समीक्षा का अनुदिन विवर्द्धमान अनुराग देखकर ऐसा अनुभव होता है कि हिन्दी के पुराने और प्रतिष्ठित साहित्यकारों की ग्रन्थावलियों का प्रकाशित होना परमावश्यक है। ग्रन्थावली में ग्रन्थकार की सभी या अधिकांश रचनाएँ एक साथ ही मिल जाती हैं। इससे एक साहित्यसेवी की कृतियों का अध्ययन करने में सुविधा होती है। आज इस शोध-समीक्षा-प्रधान युग में ऐसी सुविधा बहुलांश में दुर्लभ हो गई है।

हिन्दी में ग्रन्थावलियों की संख्या कम है। ऐसे संग्रहालयों की संख्या भी कम है, जिनमें लब्धकीर्त्ति लेखकों की सभी रचनाएँ इकट्ठी मिल सकें। शोधकर्त्ताओं को सामग्री-संकलन के लिए इधर-उधर भटकना पड़ता है। किन्तु, ग्रन्थावली-प्रकाशन का महत्त्व अब समझा जाने लगा है। शोधोपयोगी सामग्री का संचय करनेवाले संग्रहालयों की ओर भी लोगों का ध्यान गया है। आशा है कि अब इस दिशा में बराबर प्रगति होती रहेगी।

इस ग्रन्थावली में खड़ी बोली के स्वनामधन्य अनन्य समर्थक श्रीअयोध्याप्रसादजी खत्री की सभी रचनाओं का संग्रह है। आधुनिक पुस्तकालयों में उनकी पुस्तकें नहीं मिलती थीं। उनके विषय में खोज करनेवाले विद्वानों को बड़ी निराशा होती थी। किसी-किसी पुरानी संस्था में उनकी कोई पुस्तक मिलती भी थी, तो वह इतनी जीर्ण-शीर्ण होती कि उपयोग अथवा व्यवहार में नहीं लाई जा सकती थी। बिहार में भी जिज्ञासुओं का समाधान करनेवाला कोई न था।

मुजफ्फरपुर-निवासी श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर' सुपरिचित साहित्यसेवी और नाट्यकलाविद् तथा कवि हैं। वे मुजफ्फरपुर की उस नवयुवक-समिति के प्राण हैं, जिसके द्वारा बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और बिहार-सेवा-समिति की स्थापना हुई थी तथा जिसने बिहार में कई लोकहितकर कार्य करके कीर्त्ति कमाई है। उसे इन महती संस्थाओं की जननी होने का श्रेय प्राप्त करानेवाले उसके कार्यकर्त्ता-सदस्यों में प्रमुख श्रीमथुराप्रसादजी दीक्षित, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, श्री 'नटवर' जी, श्रीरामधारी प्रसाद, श्रीराघवप्रसाद सिंह आदि साहित्यसेवियों के नाम सादर स्मरणीय हैं। उसी नवयुवक-समिति की ओर से 'नटवर' जी इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके खत्री-स्मारकोत्सव का आयोजन करने का संकल्प कर चुके थे। किन्तु, वर्त्तमान समय में सार्वजनिक संस्थाओं की जो आर्थिक स्थिति है, वह सर्व-विदित है। अतः, 'नटवर' जी को निश्चय करना पड़ा कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भार बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् को ही सौंपा जाय। उन्होंने मेरी भी राय लेने की कृपा की। मैंने उनके निश्चय का

स्वागत किया। वे पिछले कई वर्षों से इस स्मारक ग्रन्थ के लिए साधन जुटा रहे थे। जब काफी मसाला इकट्ठा हो गया, तब उसके प्रकाशन में उन्होंने मेरा सहयोग चाहा। उस समय मैं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का संचालक था। मैंने उनसे सम्पूर्ण पाण्डुलिपि माँगी। वे स्वयं आकर मुझे सारी सामग्री सौंप गये। मैंने परिषद् के संचालक-मण्डल की बैठक में उनके आवेदन-पत्र के साथ ग्रन्थावली के हस्तलेखों को उपस्थित कर दिया। स्वीकृति मिलने में कोई बाधा या कठिनाई न हुई। तब मैंने परिषद् के प्रकाशनाधिकारी श्रीअनूपलाल मण्डल को पूरी पाण्डुलिपि देकर छपाई की व्यवस्था करने की अनुमति दे दी। उसके बाद मैं परिषद् से अवसर ग्रहण करके कार्यमुक्त हो गया।

प्रस्तुत स्मारक ग्रन्थ का सम्पादन-कार्य आचार्य नलिनविलोचन शर्मा से सम्पन्न कराने के लिए संचालक-मण्डल ने स्वीकृति दे दी थी। अतः, उनकी सेवा में निरीक्षण-परीक्षण के निमित्त पाण्डुलिपि भेज दी गई। वास्तव में उन्होंने ही इसका आद्यन्त सम्पादन किया है। उनके सहयोगी के रूप में मुझे भी रहना पड़ा। श्री 'नटवर' जी का ऐसा ही आग्रह था। संचालक-मण्डल से इसकी भी स्वीकृति मिल गई थी। किन्तु, इस ग्रन्थ को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने का सारा श्रेय आचार्य नलिनजी को ही है। छपाई शुरू हो जाने के बाद भी उन्होंने और 'नटवर' जी ने बहुत-सी नई सामग्री का संग्रह करके उसका यथास्थान समावेश कराया। मेरे कार्यकाल में जो सामग्री उपलब्ध हुई थी, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण सामग्री ग्रन्थ छपते-छपते प्राप्त हुई। मुझे बड़ा सन्तोष है कि 'नटवर' जी की जिन्दगी का एक बहुत बड़ा मिशन पूरा हो गया और ऐसे शोधोपयोगी ग्रन्थ को विधिवत् सम्पादित करके सर्वाङ्गसुन्दर बनाने में आचार्य नलिनजी ने अपने अतिशय कार्यव्यस्त जीवन में से कुछ समय देने की कृपा और उदारता प्रदर्शित की। आशा है कि साहित्य-संसार के अनुसन्धायकों को इस ग्रन्थ के प्रकाशन से बहुत-सी नई बातों का पता लगेगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से इस स्मारक ग्रन्थ के प्रकाशित होने का जो सुअवसर मिला, उससे ऐसा अनुमान होता है कि खत्रीजी सचमुच 'खड़ी बोली' के परम श्रद्धालु भक्त और बड़ी सच्ची लगन के आन्दोलक थे। उनके पुण्य-प्रभाव से ही उनकी कृतियों को परिषद् जैसी प्रामाणिक संस्था का आश्रय मिला। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक स्थल पर उनके अदम्य उत्साह का उल्लेख किया है। मनुष्य की सचाई और श्रमशीलता ईश्वर द्वारा निश्चय ही पुरस्कृत होती है। खत्रीजी के निधन-काल के छप्पन वर्ष बाद आज साहित्य-क्षेत्र में उनका यशःस्तम्भ स्थापित हुआ है। इससे सहज ही ऐसा विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है कि भविष्य में अन्यान्य साहित्य-साधकों की कृतियाँ भी सुसम्पादित ग्रन्थावली के रूप में साहित्यिक गवेषणा के निमित्त सुलभ होंगी। परिषद् से ही आचार्य नलिनजी के सम्पादकत्व में 'सदल मिश्र-ग्रन्थावली' का प्रकाशन हुआ है। मिश्रजी और खत्रीजी का स्थान साहित्य के इतिहास में विशेष गौरवपूर्ण है। बिहार के इन दोनों साहित्यकारों की ग्रन्थावलियों के प्रकाशन को प्राथमिकता प्रदान करके राष्ट्रभाषा-परिषद् ने हिन्दी का महान् उपकार किया है।

भारतेन्दु-युग के लेखक आरा-निवासी बाबू शिवनन्दन सहाय खत्रीजी के मित्रों में थे। 'खड़ी बोली' में खत्रीजी की दृढ आस्था का वर्णन करते समय वे भाव-विभोर हो उठते थे।

खत्रीजी अपनी धुन के ऐसे पक्के थे कि अहर्निश उनका मन अपने लक्ष्य की ओर ही उन्मुख रहता था। वे सदैव 'खड़ी बोली की जय' का झण्डा लिये फिरते थे। भारतेन्दु-युग के ही साहित्यसेवी चम्पारन-निवासी पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र भी कहा करते थे कि खड़ी बोली में कविता लिखवाने के लिए खत्रीजी उनके पास तक पहुँच जाते थे। इसका संकेत आचार्य शुक्लजी ने भी अपने इतिहास में दिया है। मुजफ्फरपुर के प्रचण्ड साहित्यिक वक्ता श्रीयुद्धविक्रम मारुक, जो अन्त में संन्यासी होकर काशी में कैलासवासी हुए, खत्रीजी के सत्संगियों में थे। उनका भी कथन यही था कि लक्ष्य-सिद्धि में खत्रीजी की तत्परता विलक्षण थी। वे खत्रीजी को 'खड़ी बोली' हिन्दी का अन्धभक्त तक कह जाते थे। खत्रीजी की प्रत्येक साँस में खड़ी हिन्दी रमी हुई थी। मारुकजी बड़े गर्व से उन्हें कर्मयोगी कहते थे। किन्तु, इन सारी कही-सुनी बातों की प्रामाणिकता का आधार यह ग्रन्थ जिज्ञासु पाठकों के सामने है। इसके लिए सबसे पहले 'नटवर' जी ही बधाई के पात्र हैं। परिषद् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में तो प्रत्येक सहृदय पाठक सुख अनुभव करेगा।

श्रीतुलसी-जयन्ती,
शकाब्द १८८१ } शिवपूजन सहाय

[२]

अयोध्याप्रसाद खत्री ने खड़ी बोली, यानी आधुनिक हिन्दी, के साहित्य के प्रमुख अंग, काव्य, को उसका उचित स्थान दिलाने में—उनसे जो इसके विरोध के लिए कटिबद्ध थे—जो कार्य किया था, वह अब, जब हम सारी चीज को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की स्थिति में हैं, इतना महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है कि हम समझ नहीं पाते कि उनके समसामयिकों ने, या उनके तुरत बाद के लोगों ने, उनकी दूरदर्शिता, निष्ठा एवं प्रचेष्टा की उपेक्षा क्यों की ! सच कहा जाए, तो खत्रीजी के समसामयिक उतने दोषी नहीं हैं, जितने तुरत बाद की पीढ़ी के वे विद्वान्, जिन पर यह दायित्व था कि वे आधुनिक युग के आविर्भाव-काल की अन्तर्धाराओं का सम्यक् विश्लेषण करते। खत्रीजी के समसामयिकों ने उनका विरोध करके उन्हें निषेधमूलक ही सही, एक प्रकार की मान्यता तो दी, किन्तु हिन्दी के आधुनिक साहित्येतिहास-लेखकों ने अवश्य ही सतह पर सहज ही दीख पड़नेवाली तरंगें ही देखीं, गहराई में चलने और एक दूसरे को काटनेवाली धाराओं को डुबकी लगाकर देखने-समझने की कोशिश नहीं की। जो पाठक मात्र होता है, वह उसे पढ़ता है जो सामने आता है, लेकिन जो उसका इतिहास लिखता है, उसका कर्त्तव्य होता है कि वह प्रत्यक्ष के पीछे जो परोक्ष शक्तियाँ काम कर चुकी हों, या कर रही हों, उन्हें भी समझे और समझाए : 'डायल' पर ही काल की गति अंकित होती है, लेकिन अंकन-प्रक्रिया समझने के लिए डायल के नीचे छिपे यंत्र की जानकारी जरूरी होती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने ऐसी जानकारी हासिल करने की जरूरत नहीं समझी है, इसी के अनेक परिणामों में खत्रीजी की उपेक्षा भी है।

श्रीअयोध्याप्रसाद खत्री द्वारा लिखित तथा संपादित कृतियों के इस संग्रह में प्रथम है 'हिन्दी व्याकरण' ('A Hindi Grammar'), जिसका प्रकाशन १८७७ ई० में

हुआ था। इसका मुद्रण बिहारबन्धु प्रेस, बाँकीपुर, पटना से हुआ था और मूल्य था चार आने। खत्रीजी के उस अव्यवस्थित-से प्रतीत होनेवाले उत्साह में भी, जिस पर शुक्लजी आदि ने व्यंग्य करना जाने क्यों आवश्यक समझा था, एक पद्धति थी। उनकी मान्यता थी कि हिन्दी और उर्दू में अन्तर केवल लिपि के कारण है और कि फारसी लिपि में न लिखी जाए तो उर्दू हिन्दी ही है। इस सिद्धांत के अनुरूप ही उन्होंने हिन्दी व्याकरण की भी रचना की थी। इस पुस्तक में उन्होंने एक साथ ही हिन्दी, उर्दू तथा अँगरेजी के समानार्थक व्याकरणशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किए हैं; वस्तुत: पहले उर्दू के, उसके बाद हिन्दी के और तब अँगरेजी के ऐसे शब्द दिए हैं। उदाहरणार्थ, पहले ही पृष्ठ पर, हिन्दी व्याकरण को पाँच खंडों में विभक्त करते हुए, पहले खंड का शीर्षक यों दिया है :

"पहला बाब	पहिला खंड	Part I
बयान हरूफ़	वर्ण-विचार	Orthography."

समूची पुस्तक में यही पद्धति अपनाई गई है, और हिन्दी भाषा-विषयक खत्रीजी की धारणा के सर्वथा अनुरूप है।

हिन्दी व्याकरण विषयक यह पुस्तक केवल ३६ पृष्ठों की है और इसमें व्याकरण के ही अंग के रूप में विराम-चिह्नों पर भी संक्षेप में विचार किया गया है।

१८८७ ई० में खत्रीजी ने हिन्दी के उस रूप के छन्द:शास्त्र पर भी एक पुस्तिका प्रकाशित की थी, जिस रूप को वह मौलवी-स्टाइल की हिन्दी कहने में, और पण्डित-स्टाइल की हिन्दी से उत्कृष्टतर घोषित करने में, संकोच का अनुभव नहीं करते थे। इस पुस्तक का तो शीर्षक ही हिन्दी विषयक उनकी उपर्युक्त मान्यता का स्पष्ट परिचायक है—'मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्द भेद'। खत्रीजी ने फ़र्द, ग़ज़ल, क़सीदा, तशबीब, रुबाई, क़िता, मसनवी, तरजीय बंद, मोसम्मित, मुस्तज़ाद इन 'अरबी की चालू (ल?) पर हिन्दी में दस तरह के छन्द' माने और इनके संक्षिप्त विवरण और कुछेक उदाहरण प्रस्तुत किये। उदाहरण सौदा, ज़ौक, मीर तक़ी आदि के काव्य से दिये गये हैं और यहाँ हिन्दी-उर्दू की वह समानान्तरता भी नहीं है, जो व्याकरण विषयक पुस्तिका में दिखाई गई है।

खत्रीजी की उपेक्षा हिन्दी के प्रेमियों और विद्वानों ने उनके जीवन-काल में ही की और बाद में भी उनकी हिन्दी के लिए की गई सेवाओं के महत्त्व को स्वीकृति नहीं मिली। मैंने इस भूमिका के प्रारम्भ में अपना विचार ही नहीं, बहुतों का भाव व्यक्त किया है, जब इस बात का संकेत किया है। इसका कारण केवल यही नहीं था कि व्रजभाषा पद्य के प्रेमी खत्रीजी के खड़ी बोली के पद्य के आग्रह से क्षुब्ध थे, या कि उनकी शास्त्रार्थवाली मनोवृत्ति अनायास विरोध का वातावरण उत्पन्न करती थी। वास्तविक कारणों में से प्रमुख यह प्रतीत होता है कि हिन्दी की जिस 'स्टाइल' को वह आदर्श हिन्दी घोषित करते थे, वह राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की हिन्दी, या महात्मा गांधी तक की हिन्दुस्तानी बनने पर भी, हिन्दी-प्रेमियों को कठोर बनने के लिए ही बाध्य करती रही। खड़ी बोली में पद्य-रचना हो, इसके लिए खत्रीजी ने जिस आन्दोलन का नेतृत्व किया था, उसके प्रबल समर्थकों में एक पं० श्रीधर पाठक ने भी खत्रीजी की इस 'स्टाइल' की हिन्दी के विरुद्ध विचार व्यक्त करना आवश्यक समझा था।

कटु होने पर भी वस्तुस्थिति यह है कि खड़ीबोली पद्य के लिए खत्रीजी का आग्रह ब्रजभाषा पद्य के प्रति घृणा में परिणत हो गया था, जिसके फलस्वरूप उनका दूरदर्शिता-पूर्ण भाषा-आन्दोलन खड़ी बोली के समर्थकों के लिए भी कुछ अंशों में अग्राह्य सिद्ध हुआ।

सन् १८७७ ई० में ही प्रकाशित खत्रीजी की तीसरी पुस्तिका अलंकारशास्त्र विषयक है। सौभाग्य से इसका हिन्दी शीर्षक है 'मौलवी साहब का साहित्य', न कि मौलवी स्टाइल की हिन्दी का साहित्य ! किन्तु अँगरेजी का शीर्षक खत्रीजी के पूर्वाग्रह का संकेत करता ही है : अँगरेजी का शीर्षक है 'The Arabic Rhetoric Introduced by Moulwi into Hindi.' इस पुस्तिका में अरबी साहित्य की परम्परा से प्राप्त उन अलंकारों के लक्षण-उदाहरण हैं, जो उर्दू काव्य में सन्निविष्ट हो गये है। इनका विवरण यदि ज्ञान-वर्धन के उद्देश्य से किया गया होता, तो कोई बात न थी; इस प्रकार का, किन्तु विशदतर ग्रन्थ तो आज भी अपेक्षित ही है; आपत्तिजनक यह मालूम हुआ होगा कि सम्भवतः इसका भी उद्देश्य 'मुंशी स्टाइल' की हिन्दी के आदर्श रूप का प्रतिपादन ही था ! खत्रीजी के विरोधियों ने भी अपने विरोध-भाव का रहस्य ठीक-ठीक नहीं समझा था। रहस्य स्पष्ट ही यह था कि ब्रजभाषा में पद्य-रचना हो या न हो, खड़ी बोली में हो तो हो, किन्तु यह कैसे हो सकता था कि व्याकरण, छन्दों और अलंकारों की समस्त प्राचीन भारतीय परम्पराएँ बहिष्कृत और उर्दू की स्वीकृत हो जातीं ! वस्तुतः, खत्रीजी के प्रति विरोध के पीछे यही अव्यक्त मनोविज्ञान था, जिसका स्पष्ट निर्देश अब तक किसी ने किया नहीं है। खत्रीजी का विरोधी नहीं, उनका प्रशंसक ही इस बात को जरूरी समझ सकता था कि उनके विरोधियों के मनोविज्ञान का विश्लेषण होना चाहिए। इन पंक्तियों का लेखक खत्रीजी का ऐसा ही प्रशंसक है।

प्रस्तुत ग्रन्थावली में चौथी पुस्तक है 'खड़ी बोली-आन्दोलन, अर्थात् खड़ी बोली-पद्य सम्बन्धीय आन्दोलन, जो पूर्व काल में हुआ था, बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री द्वारा संकलित, श्री पं० भुवनेश्वर मिश्र द्वारा सम्पादित'। खड़ी बोली-पद्य सम्बन्धी साहित्यिक विवाद हिन्दोस्थान के नवम्बर, १८८७ ई० से एप्रिल, १८८८ ई० तक के अंकों में ब्रजभाषा और खड़ी बोली के पक्षधरों के खंडन-मंडन के रूप में चला था। इस पुस्तक में इसी विवाद के महत्त्वपूर्ण अंश संकलित हैं। अन्त में १९०१ ई० के The Behar Times के कुछ अंकों में प्रकाशित टिप्पणियाँ तथा भारतमित्र के १६ मार्च, १९०१ ई० के अंक में प्रकाशित एक टिप्पणी भी हैं। इस विवाद में मुख्यतः अयोध्याप्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक खड़ी बोली पद्य के, और राधाचरण गोस्वामी एवं प्रतापनारायण मिश्र ब्रजभाषा पद्य के समर्थकों के रूप में दीख पड़ते हैं।

पाँचवी संगृहीत पुस्तक, वस्तुतः खत्रीजी की सब से बड़ी देन है, यद्यपि इसमें उनकी लिखी भूमिका मात्र है, रचनाएँ तो औरों की ही हैं, जिनका संग्रह-संपादन खत्रीजी ने किया है। इस पुस्तक का पहला संस्करण १८७७ ई० में श्रीविश्वनाथ भट्ट के द्वारा नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर, में मुद्रित हुआ था। इस पुस्तक का शीर्षक है 'खड़ी बोली का पद्य, पहिला भाग।' १८८८ ई० में इसका अभिनव संस्करण डब्ल्यू० एच्० ऐलेन एण्ड को०, १३ वाटरलू प्लेस, लन्दन, से मुद्रित हुआ। इसके मुख-पृष्ठ पर संकलयिता के रूप में खत्रीजी का नाम है

ग्रौर सम्पादक के रूप में फ्रेडरिक पिंकाट, एम्० ग्रार० ए० एस्०, का। दोनों संस्करणों की प्रतियाँ काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के ग्रार्यभाषा-पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। वहाँ के पुस्तकाध्यक्ष ने दोनों के सहारे पुस्तक की वह प्रतिलिपि तैयार की है, जो इस संग्रह में प्रस्तुत की गई है। प्राचीनतर होने के कारण मुख्य ग्राधार मुजफ्फरपुरवाला संस्करण ही रहा है। लन्दनवाली प्रति में जो भिन्नताएँ हैं, उनका यहाँ यथास्थान निर्देश कर दिया गया है। लन्दनवाले संस्करण की भूमिका में खड़ी बोली पद्य के समर्थन में जितनी दृढ़ता के साथ पिंकाट ने लिखा है, उससे तुलनीय कटुता के साथ ग्रियर्सन ने उसकी ग्रवज्ञा की है।[1] खत्रीजी ने 'खड़ी बोली के पद्य' की स्वलिखित भूमिका में खड़ी बोली को 'ठेठ हिन्दी, पण्डितजी की हिन्दी, मुंशीजी की हिन्दी, मौलवी साहब की हिन्दी तथा यूरेशियन हिन्दी' इन पाँच वर्गों में विभक्त किया है, जिनमें से तीसरे को ही वे ग्रादर्श मानते थे। ठेठ हिन्दी के पद्य के उदाहरण के रूप में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द; मुंशीजी की हिन्दी के उदाहरण के रूप में राय सोहनलाल, हरिश्चन्द्र, महेशनारायण, मौलवी इलताफ हुसैन; ग्रौर पण्डितजी की हिन्दी के उदाहरण के रूप में चन्द, लक्ष्मी प्रसाद, सत्यानन्द ग्रग्निहोत्री, के पद्य संगृहीत हैं। पुस्तक के ग्रन्त में यह "सूचना' है कि 'मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छंद-भेद' ग्रौर 'मौलवी साहब का साहित्य' छपकर तैयार है।"

प्रस्तुत संग्रह में, इसके बाद, खत्रीजी के दो लेख उद्धृत हैं। ये 'समालोचक' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुए थे। इस पत्र को १९०२ ई० में गोपालराम गहमरी ने जयपुर से निकाला था।

फिर, इस संग्रह का दूसरा खण्ड है, जो हिन्दी-प्रेमियों के द्वारा खत्रीजी का 'स्मृति-तर्पण' है। 'स्मृति-तर्पण' में सम्मिलित होनेवाले ग्रधिकांश विद्वान् श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर' की प्रेरणा से ही इस पुण्य-कार्य में योग देने का ग्रवसर पा सके हैं, ग्रौर सत्य तो यह है कि प्रथम खण्ड हो या द्वितीय खण्ड या परिशिष्ट, किंबहुना ये पंक्तियाँ भी, 'नटवर' जी के परिश्रम ग्रौर प्रेरणा से ही प्रस्तुत हो पा रहे हैं।

पुस्तक में, चूँकि यह सामग्री बाद में प्राप्त हुई, 'परिशिष्ट' के रूप में, खत्रीजी द्वारा संकलित ग्रौर १८७७ में प्रकाशित 'खड़ी बोली का गद्य', एवं 'खड़ी बोली का पद्य, दूसरा भाग' संकलित किये गये हैं। 'खड़ी बोली का पद्य' के प्रथम भाग में 'मुंशी-स्टाइल' की हिन्दी के कुछ उदाहरण दिये गये थे, इसमें भी एक है। इसके ग्रतिरिक्त 'मौलवी स्टाइल' 'पण्डित-स्टाइल', ग्रौर 'यूरेशियन स्टाइल' के पद्य के भी उदाहरण हैं। इस पुस्तक की खण्डित प्रति ही सुलभ हो पाई, ग्रत: यह ग्रपूर्ण रूप में ही संकलित है।

साहित्य-विषयक शोध-क्षेत्र में यह तात्त्विक ग्रनुसन्धान (फंडामेंटल रिसर्च) की दिशा में एक प्रयास है। किन्तु इस सम्बन्ध में विशेष कुछ कहने का ग्रधिकार हमें नहीं।

१९-१२-६०

नलिनविलोचन शर्मा

१, संगृहीत 'खड़ी बोली आन्दोलन', पृ० ८५-८६, द्रष्टव्य।

विषयानुक्रमणी

अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ



स्वर्गीय अयोध्याप्रसाद खत्री

खण्ड १

स्व० अयोध्याप्रसाद खत्री

की

कृतियाँ

स्वरचित तथा संपादित

हिन्दी व्याकरण

जिसको

"संस्कृत जनित यावनी शब्द संग्रह" के ग्रन्थकर्त्ता

अयोध्याप्रसाद खत्री

ने बनाया

बिहार बन्धु प्रेस, बांकीपुर
पटना
१८७७

मूल्य ।) आने

हिन्दी व्याकरण

A Hindi Grammar

मनुष्य लोग अपने मन की बात दूसरे पुरुष को दो प्रकार से जना सकते है— १. बातचीत करके, और २. लिख करके।

व्याकरण के बिन जाने शुद्ध-शुद्ध बोलना या लिखना किसी भाषा का नहीं हो सकता।

व्याकरण-विद्या से शब्दों को अपनी-अपनी ठीक ठौर पर जमाने, शुद्ध बोलने, बाँचने और लिखने का ज्ञान होता है।

हिन्दी-व्याकरण पाँच खंडों में बाँटा गया है— १. वर्ण-विचार, २. शब्द-विचार, ३. वाक्य-विचार, ४. चिह्न-विचार और ५. छन्द-विचार।

पहला बाब पहिला खंड Part I

बयान हुरूफ वर्ण-विचार Orthography

वर्ण-विचार अक्षरों को और शब्दों के विवर्ण आदि को सिखलाता है। शब्द एक वा एक से अधिक अक्षरों से बनता है, जैसा, आ, राम, कृष्ण इत्यादि।

हुरूफ अक्षर Letter

अक्षर बुद्धिमानों के बनाये हुए चिह्न है।

हिन्दी में अक्षरों के भी अर्थ होते हैं। जैसा, अ = विष्णु, आ = शिव, इ = कामदेव ऐसा ही और भी।

हिन्दी में अक्षर ४९ हैं, और उनके दो भेद हैं—१. स्वर, और २. व्यंजन।

हुरूफ इल्लत स्वर Vowels

स्वर वह है, जो व्यंजन को सहायता दे, और जिसका उच्चारण आपही हो सके।

हुरूफ सहीह व्यंजन Consonants

व्यंजन वह है, जिसका उच्चारण बिना स्वर की सहायता के न हो सके।

स्वर १६ हैं—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः।

मुख्य स्वर ९ हैं—अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ।

इनमें से अ इ उ ऋ लृ इन पाँच के दीर्घ भी होते हैं, परंतु ए, ऐ, ओ, औ, सर्वदा दीर्घ ही रहते हैं। इनके ह्रस्व नहीं होते, और ये उन्हीं पाँचों में से योग करने से बने हैं। जैसा :—

अ + इ = ए, अ + ए = ऐ, अ + उ = ओ, अ + ओ = औ।

अनुस्वार और विसर्ग व्यंजन से उत्पन्न होते हैं। जैसा, देवम् वा देवं, दुर् + ख = दुःख।

फिर स्वरों के दो रूप हैं—वर्ण रूप, और मात्रा रूप।

व्यंजन ३३ हैं—

क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह। क्ष, त्र, ज्ञ—ये तीनों संयोगी अक्षर हैं। क + ष = क्ष, त + र = त्र, ज + ञ = ज्ञ।

स्वर के तीन भेद हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत।

इल्लत मजहूल ह्रस्व स्वर वा एकमात्रिक Short Vowels

अ इ उ ऋ लृ।

इल्लत मारूफ दीर्घ स्वर वा द्विमात्रिक Long Vowels

आ ई ऊ ॠ ॡ ए ऐ ओ औ।

अं को अनुस्वार और अः को विसर्ग कहते हैं।

इल्लत मकरून प्लुत या त्रिमात्रिक Lengthened Vowels

दूर से बुलाने में, रोने में, गाने में शब्द का अंत स्वर तान कर बोला जाता है। जैसा, अरे गोपला ! यहाँ 'गोपला' में 'ला' का 'आ' प्लुत बोला जायगा।

हरकत मात्रा Medials

जब स्वर, व्यंजन को सहायता देने जाता है, तो उसका रूप बदल जाता है, और उसीको मात्रा कहते हैं।

स्वरों के नीचे मात्राओं के स्वरूप।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः।

। ा ि ी ु ू ृ ॄ लृ ॡ े ै ो ौ ं : ।

व्यंजन अक्षरों के तीन विभाग हैं—स्पर्श, अन्तस्थ और उष्म। क से म तक स्पर्श कहलाते हैं, स्पर्श वर्ण के पाँच भाग हैं। क ख ग घ ङ, कवर्ग। च छ ज झ ञ, चवर्ग। ट ठ ड ढ ण, टवर्ग। त थ द ध न, तवर्ग। और प फ ब भ म, पवर्ग। य र ल व, को अन्तस्थ और श ष स ह को उष्म कहते हैं।

हिंदी की अपेक्षा संस्कृत में अक्षर अधिक हैं; क्योंकि ऋ ॠ लृ ॡ ये स्वर, और ङ ञ ण श क्ष ज्ञ—ये व्यंजन केवल संस्कृत में आते हैं।

अक्षर के अंत में 'कार' लगाने से भी वही अक्षर समझा जाता है कि जिसके अंत में यह लगाया जाय। जैसा, ककार = क। र को रकार और रेफ भी कहते हैं। र तीन प्रकार का लिखा जाता है, १. समूचा, २. अक्षर के नीचे और ३. अक्षर के ऊपर। जब समूचा लिखा जाता है, तब उसको रकार कहते हैं, और जब स्वर से हीन होकर अपने अगले अक्षर के ऊपर चला जाता है, तो उसको रेफ कहते हैं, और जब पिछले में युक्त होता है, तो कोई उसकी संज्ञा नियत नहीं है, और वही स्वर हीन होकर पदों के अंत में विसर्ग हो जाता है।

व्यंजन को हल भी कहते हैं और उसका चिह्न यह (्) है।

मखरज। अक्षरों के उच्चारण स्थान। Pronouncing Organs

अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग इतने अक्षर कण्ठ से बोले जाते हैं, और इसीसे ये कंठ्य कहलाते हैं। इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श, ये तालू अर्थात् दाँतों से कुछ ऊपर जीभ लगाने से बोले जाते हैं, और इसी से ये तालव्य कहलाते हैं। ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष ये मूर्धा अर्थात् तालू से भी ऊपर जीभ लगाने से बोले जाते हैं। और ड, ढ, जैसे उच्चारण किये जाते हैं, वैसे ही ड़, ढ़, भी। परन्तु इनके उच्चारण में जीभ का अग्र उलटा कर मूर्धा से लगाया जाता है। इन सबको मूर्धन्य कहते हैं। लृ, ॡ, त, थ, द, ध, न, ल, स, ये दाँतों पर जीभ लगाने से बोले जाते हैं, इसीलिए इनको दंत्य कहते हैं। उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म, ये होठों से निकलते हैं, इसी से इन्हें ओष्ठ्य कहते हैं। ङ, ञ, ण, न, म, ये अपने-अपने वर्गों के स्थान और नासिका से बोले जाते हैं, और इसी से अनुनासिक कहाते हैं। ए, ऐ, कंठ-तालू से; ओ, औ, कंठ और ओष्ठ से; व दाँत और होठ से, और अनुस्वार नासिका से बोले जाते हैं।

इत्तफाक हरूफ सहीह संयोग The Union of Consonants

दो वा अधिक हलों के मिलने को संयोग कहते हैं, और संयोग होने पर स्वर वर्ण में मिल जाता है। यदि मिलने का उनके स्थान न हो, तो उनके नीचे हल का चिह्न कर देते हैं। जैसा, 'सत्य' शब्द में तकार हल है, और यकार स स्वर में मिल गया है।

व्यंजन के संयोग में अन्त के व्यंजन का तो समूचा, और आदि के व्यंजन का आधा स्वरूप लिखा जाता है। पर ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ ये संयोग के आदि में भी सम्पूर्ण ही लिखे जाते हैं।

तशदीद द्वित्व Double

जब एक ही व्यंजन दो बार लिखे जाते हैं तब उनको द्वित्व कहते हैं। जैसा, कुत्ता, पट्टा, छप्पर इत्यादि।

ख, छ, ठ, थ, फ के द्वित्व में अपने-अपने वर्ग का पहिला अक्षर हो जाता है। जैसा, रक्खा, अच्छा, गट्ठा, पत्थर इत्यादि।

हिज्जे विवर्ण Spelling

विवर्ण वह है, जो शब्द के अक्षरों को विलग-विलग करके बतला दे। जैसा, पोथी (विवर्ण)

प + ओ = पो } = पो + थी = पोथी ।
थ + ई = थी }

तरीकुल अकीम लिखने की रीति Rules for writing

एक शब्द को एक लकीर में लिखना चाहिए ।

हिन्दी में बिर्ले अक्षर के ऊपर समूची लकीर नहीं दी जाती, इसलिए शब्दों के लिखने में लकीर देने का बहुत ध्यान रखना चाहिए । लिखने में ह्रस्व, दीर्घ और दंत्य, तालव्य श का भी बड़ा विचार रखना चाहिए ।

नीचे लिखे हुए वाक्यों में शब्दों के विवर्ण को ठीक करो—

श्री शुकदेव मुनि बोले, की महाराज ! ग्रिष्म की अती अविती देख, त्रिष पावश पर्चण्ड प्रिथ्वी के पमू जिव जन्तू कि दया बीचार, चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चड़ आया, तीस समय घन यों गर्जता था, सोइ तो धौंसा बजता था, और बरन बरन की घटा यों घीर आइ थी, सोइ सुर वीर रावत थे, तिनके विच विच बिजली कि दमक सस्त्र की सी चमक थी, बग पांती ठोर-ठोर पर स्वेत ध्वजा सी फहरा रहि थि, दादूर, मोर, कड़खें तों की भांति भांति जस बखानते, बड़ी बड़ी बुंदों की झड़ि बानों की सी झड़ी लगी थी ।

णत्व विधान

ऋ, ॠ, र, और मूर्धन्य ष के आगे न हो, तो वह मूर्धन्य ण हो जाता है । जैसा, नृणाम, तिसृणाम् चतसृणाम् इत्यादि ।

यदि स्वर वर्ण वा कवर्ग, पवर्ग, य, व, ह और अनुस्वार व्यवधान हो, तौ भी न के स्थान में ण हो जाता है । जैसा, करणम्, कराणाम्, करिणा, गुरुणा इत्यादि ।

नीचे लिखे हुए शब्दों को दन्त्य न से नहीं लिखना चाहिए—

वीणा, गुण, कोण, पण, कल्याण, लवण, कृष्ण, वाणी, मणि, वेणी, फणी, कणिका, कंकण, नारायण, अणु, वेणु, गण, शोण, वणिक, विपणि किंकिणी, गणित, पूर्ण इत्यादि ।

षत्व विधान

अ, आ, भिन्न स्वर और क, र, ल के परे प्रत्यय का जो दन्त्य सकार होता है, उसके स्थान में मूर्धन्य षकार होता है । जैसा, मुनिषु, गुणिषु, सुधीषु, साधुषु इत्यादि ।

अनुस्वार और विसर्ग मध्य में रहने से भी दन्त्य स के स्थान में मूर्धन्य ष होता है । जैसा, आशीःषु, धनुःषु इत्यादि ।

नीचे लिखे हुए शब्दों को कवर्गी ख से नहीं लिखना चाहिए—

वाष्प, शष्प, पुष्प, तूष, विषय, पाषाण, कुष्मांड, विष, पाषंड, गंडूष, आषाढ़, तुषार, ग्रीष्म, उष्म, मेष, मृषा, पुरुष, कलुष, वृष, द्वेष, तृषा, दोष, हर्ष, वर्ष, शीर्ष, ईर्षा, कृषक, भाषा, कोष इत्यादि ।

'स' हल

बहुत से शब्द ऐसे है कि जिनके आदि में स है, और उनका उच्चारण इ वा अ के संयुक्त करते हैं, सो अशुद्ध है। जैसा—

शब्द	अशुद्ध	उच्चारण	शुद्ध उच्चारण
स्त्री	इस्त्री	Stri	स्त्री
स्थान	अस्थान	Sthan	स्थान
स्थिर	अस्थिर	Sthir	स्थिर
स्थल	अस्थल	Sthal	स्थल
स्मरण	अस्मरण	Smaran	स्मरण
स्मृति	अस्मृति	Smriti	स्मृति
स्पष्ट	अस्पष्ट	Spasht	स्पष्ट
स्पर्श	अस्पर्श	Sparsa	स्पर्श
स्थापित	अस्थापित	Sthapit	स्थापित
स्थावर	अस्थावर	Sthawar	स्थावर
स्कूल	इस्कूल	School	स्कूल
स्टाम्प	इस्टाम्प	Stamp	स्टाम्प

ब और व के उच्चारण का विचार

बहुतेरे शब्दों का उच्चारण अन्तस्थ व के स्थान में पवर्गी ब करते है; सो अशुद्ध है। चिताया जाता है कि उन शब्दों का उच्चारण शुद्धपूर्वक करो, नहीं तो उच्चारण और विवर्ण दोनों अशुद्ध हो जाने से कोष में ब की पृष्ठ में व क्यों कर पाओगे? और बोली और लिखावट भी तुम्हारी अशुद्ध समझी जायगी।

शब्द	उच्चारण	शब्द	उच्चारण
वंश	Vansh	वाक्य	Vakya
वक्ता	Vakta	वारिद	Varid
वर्ग	Varg	विक्रमादित्य	Vikramaditya
वर्षाकाल	Varshakal	विद्या	Vidya
वशिष्ठ	Vashishth	व्याकरण	Vyakaran

द्विधा (In a two-fold manner)

बहुतेरे शब्द ऐसे हैं कि जिनका विवर्ण दो प्रकार से होता है, परन्तु अर्थ में बीच नहीं पड़ता; जैसे,

शब्द	शब्द	अर्थ	शब्द	शब्द	अर्थ
श्रेणी	श्रेणि	वर्ग	प्रतीकार	प्रतिकार	बैर का बदला
रजनी	रजनि	रात	प्रतीघात	प्रतिघात	पीछा मारना
रात्री	रात्रि	रात्र	सूआ	सूगा	तोता
राजी	राजि	श्रेणी			इत्यादि।

बहुतेरे शब्द ऐसे हैं कि जिनमें दन्त्य स के स्थान में तालव्य श लिख जाने से अर्थ में अन्तर होता है; जैसा,

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
सम	बराबर	शम	चैन
सर	सरोवर	शर	तीर
सक्त	अनुरक्त	शक्त	बलवान
सक्ति	अनुरक्ति	शक्ति	बल
सब	सकल	शव	मृतक
सप्त	सात	शप्त	श्रापित
अंस	कांधा	अंश	खंड
सित	उजला	शित	ठंढा
स्त्रुत	बाढ़	श्रुत	सुना हुआ
सकल	सब	शकल	चमड़ा

बहुतेरे शब्द ऐसे हैं कि जिनका अर्थ ह्रस्व-दीर्घ के कारण पलट जाता है; जैसा—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
कूल	किनारा	कुल	वंश
दिन	वासर	दीन	दुखिया
कुट	पहाड़	कूट	कपट
किल	निश्चय	कील	खूँटी
सुत	बेटा	सूत	डोरा
चिर	बहुकाल	चीर	कपड़ा
दुत	दूर हो	दूत	एलची
इति	पूरा	ईती	उपद्रव

बिर्ले शब्दों का उच्चारण लिखे हुए वर्ण के अनुसार नहीं होता; जैसे—

शब्द	उच्चारण
कल	कल्ह
सब	सभ
सिंह	सिंघ

व्याकरण-सम्बन्धी शब्दों के धातु

शब्द	वाक्य-खण्ड	भाषा	लिंग	धातु
व्याकरण	संज्ञा	संस्कृत	पुल्लिंग	वि (बहुत), आ (चारों ओर से), कृ (करना)
वर्ण-विचार	,,	,,	,,	वर्ण (फैलाना) वि, चर (चलना)
अक्षर	,,	,,	,,	अ (नहीं), क्षर (नाश होना)
स्वर	,,	,,	,,	स्वृ (शब्द करना)
ह्रस्व	संज्ञा विशेषण	,,	,,	ह्रस्व (छोटा होना)

शब्द	वाक्य-खंड	भाषा	लिंग	धातु
दीर्घ	संज्ञा-विशेषण	संस्कृत	पुल्लिग	दृष्ट (बढ़ाना)
प्लुत	संज्ञा	,,	,,	प्लु (कूदना वा ऊँचा जाना)
व्यंजन	,,	,,	,,	वि (बहुत), अंज (मिलना)
उच्चारण-स्थान	,,	,,	,,	उत (ऊपर), चर (चलना), स्था (ठहरना)
संयोग	,,	,,	,,	सम् , युज (मिलना)
द्वित्व	,,	,,	,,	द्वि (दो)
द्विधा	क्रिया-विशेषण	,,	,,	द्वि (दो), धा (प्रकार)

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) मनुष्य लोग अपने मन की बात दूसरे पुरुषों को के प्रकार से जना सकते है ? और किस-किस प्रकार से ?

(२) व्याकरण के बिन जाने शुद्ध-शुद्ध बोलना वा लिखना किसी भाषा का हो सकता वा नहीं ?

(३) व्याकरण-विद्या से किन बातों का ज्ञान होता है ?

(४) हिन्दी-व्याकरण कै खण्डों में बाँटा गया है ? प्रत्येक खण्ड का नाम लो ।

(५) वर्ण-विचार क्या सिखलाता है ?

(६) शब्द कै अक्षर से बनता है ?

(७) अक्षर क्या है ?

(८) हिन्दी में अक्षरों के अर्थ भी होते हैं ? अ का क्या अर्थ है ?

(९) हिन्दी में अक्षर कितने हैं ? और उनके कितने भेद हैं ? उनका नाम लो ।

(१०) स्वर क्या है ?

(११) व्यञ्जन क्या है ?

(१२) (अ) स्वर कितने है ? (आ) हर एक का नाम लो । (इ) मुख्य स्वर कितने हैं ? (ई) अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पाँच के दीर्घ होते हैं वा नहीं ? (उ) ए, ऐ, ओ, औ, क्या सर्वदा दीर्घ ही रहते है ? (ऊ) ए, ऐ, ओ, औ किन स्वरों के योग से बने हैं ? (ऋ) अनुस्वार और विसर्ग क्या व्यंजन से उत्पन्न होते हैं ? (ॠ) देवं और दुःख शब्दों में अनुस्वार और विसर्ग किन व्यंजनों के स्थान में हैं ? (लृ) फिर स्वरों के कितने रूप हैं ? उनका नाम लो ।

(१३) व्यंजन कितने हैं ? हर एक का नाम लो ।

(१४) (अ) स्वर के कितने भेद हैं ? हर एक का नाम लो ।
(आ) ह्रस्व स्वर और दीर्घ स्वर के अक्षरों को बिलग-बिलग बतलाओ ।

(१५) प्लुत कहाँ-कहाँ आता है ?

(१६) मात्रा किसको कहते हैं ?

(१७) (अ) व्यंजन अक्षरों के कै विभाग है ? (आ) वे कौन अक्षर हैं जो केवल संस्कृत ही में आते हैं ? (इ) इ अक्षर के अन्त में 'कार' लगाने से वही अक्षर समझा जाता

है वा दूसरा ? (ई) ई कै प्रकार से लिखा जाता है ? इसको ब्यवरेवार लिखो वा बतलाओ।

(१८) अक्षरों के उच्चारण-स्थान बतलाओ।

(१९) संयोग का सम्पूर्णतापूर्वक वर्णन करो।

(२०) द्वित्व किसे कहते है ?

(२१) विवर्ण किसे कहते है ? पोथी शब्द का विवर्ण करो।

(२२) लिखने की रीति बतलाओ।

(२३) 'ण' का व्यवहार बतलाओ।

(२४) 'ष' का व्यवहार बतलाओ, अर्थात् यह कहाँ आता है ?

(२५) इस्त्री, इस्कूल, अस्मरण आदि शब्दों का शुद्ध उच्चारण करो।

(२६) वंश, वक्ता, वर्ग आदि शब्दों में कौन व है ? पवर्गी वा अन्तस्थ ?

(२७) रात्री और रात्रि का दो अर्थ है वा एक ही ?

(२८) सम और शम का दो अर्थ है वा एक ही ? यदि भिन्न अर्थ है, तो क्या ? उनको बतलाओ।

(२९) दिन, दीन का दो अर्थ है वा एक ही ?

(३०) सिंह शब्द का उच्चारण वर्णानुसार है वा नहीं ?

(३१) व्याकरण शब्द कौन वाक्य-खण्ड, कौन भाषा, कौन लिंग है ? और इसका क्या धातु है ?

(३२) द्विधा शब्द का क्या धातु है ?

●

दूसरा बाब　　दूसरा खण्ड　　PART II

सर्फ़　　शब्द-विचार　　Etymology

शब्द-विचार शब्दों के भेद, बनावट, सन्धि और समास आदि को बतलाता है।

लफ़्ज़　　शब्द　　Word

शब्द वह है, जो कान से सुन पड़े। शब्द के दो भेद है, वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक।

वर्णात्मक　　Articulate

वर्णात्मक वह है जिसको लिख सकते है और उच्चारण कर सकते है; जैसा—फल, पेड़, मनुष्य, का, को इत्यादि।

ध्वन्यात्मक　　Inarticulate

ध्वन्यात्मक उसे कहते हैं, जिसकी केवल ध्वनि सुन पड़ती है, परन्तु न लिख सकते और न मुख से ठीक-ठीक उच्चारण कर सकते हैं; जैसे—गाय, भैंस आदि के शब्द।

वर्णात्मक शब्द के दो भेद हैं, सार्थक और निरर्थक।

सार्थक Significant

सार्थक वह है जिसका कुछ अर्थ हो, जैसा—राम, कृष्ण इत्यादि।

निरर्थक Meaningless

निरर्थक वह है जिसका किसी भाषा में कुछ अर्थ न हो; जैसा, घंखा, आचू, ढादम इत्यादि।

वाक्य-खण्ड Parts of Speech

सार्थक शब्द के पाँच भेद हैं—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय।

इस्म संज्ञा Noun

दृश्य वा अदृश्य पदार्थ के नाम को संज्ञा कहते हैं; जैसा—मथुरा, गंगा, राम, आज्ञा, आस इत्यादि।

संज्ञा तीन प्रकार की होती है—(१) जातिवाचक, (२) प्रकृति नामवाचक और (३) भाववाचक।

जातिवाचक संज्ञा Common Noun

जातिवाचक संज्ञा वह है, जिसके कहने से जातिमात्र का बोध हो; जैसा—पुस्तक, नदी, नगर, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़ा इत्यादि।

प्रकृति नामवाचक संज्ञा Proper Noun

प्रकृति नामवाचक संज्ञा (व्यक्तिवाचक) मनुष्य, देश, नदी, पर्वत आदि के विशेष नाम को कहते हैं; जैसा—रामचन्द्र, हिन्दुस्तान, काशी, गंगा, हिमालय इत्यादि।

भाववाचक संज्ञा

भाववाचक संज्ञा वह है, जिसके कहने से धर्म वा स्वभाव समझा जाय; जैसा—लम्बाई, चौड़ाई, दौड़-धूप, समझ-बूझ इत्यादि।

संज्ञा में वचन, लिंग, पुरुष और अवस्था होती है।

वचन Number

हिन्दी में वचन दो हैं—(१) एकवचन और (२) बहुवचन।

एकवचन Singular

एक वचन वह है जिसके कहने से एक पदार्थ का बोध हो; जैसा—पुस्तक, गाड़ी, स्त्री आदि।

बहुवचन Plural

बहुवचन वह है, जिससे अधिक का बोध हो; जैसा—पुस्तकें, गाड़ियाँ, स्त्रियाँ आदि।

लिंग Gender

हिन्दी में लिंग दो हैं—पुल्लिंग और स्त्रीलिंग।

पुल्लिङ्ग Masculine

पुरुषबोधक संज्ञाओं को पुल्लिंग कहते हैं; जैसा—ईश्वर, घोड़ा आदि।

स्त्रीलिङ्ग Feminine

स्त्रीबोधक संज्ञाओं को स्त्रीलिंग कहते हैं; जैसा—ईश्वरी, घोड़ी आदि।

पुरुष Person

पुरुष तीन हैं—(१) उत्तमपुरुष, (२) मध्यमपुरुष और (३) अन्यपुरुष।

मुतकल्लिम उत्तमपुरुष First Person

बात के कहनेवाले को उत्तमपुरुष वा वक्ता कहते हैं; जैसा—मैं, हम।

मुखातिब मध्यमपुरुष Second Person

मध्यमपुरुष वा श्रोता वह है कि जिससे बातचीत की जाय। जैसा—हे राजा! आप मेरी बात सुनें। यहाँ 'राजा' और सर्वनाम 'आप' मध्यमपुरुष हैं।

ग़ायब अन्यपुरुष Third Person

अन्यपुरुष वह है कि जिसके विषय में बात की जाय, पर उससे बात न करें; अर्थात् वक्ता किसी दूसरे के विषय में श्रोता से बातें करता हो।

हालत अवस्था Case

हिन्दी में अवस्था आठ हैं,—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन।

फाइल कर्त्ता Nominative

क्रिया का व्यापार करनेवाला कर्त्ता कहलाता है, वह दो प्रकार का होता है—प्रधान और अप्रधान।

प्रधान कर्त्ता—जैसा, गुरु विद्यार्थियों को पढ़ाता है।

अप्रधान कर्त्ता—जैसा, गुरु ने शिष्य को पढ़ाया।

मफऊल कर्म Accusative

कर्म वह है जिसमें कर्त्ता की क्रिया के व्यापार का फल हो, उसका चिन्ह को है; जैसा, मैं बालक को पढ़ाता हूँ।

करण Instrumental

करण उसे कहते हैं जिसके द्वारा कर्त्ता क्रिया को सिद्ध करे, और उसका चिन्ह से वा करके है; जैसा, राम ने रावण को बाण से मारा।

हालते मदद सम्प्रदान Dative

सम्प्रदान उसे कहते हैं जिसके लिए कर्त्ता क्रिया को करे, और के लिए, वा के निमित्त, वा के हेतु उसका चिन्ह है; जैसा, घास घोड़ा के लिए काटता हूँ।

सर्फ़ अपादान Ablative

अपादान उसे कहते हैं जिसे कुछ अलग किया जाय, उसका चिन्ह से है; जैसा, पेड़ से पत्ता गिरता है।

मुज़ाफ़ सम्बन्ध Janative (Genitive)

सम्बन्ध उसे कहते हैं जो अपनैती वा लगाव को जनावे, उसके चिन्ह का, की, के हैं; जैसा, राजा का घोड़ा। पण्डित की पुस्तक।

इस्म ज़र्फ़ अधिकरण Locative

अधिकरण उसे कहते हैं जो कर्त्ता और कर्म के द्वारा क्रिया का आधार हो, उसके चिन्ह में, पै, पर, हैं; जैसा, वह अयोध्यापुरी में रहता है।

मनादी सम्बोधन Vocative

सम्बोधन वह है जिसको चिता कर अपने सम्मुख कर लें, उसके चिन्ह रे, अरे, हो, अहो, हे, हैं; जैसा, हे राजा मेरा चूक क्षमा करो।

संज्ञाओं के बहुवचन बनाने की रीति।

(१) हलन्त पुल्लिग के आगे ओं को लाते हैं; जैसा, बालक, बालकों।

(२) हलन्त स्त्रीलिंग के आगे ए वा ओं लाते हैं; जैसा, चील, चीलें वा चीलों।

(३) आकारान्त पुल्लिंग शब्द के अन्त आ की ठौर ए वा ओं हो जाता है; जैसा, लड़का, लड़के वा लड़कों।

(४) आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के अन्त स्वर को सानुनासिक कर देते हैं, वा शब्द से आगे ओं लाते हैं; जैसा, गैया, गैयां वा गैयाओं।

(५) बहुत से स्थानों में एकवचन और बहुवचन के रूपों में कुछ भेद नहीं होता, इसलिए अनेक के बोध के निमित्त गण, जाति, लोग, सब इत्यादि लगाते हैं; जैसा ग्रहगण, मोरगण, मनुष्य जाति, पशु जाति, पण्डित लोग, राजा लोग, चिड़या सब, कीड़ा सब इत्यादि।

लिंग Gender

(१) जिन शब्दों के जोड़े है उनका पुल्लिग स्त्रीलिंग जानने में बहुत कठिनता नहीं है; जैसा,

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
पुरुष	स्त्री	ओझा	डाइन
राजा	रानी	बैल	गाय
बाप	माँ	ससुर	सास
भाई	बहिन	बिलार (बिलाव)	बिलाई इत्यादि

(२) पुरुषवाची हलन्त और आकारान्त शब्दों से ई प्रत्यय करने से स्त्रीलिंग की रचना होती है, हलन्त का तो अन्त हल और आकारान्त के अकार का लोप होने पर उसका शेष हल ई में जा मिलता है; जैसा,

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
नागर	नागरी	पुत्र	पुत्री	नद	नदी
अहीर	अहीरी	सिंह	सिंही	मृगनयन	मृगनयनी
वन	वनी	बानर	बानरी	लम्बोदर	लम्बोदरी
ब्राह्मण	ब्राह्मणी	शृगाल	शृगाली	दीर्घकेश	दीर्घकेशी
देव	देवी	मनुष्य	मनुष्यी	कुक्कुट	कुक्कुटी इत्यादि

(३) पुरुषवाची आकारान्त शब्दों के अन्त के आकार को ई आदेश कर देते हैं; जैसा,

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
घोड़ा	घोड़ी	चेला	चेली	पोता	पोती
बेटा	बेटी	दादा	दादी	कुत्ता	कुत्ती
लड़का	लड़की	नाना	नानी	भांजा	भांजी

(४) जिन पुरुषवाची शब्दों के अंत में ईकार आता है, उनके ई के स्थान में इन कर देते हैं; जैसा—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
धोबी	धोबिन	तमोली	तमोलिन	नाई	नाइन
तेली	तेलिन	माली	मालिन	बारी	बारिन

(५) व्यापार करनेवाले पुरुषवाची आकारान्त और अकरान्त शब्दों के आकार और अकार को भी इन आदेश करने से स्त्रीलिङ्ग हो जाता है; जैसा,

पुल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
सोनार	सोनारिन	कसेरा	कसेरिन
लोहार	लोहारिन	कलवार	कलवारिन इत्यादि ।

(६) ब्राम्हणों के उपनामवाची शब्दों के स्त्रीलिंग बनाने की यह रीति है, कि अन्त के स्वर को आइन आदेश करके आदि अक्षर के स्वर को ह्रस्व कर देते हैं, पर ए, ऐ, ओ, औ इनको ह्रस्व नहीं होता; जैसा,

पुल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
मिसिर	मिसराइन	पांड़े	पंड़ाइन	चौबे	चौबाइन
दूबे	दुबाइन	तिवारी	तिवराइन	ओझा	ओझाइन

(७) संस्कृत के बहुतेरे अकारान्त शब्दों के अ के स्थान पर स्त्रीलिंग में आ होता है; जैसा,

वृद्ध	वृद्धा	बाल	बाला	भीत	भीता
सुत	सुता	सरल	सरला	सुशील	सुशीला इत्यादि।

(८) अकारांत शब्दों के पहिले अ स्थान में स्त्रीलिंग में इ होती है, और अंत में भी अ के स्थान आ होता है; जैसा,

पाचक	पाचिका	बालक	बालिका
गायक	गायिका	नायक	नायिका इत्यादि ।

(९) तकारान्त शब्दों के अंत में ई प्रत्यय करने से स्त्रीलिंग की रचना हो जाती है; जैसा,

भगवत	भगवती	श्रीमत	श्रीमती इत्यादि

(१०) ब्रम्हा, रुद्र, भव, सर्व, इन्द्र, वरुण, क्षत्री, शूद्र, आचार्य इत्यादि शब्दों के अन्त में आनी प्रत्यय होकर स्त्रीलिंग होता है; जैसा—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
ब्रम्हा	ब्रम्हानी	सर्व	सर्वानी	क्षत्री	क्षत्रानी
रुद्र	रुद्रानी	इन्द्र	इन्द्रानी	शूद्र	शूद्रानी
भव	भवानी	वरुण	वरुणानी	आचार्य	आचार्यानी इत्यादि ।

(११) संस्कृत आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिंग होते हैं, और हिंदी आकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग; जैसा—

संस्कृत आकारान्त शब्द

माता, शिक्षा, इच्छा, सभा, सेना, माया, शाला, गंगा, यमुना, दया, लज्जा, सेज्या, अवस्था, दशा, आज्ञा इत्यादि ।

हिंदी आकारान्त शब्द

लड़का, घोड़ा, बाछा, भेंड़ा, कुत्ता, बेटा, पोता, भतीजा, चच्चा, दादा, नाना इत्यादि ।

(१२) राजा, पिता, भ्राता ब्रम्हा, ये शब्द संस्कृत के पुल्लिग हैं ।

(१३) (अ) हिंदी ईकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिंग होते हैं; जैसा, लड़की, घोड़ी, बाछी, भेंड़ी, कुत्ती, बेटी, पोती, भतीजी, चाची, दादी, नानी इत्यादि ।

(आ) पानी, मोती, घी, दही, जी, हाथी ये शब्द हिंदी के पुल्लिग हैं ।

(१४) जिन भाववाचक शब्दों के अंत में आव, त्व, पन, वा पा हो वे सब पुल्लिग हैं; जैसा, चढ़ाव, विकाव, पाण्डित्य, स्त्रीत्व, लड़कपन, सीधापन, वा बुढ़ापा इत्यादि ।

(१५) जिन भाववाचक शब्दों के अंत में आई, ता, वट, वा हट हों वे स्त्रीलिंग हैं; जैसा, पंडिताई, बुराई, उत्तमता, कोमलता, बनावट, सजावट, चिल्लाहट, चिकनाहट इत्यादि।

(१६) सामासिक शब्दों का लिंग अन्त शब्द के लिंगानुसार होता है; जैसा, स्त्रीलिंग यह शब्द पुल्लिग है; क्योंकि लिंग शब्द पुल्लिग है, वैसा ही दयासागर पुल्लिग है, यद्यपि दया शब्द स्त्रीलिंग है, तथापि अन्त शब्द अर्थात् सागर पुल्लिग है ।

(१७) जो शब्द पुल्लिग स्त्रीलिंग दोनों का वाचक है, वह उभयलिंग (Common Gender) कहलाता है; जैसा, सन्तान, व्यक्ति इत्यादि ।

हालत अवस्था (कारक) Case

बालक शब्द का रूप आठो कारकों में

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	बालक	बालक
कर्म	बालक को	बालकों को
करण	बालक से, करके	बालकों से, करके
संप्रदान	बालक के लिए	बालकों के लिए
अपादान	बालक से	बालकों से
सम्बन्ध	बालक का, की, के	बालकों का, की, के
अधिकरण	बालक में, पै, पर	बालकों में, पै, पर
सम्बोधन	हे बालक !	हे बालको !

गैया शब्द का रूप आठो कारकों में

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	गैया	गैयाँ
कर्म	गैया को	गैयाओं को
करण	गैया से	गैयाओं से
संप्रदान	गैया के लिए	गैयाओं के लिए
अपादान	गैया से	गैयाओं से
सम्बन्ध	गैया का, की, के	गैयाओं का, की, के
अधिकरण	गैया में, पै, पर	गैयाओं में, पै, पर
सम्बोधन	हे गैया !	हे गैयाओ !

सर्वनाम Pronoun

वाक्यों में नाम का उच्चारण बारम्बार न हो इसलिए उसके स्थान में जो शब्द दिया जाता है, उसे सर्वनाम कहते हैं, जैसा "देवदत्त देवदत्त के सेवक से देवदत्त का पैर मलाता है।" इसके पलटे "देवदत्त अपने सेवक से अपना पैर मलाता है।" यहाँ देवदत्त के पलटे अपने और अपना शब्द आये हैं। सर्वनाम में भी लिंग, वचन, पुरुष और अवस्था होती है। जिनके बदले में सर्वनाम आवे उन शब्दों के लिंग और वचन के समान उसका भी लिंग और वचन होगा; जैसा, "पंडित ने कहा, मैं पढ़ता हूँ" यहाँ पंडित पुल्लिग है, तो मैं भी पुल्लिग हुआ।

सर्वनाम शब्दों का सम्बोधन नहीं होता।

सर्वनाम के पाँच भेद हैं—१. पुरुषवाचक, २. दर्शक, ३. सम्बन्धी, ४. प्रश्नार्थक और ५. सामान्य सर्वनाम।

पुरुषवाचक Personal

पुरुषवाचक सर्वनाम वह है जो पुरुष के पलटे में आवे।

उसके शब्द

उत्तमपुरुष	मध्यमपुरुष	अन्यपुरुष
मैं, हम	तू, तुम, आप	वह, वे

मैं शब्द का रूप सातो कारक में

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	मैं	हम
कर्म	मुझको वा मुझे	हमको वा हमें
करण	मुझसे	हमसे
संप्रदान	मेरे लिए	हमारे लिए
अपादान	मुझसे	हमसे
सम्बन्ध	मेरा, मेरी, मेरे	हमारा, हमारी, हमारे
अधिकरण	मुझमें, पै, पर	हममें, पै, पर

तू शब्द का रूप

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	तू	तुम
कर्म	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें
करण	तुझसे	तुमसे
संप्रदान	तेरे लिए	तुम्हारे लिए
अपादान	तुझसे	तुमसे
सम्बन्ध	तेरा, तेरी, तेरे	तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे,
अधिकरण	तुझमें, पै, पर	तुमें, पै, पर

आप शब्द का रूप

कर्त्ता	आप	आपलोग
कर्म	आपको	आपलोग को
करण	आपसे	आपलोग से
संप्रदान	आपके लिए	आसलोग के लिए
अपादान	आपसे	आपलोग से
सम्बन्ध	आपका, की, के	अ।पलोग का, की, के
अधिकरण	आपमें, पै, पर	आपलोग में, पै, पर

वह शब्द का रूप

कर्त्ता	वह	वे
कर्म	उसकी, उसे	उनकी, उन्हें
करण	उससे	उनसे
संप्रदान	उसके लिए	उनके लिए
अपादान	उससे	उनसे
सम्बन्ध	उसका, की, के	उनका, की, के
अधिकरण	उसमें, पै, पर	उनमें, पै, पर

आप शब्द कभी सर्वनाम और कभी विशेषण होता है ; जैसा—'हे राजा ! आप नींद तोड़ें' यहाँ सर्वनाम, और 'मैं आप जाऊँगा' यहाँ विशेषण है ।

दर्शक सर्वनाम Demonstrative

किसी वस्तु को देखानेवाले सर्वनाम को दर्शक सर्वनाम कहते हैं ; जैसा, यह, वह ।

यह शब्द का रूप

कर्त्ता	यह	ये
कर्म	इसको, इसे	इनको, इन्हें
करण	इससे	इनसे

संप्रदान	इसके लिए	इनके लिए
अपादान	इससे	इनसे
सम्बन्ध	इसका, की, के	इनका, की, के
अधिकरण	इस में, पै, पर	इन में, पै, पर

वह शब्द का रूप

कर्त्ता	वह	वे
कर्म	उसको	उनको
करण	उससे	उनसे
संप्रदान	उसके लिए	उनके लिए
अपादान	उससे	उनसे
सम्बन्ध	उसका, की, के	उनका, की, के
अधिकरण	उसमें, पै, पर	उनमें, पै, पर

संबंधी सर्वनाम Relative Pronoun

जिस वाक्य में परस्पर संबंध रहता है उसे संबंधी सर्वनाम कहते हैं, जैसा—जो।

जो शब्द का रूप

कर्त्ता	जो	जो
कर्म	जिसको	जिनको
करण	जिससे	जिनसे
संप्रदान	जिसके लिए	जिनके लिए
अपादान	जिससे	जिनसे
सम्बन्ध	जिसका, की, के	जिनका, की, के
अधिकरण	जिसमें, पै, पर	जिनमें, पै, पर

प्रश्नार्थक सर्वनाम Inter(r)ogative Pronoun

जिसके उच्चारण से प्रश्न का बोध होता है, उसे प्रश्नार्थक सर्वनाम कहते हैं; जैसा—क्या, कौन, कितना इत्यादि।

यह तीन प्रकार का होता है—(१) स्वीकारवाचक, (२) निषेधवाचक और (३) सुधिबोधक।

स्वीकारवाचक; जैसा—कल तुम्हारे यहाँ मैं न आया था तो कौन आया था ? अर्थात् मैं ही आया था।

निषेधवाचक; जैसा—जो अँधेर करोगे तो तुम्हारे देश में कौन सुख पावेगा ? अर्थात् कोई नहीं।

सुधिबोधक; जैसा—कौन आया था ? तुम क्या करते हो ? और कभी क्या शब्द जब झिड़की से कहा जाता है, तो वर्जने का अर्थ निकलता है; जैसा—तू क्या काम करता है ? अर्थात् इस काम को मत कर। कभी क्या शब्द बेपरवाई के अर्थ में आता है; जैसा—तुझ बिन स्वर्ग प्यारे मैं लै के क्या करूंगा ?

कभी आश्चर्य के लिए आता है; जैसा—क्या अच्छा ! क्या ही सुन्दर ! कभी पछतावा और अभिलाषा के लिए आता है; जैसा—यदि तुम नौकर हो जाते तो क्या अच्छा होता !

सामान्य सर्वनाम Indefinite Pronoun

ऊपर लिखे हुए लक्षण जिसमें नहीं घटते और जिससे साधारण का बोध होता है उसे सामान्य सर्वनाम कहते हैं; जैसा—सब, कोई, अमुक इत्यादि ।

विशेषण Adjective

जो शब्द संज्ञा वा सर्वनाम के गुण वा दोष को जतावे उसे विशेषण कहते हैं। विशेषण के दो भेद हैं—(१) संख्यावाचक और (२) लक्षणसूचक ।

संख्यावाचक Numeral

जिस विशेषण से संख्या का बोध होता है उसे संख्यावाचक कहते है ; जैसा—एक मनुष्य, दूसरा वर्ग, दुगनी वस्तु ।

फिर इसके तीन भेद हैं— (१) विभेदक, (२) केवल संख्यावाचक और (३) गुणवाचक।

विभेदक Ordinal

विभेदक वह है जिससे कई भागों में से एक भाग समझा जाय; जैसा—पहिला, दूसरा, दसवाँ, बीसवाँ, सप्तम, अष्टम इत्यादि ।

केवल संख्यावाचक Cardinal

केवल संख्यावाचक वह है जिससे गिन्ती वाचक (एक, दो, तीन इत्यादि) समझे जायँ।

एक शब्द का अर्थ

एक शब्द गिन्ती वाचक है, परन्तु कभी अनिश्चय के लिए भी आता है; जैसा—'यहाँ एक वस्तु नहीं पाई जाती ।' अर्थात् कोई वस्तु नहीं ।

और कभी यों ही आता है; जैसा—थोड़ा कागज[1] लाव । कभी लगभग के अर्थ में; जैसा – 'चार एक कलम[2] लाव,' अर्थात् चार के लगभग । कभी दोहराके प्रत्येक पुरुष के लिए; जैसा—'एक एक मारे गये' अर्थात् हर एक ।

और कभी अचानक के अर्थ में भी दोहराकर आता है; जैसा—एकाएक ।

गुणावाचक Multiplicative

गुणावाचक वह है, जिससे गुणा (जैसा अंकगणित में) का बोध हो; जैसा, दुगना, तिगुना इत्यादि ।

लक्षणसूचक Qualitative

लक्षणसूचक वह है जिससे गुण वा दोष समझा जाय; जैसा, अच्छा, बुरा, पीली, नीली, विद्वान, मूर्ख इत्यादि ।

---

(१) पत्र
(२) लेखनी

क्रिया Verb

क्रिया वह है जिससे देह वा मन का कुछ व्यापार समझा जाय, और जिसमें काल भी पाया जाय; जैसा, मोहन दौड़ता है। पंडित सोचता है।

क्रिया दो प्रकार की होती है—(१) अकर्मक और (२) सकर्मक।

अकर्मक Neuter

अकर्मक क्रिया वह है जिसमें कर्म न हो; जैसा—मैं आता हूँ।

सकर्मक Active

सकर्मक क्रिया वह है जिसमें कर्म हो; जैसा, मैं खाता हूँ।

सकर्मक क्रिया के दो भेद हैं—(१) कर्तृप्रधान (२) कर्मप्रधान।

जिस क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार हो उसे कर्तृप्रधान, और कर्म के अनुसार हो उसे कर्मप्रधान कहते हैं; जैसा—मोहन रोटियाँ खाता है। स्त्री कपड़े सीती है। मोहन ने रोटियाँ खाईं। बीबी ने कुत्ते पाले थे।

क्रिया में दशा, काल, लिंग, वचन और पुरुष होते हैं।

दशा Mood

क्रिया के विशेष भाव को दशा कहते हैं।

दशाएँ पाँच हैं; (१) स्वार्थ दशा, (२) शक्त्यर्थ दशा, (३) आशंसार्थ दशा (४) अनुमत्यर्थ दशा और (५) भावार्थ दशा।

स्वार्थ दशा Indicative Mood

स्वार्थ दशा उसे कहते हैं कि जहाँ क्रिया सामान्य रूप से कही जाय, अथवा प्रश्नबोधक हो; जैसा, मैं जाता हूँ। तुम क्या करते हो?

शक्त्यर्थ दशा Potential Mood

शक्त्यर्थ दशा वह है जिसमें शक्ति वा संभव पाया जाय; जैसा, मैं कर सक्ता हूँ।

आशंसार्थ दशा Subjunctive Mood

आशंसार्थ दशा वह है जिसमें अवधि पाई जाय; जैसा, यदि तुम कल आव, तो पाव।

अनुमत्यर्थ दशा Imperative Mood

अनुमत्यर्थ दशा वह है जिसमें आज्ञा वा विन्ती समझी जाय। जैसा, ईश्वर की आज्ञा मानो। हे भाइयो! बुरा काम मत करो।

भावार्थ दशा Infinitive Mood

भावार्थ दशा वह है जिसमें केवल व्यापार पाया जाय, और इसका चिन्ह ना है; जैसा, आना, जाना, खाना, पीना इत्यादि।

ज़माना काल Tense

काल से यह जाना जाता है कि अमुक काम किस समय में हुआ।

काल तीन हैं—(१) भूत, (२) वर्तमान और (३) भविष्यत।

बीते हुए काल को भूतकाल कहते हैं।

भूतकाल के चार भेद हैं—१. सामान्य २. पूर्ण ३. आसन्न ४. अपूर्ण भूत।

सामान्यभूत Past Tense

सामान्यभूत वह है जिसमें भूतकाल की सामान्यता पाई जाय; जैसा—आया, गया।

पूर्णभूत Pluperfect Tense

पूर्णभूत वह है जिससे क्रिया की पूर्णता पाई जाय; जैसा—आया था, गया था।

आसन्नभूत Present Perfect

आसन्नभूत वह है जिसकी समाप्ति वर्तमान काल के निकट हो; जैसा, आया है, गया है।

अपूर्णभूत Imperfect Tense

अपूर्ण भूत वह है जिससे भूतकाल तो समझा जाय; परन्तु क्रिया की समाप्ति न हो गई हो; जैसा, आता था, जाता था।

वर्त्तमान Present Tense

वर्त्तमान वह है जो बीत रहा है; जैसा, आता हूँ।

भविष्यत Future

भविष्यतकाल आनेवाले को कहते हैं; जैसा—आवेगा।

लिंग और वचन Gender & Number

जैसे, संज्ञा में लिंग और वचन दो होते हैं, वैसे ही क्रिया में भी।

पुरुष Person

क्रिया में भी संज्ञा के से तीन पुरुष होते हैं।

क्रिया तीन प्रकार की होती है; एक जो नियम से बने; जैसा, आना से आया। दूसरे जो नियम से न बने; जैसा, जाना से गया। तीसरे, जिसके कुल काल न हों; जैसा, भया का वर्तमान और भविष्यत नहीं है।

फिर क्रिया दो प्रकार की है; (१) मुख्य और (२) सहायक। 'मैं कर सका हूँ' में 'करना' मुख्य और 'सका हूँ' सहायक है।

(३) भाववाचक Adverb of manner

अकस्मात, अचानक, केवल, ज्यों त्यों, झटपट, तथापि, निरंतर, यद्यपि, यथार्थ, वृथा, यों, सचमुच, अवश्य इत्यादि ।

(४) परिमाणवाचक Adverbs Quantity

अति, अत्यन्त, एक बेर, दो बेर, आप, बहुधा इत्यादि ।

(५) निषेधवाचक Adverbs of Negation

न, नहीं, मत इत्यादि ।

(१) बहुतेरे क्रियाविशेषण के अन्त में निश्चय के लिए ही वा हीं लाते हैं ; जैसा, अभी, तभी, कभी, जभी, योंही, वहीं ।

(२) कई एक दोहरा कर बोले जाते हैं, और प्रायः कई क्रियाविशेषण एक साथ आते हैं ; जैसा - कभी कभी, जहाँ जहाँ, कहीं कहीं, कभी नहीं, ऐसा वैसा, ज्यों ज्यों, जब कभी, कहीं नहीं, त्यों त्यों इत्यादि ।

(३) अनिश्चय के लिए दो समान, अथवा असमान क्रियाविशेषण के बीच में न लगा देते हैं ; जैसा, कहीं न कहीं, जब न तब, कभी न कभी ।

(४) कितने क्रियाविशेषण विभक्ति के साथ आते हैं ; जैसा, "वहाँ की भाषा अच्छी है" । "जहाँ से आता था" ।

(५) विशेषण भी क्रियाविशेषण हो जाते हैं ; जैसा, धीरे-धीरे चलो । तार को सीधे लगाते जाओ ।

(६) बहुतेरे शब्दों में पूर्वक के लगाने से क्रियाविशेषण हो जाता है ; जैसा, सुखपूर्वक, धन्यवादपूर्वक इत्यादि ।

विभक्ति Case-endings

विभक्ति वह है जो अवस्थाओं के जताने के लिए कारक में आती है ; जैसा, ने, को, से, के लिये, का, की, के, में, पै, पर ।

समुच्चयबोधक अव्यय Conjunction

जो शब्द दो पदों वा वाक्यों के बीच में आते हैं, उन्हें समुच्चयबोधक अव्यय कहते हैं । यह दो प्रकार का होता है—(१) मेल वाचक (२) भिन्न वाचक ।

मेल वाचक Copulative Conjunction

और, एवं, अथ, तो, फिर, कि, यथा, यदि, भी, पुनि इत्यादि ।

भिन्न वाचक Disjunctive Conjunction

वा, अथवा, पर, परंतु, किंतु, चाहे इत्यादि ।

सम्बोधन सूचक अव्यय Preposition of Address

जिन शब्दों से किसी को बोलते हैं उन्हें सम्बोधन सूचक कहते हैं; जैसा, रे, अरे, हो, अहो, हे, अहे इत्यादि ।

पशुओं के लिये For animals

(कुत्ता) अतू, (बिल्ली) पिसू, (सूअर) हुर, (गाय) अहो, (बकरी) अर इत्यादि ।

विस्मयादिबोधक Interjection

विस्मयादिबोधक उसे कहते हैं जिससे अन्तःकरण का भाव वा दशा प्रकाशित होती है ।

वे कई प्रकार के हैं—१. क्लेश बोधक, २. आनन्द वा आश्चर्यबोधक, ३. लज्जा वा निरादरबोधक इत्यादि ।

क्लेशवाचक—आह, ऊह, आहा, ओहो, हाय हाय, भाह, त्राह, बाप रे, मैया रे इत्यादि ।

आनन्द वा आश्चर्यबोधक—वाह वाह ! धन्य धन्य ! जय जय इत्यादि ।

लज्जा वा निरादरबोधक—छी छी ! धिक ! दूर ! इत्यादि ।

तब्दील हर्फ़ सन्धि Change of letters

दो वर्ण परस्पर निकटस्थ होने से मिल जाते हैं, इसी मिलाप का नाम सन्धि है । सन्धि तीन प्रकार की होती है—(१) स्वर-सन्धि, (२) व्यञ्जनसन्धि और (३) विसर्ग-सन्धि ।

तब्दील हर्फ़ इल्लत स्वर-सन्धि Change of Vowels

स्वर के साथ स्वर का जो संयोग होता है उसे स्वर सन्धि कहते हैं ।

(१) जब समान दो स्वर ह्रस्व वा दीर्घ इकट्ठे होते हैं तो दोनों मिलकर दीर्घ स्वर हो जाते हैं; जैसा, परम+अर्थ=परमार्थ, पाठ+आलय=पाठालय, विद्या+आलय=विद्यालय, प्रति+इति=प्रतीति, अधि+ईश्वर=अधीश्वर, मही+इन्द्र=महीन्द्र इत्यादि । (२) ह्रस्व अथवा दीर्घ अकार से परे ह्रस्व वा दीर्घ इ, उ, ऋ रहें तो अ+इ मिलकर ए, अ+उ ओ, और अ+ऋ मिलकर अर होता है; जैसा, परम+ईश्वर=परमेश्वर, महा+ईश= महेश, हित+उपदेश=हितोपदेश, जल+ऊर्म्मि=जलोर्म्मि इत्यादि ।

तब्दील हर्फ़ सहीह व्यञ्जन सन्धि Change of Consonant

व्यञ्जन अथवा स्वर के साथ जो व्यञ्जन का विकार होता है, उसे व्यञ्जन सन्धि कहते हैं ।

(१) त और द के परे जो च वा छ हो तो त और द के स्थान में च होता है; जैसा, उत+चारण=उच्चारण, महत+छत्र=महच्छत्र इत्यादि ।

(२) यदि त और द के परे ज अथवा झ हो तो त और द के स्थान में ज होता है; जैसा, भवत+जीवन=भवज्जीवन, उत+ज्वल=उज्ज्वल इत्यादि ।

तब्दील विसर्ग-सन्धि Change of Visarga

व्यञ्जन अथवा स्वर के साथ जो विसर्ग का विकार होता है उसे विसर्ग-सन्धि कहते हैं ।

(१) यदि इकार, उकारपूर्वक विसर्ग से परे क, ख, वा प, फ रहे तो विसर्ग को प्रायः मूर्द्धन्य ष हो जाता है; जैसा, निः + कपट = निष्कपट, निः + पाप = निष्पाप, निः + फल = निष्फल इत्यादि।

(२) च छ विसर्ग से परे रहे तो विसर्ग को श और ट ठ परे होवे तो ष हो, जाता है; जैसा, निः + चल = निश्चल, निः + छल = निश्छल, धनु + टंकार = धनुष्टङ्कार निः + तार = निस्तार इत्यादि।

मरक्कब ग़ैर सक़ील समास Compound words

अनेक पदों की विभक्तियों को लोप करके पद बनाया जाय, परन्तु उन विभक्तियों का अर्थ बना रहे समास से यही प्रयोजन है। समास छः प्रकार के हैं—(१) अव्ययीभाव, (२) तत्पुरुष, (३) द्वन्द्व, (४) बहुव्रीहि, (५) कर्मधारय और (६) द्विगु।

अव्ययीभाव Compounds formed of a Post Position Noun

पूर्व में जहाँ अव्यय से अन्वय हो उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। निकट, बारम्बार, यथाशक्ति, निषेध, पर्यन्त इत्यादि अर्थ में जो समास होता है, वह अव्ययीभाव कहा जाता है।

उपकूल = कूल के समीप।
प्रतिदिन = दिन-दिन।
यथाशक्ति = शक्तिभर।
निर्विष = विष का अभाव।
आसमुद्र = समुद्रपर्यन्त।
अतिकाल = बहुत काल।

मुरक्कब इज़ाफ़ी तत्पुरुष Compounds formed of two substantives

तत्पुरुष में पिछला पद प्रधान रहता है; जैसा—गङ्गाजल, राजपुत्र इत्यादि।

संज्ञा के आदि में नकार के योग होने से भी तत्पुरुष समास होता है, पर वह नकार अकार हो जाता है, और फिर अकार होने पर यदि इसके आगे स्वरादि शब्द हों तो अन होता है और व्यंजनादि हो तो अकार ही बना रहता है; जैसा, न + धर्म = अधर्म, अन + उचित = अनुचित।

द्वन्द्व Compounds formed of understood Conjunction

आपस में विशेष्य विशेषण न हो और समुच्चयबोधक अव्यय से एक क्रिया में अन्वय किया जाय उसको द्वन्द्व समास कहते हैं; जैसा, लौंग इलायची दो (लौंग और इलायची दो)

बहुव्रीहि

Compounds having the meaning to a Considerable extent

बहुव्रीहि समास उसे कहते हैं जिसमें कहे हुए शब्दों को छोड़ किसी दूसरे पद की प्रधानता हो; जैसा, मृगनयनी अर्थात् मृग की सी आँखें जिस स्त्री की हों।

मुरक्कब तौसीफी कर्मधारय
Compounds formed of an adjective and noun

जो विशेष्य विशेषण के योग से एक पद होता है उसे कर्मधारय कहते हैं; जैसा, महाजन, यहाँ, महा विशेषण, और जन विशेष्य है।

द्विगु
Compound formed of a numeral adjective & noun

द्विगु समास उसे कहते हैं जिसमें पूर्व पद संख्यावाचक हो ; जैसा, अठपहल, तिनकोन, त्रिभुवन, त्रिलोक इत्यादि।

तद्धित Derivative

तद्धित उसे कहते हैं जिससे संज्ञा वा विशेषण के प्रत्ययों के लगाने से अनेक शब्द बनते हैं।

अपत्य अर्थ में नाम के आगे अण प्रत्यय होता है, इस प्रत्यय में णकार केवल आदि स्वर की वृद्धि के लिये है ; जैसा, शिव (वृद्धि होने से) शैव+अ = शैव। शैव शब्द के अन्त व का अकार अण प्रत्यय के होने से लोप हो गया, अब वही अ प्रत्यय होने से शैव शब्द अकारांत हुआ।

[२]विष्णु = वैष्णु।
वैष्णु—उ + अव = वैष्णव।
[२]विदेह = वैदेह।
[२]वशिष्ठ = वाशिष्ट।
[२]गोतम = गौतम [२]मनु = मानव।
[२]यदु = यादव। रघु = राघव।

कहीं अपत्य अर्थ में इञ प्रत्यय होता है, इञ केवल आदि स्वर की वृद्धि के लिये है ; जैसा, दशरथ, (वृद्धि होने से) दाशरथ, दाशरथ+इ = दाशरथि।

तुल्य अर्थ में वत प्रत्यय होता है ; जैसा, चन्द्रवत, घटवत, इत्यादि। वाला के अर्थ में वान और ई प्रत्यय होता है; जैसा, लक्ष्मीवान, भगवान, धनी, घमण्डी इत्यादि।

फिर इसी अर्थ में वी प्रत्यय भी होता है; जैसा, यशस्वी, तपस्वी, मायावी इत्यादि।

युक्त अर्थ में लु प्रत्यय होता है; जैसा, दयालु, कृपालु इत्यादि। बहुत बोलने अर्थ में आल प्रत्यय होता है; जैसा, वाचाल। जानने अर्थ में ज्ञ प्रत्यय होता है; जैसा, नीतज्ञ, गणितज्ञ। भक्षण अथवा चलने अर्थ में चर प्रत्यय होता है; जैसा, नभचर, जलचर।

मिश्रित अर्थ में मय प्रत्यय होता है; जैसा, जलमय, अन्नमय। गुण वाचक अर्थ में इत प्रत्यय होता है; जैसा दुखित, पीड़ित, लज्जित। अतिशय अर्थ में तर और तम प्रत्यय होता है; जैसा, लघुतर, लघुतम, वृद्धतर, वृद्धतम।

गुणवाचक या जातिवाचक के अन्त में आई, ई, त्य, ता, पन, पा, हट, वट प्रत्यय होता है; जैसा, खटाई, लड़काई, पंडित, मित्रता, भलापन, बुढ़ापा, बनावट, चिकनाहट इत्यादि।

कृदन्त

क्रिया से परे जो ऐसे प्रत्यय होते हैं कि जिनसे कर्तृत्व आदि का बोध होता है उन्हें कृत कहते हैं, और कृत के आने से जो शब्द बनते हैं उन्हें कृदन्त कहते हैं; जैसा, मारनेहारा, मारनेहारी, बोलनेवाला, बोलनेवाली, पालक, पूजक, गवैया इत्यादि।

अपभ्रंश Corrupted words

हिन्दी में बहुतेरे शब्द दूसरी-दूसरी भाषाओं से बिगड़-बिगड़ के बन गये हैं।

हिन्दी का मूल संस्कृत है।

Derived words alter their shape in passing from one language into another generally by some change in their final letters.

(१)

संस्कृत	हिन्दी	संस्कृत	हिन्दी	संस्कृत	हिन्दी
सर्व	सब	कुम्भकार	कुम्हार	जिह्वा	जीभ
चन्द्र	चाँद	मस्तक	माथा	नासिका	नाक
हस्त	हाथ	सूर्य	सूरज	अक्षि	आँख
दन्त	दाँत	पाद	पाँव	पञ्च	पाँच
कर्ण	कान	दंष्ट्रा	दाढ़ी	अग्नि	आग
सप्त	सात इत्यादि।				

(२)

अरबी	हिन्दी
तंबूरा	तम्बूरा
बतक	बतक
लोहान	लोहवान
शोम	सूम

(३)

फारसी	हिन्दी
तरबूज (सं० तरम्बुज)	तरबुज
दायह	दाई
दीवक	दीमक
नख	नख

(४)

पोर्चुगाली	हिन्दी
लीलाम Leilam	नीलाम
मैस्टो वा मैस्ट्रो Masto or Mast(r)o	मस्तूल
मेस ऐकेवर Mes acaber	मासकवार इत्यादि।

निरर्थक अनुक्रमी Superfluous.

निरर्थक अनुक्रमी उसे कहते हैं जिसका अर्थ आप से कुछ न हो, परन्तु जिस शब्द के साथ लगाया जाय उसी भाँति की वस्तुओं को जनावे; जैसा, दोहनी ओहनी, रोटी ओटी, कपड़ा उपड़ा।

पहिले उदाहरण पें ओहनी शब्द का यह अर्थ है—

दोहने के समय दूध दोहनेवाला दोहने को ढूँढ़ता है, और कहता है कि 'दोहनी ओहनी लाव' अर्थात् दोहनी हो तो दोहनी लाव; नहीं तो कोई ऐसा बरतन लाव जिसमें दूह सकूँ।

तरकीब पदव्यक्ति Parsing

शब्दों के लिंग, वचन, पुरुष, अवस्था आदि जितनी व्याकरण-सम्बन्धी बातें हैं उन सबको बतलाना इसी को नाम पदव्यक्ति वा पार्सिंग है। "दयावान[१] राजा[२] अनाथ[३] व्यक्तियों[४] को[५] अपने[६] हाथ[७] से[८] धन[९] दान[१०] करता है।" (१) विशेषण पद, राजा का विशेष करता है। (२) विशेष्य पद, पुल्लिग, अन्यपुरुष, एकवचन, कर्तृकारक, "दान करता है" क्रिया से सम्बन्ध रखता है। (३) विशेषण पद, व्यक्तियों का विशेष करता है। (४) विशेष्य पद, उभय लिंग, अन्यपुरुष, बहुवचन, कर्मकारक, "दान करता है" क्रिया का कर्म है। (५) अव्यय (६) विशेषण पद, हाथ का विशेष करता है। (७) विशेष्य पद, पुल्लिङ्ग, अन्यपुरुष, एकवचन, करण कारक। (८) अव्यय। (९) संज्ञा पद, पुल्लिग, अन्यपुरुष, एकवचन, कर्मकारक, "दान करता है" द्विकर्मक क्रिया का कर्म है। (१०) क्रिया पद, सकर्मक भेद, स्वार्थ दशा, वर्त्तमान काल, अन्यपुरुष, राजा के साथ सम्बन्ध रखता है।

नीचे लिखे हुए वाक्यों में शब्दों को शुद्ध करो।

जुमला गलत अशुद्ध वाक्य Incorrect sentences

(१) मेरे पास बहत्तर गाड़ी थी।
(२) मेरा किताब दे दो।
(३) राजा का बेटी व्याही गई।
(४) भागवत का कथा मुझे बहुत भाता है।
(५) यह बहुत मीठी पानी है।
(६) तेरा बात मुझे सुन नहीं पड़ता।
(७) हे भाइयों! उठो, सूर्य उगी।
(८) हे राजा! तुझे कुछ इसका चिन्ता नहीं, कि तेरा प्रजा दुख पाता है।
(९) गाय चरतो चरती बन में जाकर शब्द करने लगा।
(१०) छूई मूई की पेंड़ भी एक अनूखी पेंड़ है, उसका पेंड़ हाथ भर से ऊँचो नहीं बढ़ती, उसका पत्ती इमली की सी होती है, और छोटा छोटा फूल भी निकलता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शब्द-विचार क्या सिखलाता है?
(२) शब्द क्या है? इसके के भेद हैं?
(३) वर्णात्मक शब्द का लक्षण बतलाव।
(४) ध्वन्यात्मक किसे कहते हैं?

(५) वर्णात्मक शब्द के कै भेद है ?
(६) सार्थक शब्द का लक्षण बतलाव।
(७) निरर्थक शब्द का लक्षण बतलाव।
(८) सार्थक शब्द के कै भेद हैं ?
(९) संज्ञा किसे कहते हैं ?
(१०) संज्ञा कै प्रकार की होती है ? हर एक का नाम लो।
(११) जातिवाचक संज्ञा किसे कहते हैं ?
(१२) प्रकृति नामवाचक संज्ञा किसे कहते है ? इसका उदाहरण बतलाव।
(१३) भाववाचक संज्ञा का लक्षण बतलाव।
(१४) संज्ञा में क्या क्या होते हैं ?
(१५) हिन्दी में वचन कै हैं ? हरएक का नाम लो।
(१६) एकवचन किसे कहते हैं ? इसका उदाहरण बतलाव।
(१७) बहुवचन किसे कहते हैं ? इसका उदाहरण बतलाव।
(१८) हिंदी में लिंग कै है ? और कौन कौन ?
(१९) पुलिंग किसे कहते हैं ? इसका एक उदाहरण बतलाव।
(२०) स्त्रीलिङ्ग किसे कहते हैं ? इसका एक उदाहरण बतलाव।
(२१) पुरुष कै हैं ? और कौन कौन ?
(२२) उत्तमपुरुष किसे कहते हैं ?
(२३) मध्यमपुरुष किसे कहते हैं ?
(२४) अन्यपुरुष किसे कहते हैं ?
(२५) हिंदी में अवस्थाएँ कै हैं ? हरएक का नाम लो।
(२६) आठो कारक का लक्षण बतलाव।
(२७) संज्ञाओं के बहुवचन बनाने की क्या रीति है ?
(२८) नीचे लिखे हुए शब्दों का स्त्रीलिङ्ग क्या होगा ? पुरुष, राजा, बाप, भाई, ओझा, बैल, ससुर और बिलार।
(२९) पुरुषवाची शब्दों से स्त्रीलिङ्ग की रचना क्योंकर होती है ?
(३०) जो शब्द पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों होते हैं, उसे क्या कहते हैं ?
(३१) बालक शब्द का रूप आठो कारक में लो।
(३२) सर्वनाम किसे कहते हैं ?
(३३) सर्वनाम शब्दों को संबोधन होता है या नहीं ? सर्वनाम के कै भेद हैं ?
(३४) सर्वनाम के पाँचों भेदों के लक्षण और शब्द बतलाव।
(३५) विशेषण किसे कहते है ? इसके कितने भेद हैं ? हरएक का नाम लो।
(३६) नीचे लिखे हुए शब्द किस-किस प्रकार के विशेषण है ? पहिला, एक, दुगना, विद्वान।
(३७) 'एक' शब्द का अर्थ बतलाव।
(३८) क्रिया किसे कहते हैं ?

(३९) अकर्मक सकर्मक का लक्षण बतलाव ।
(४०) क्रिया कै प्रकार की होती है ? हरएक का नाम बतलाव ।
(४१) दशाएँ कितनी हैं ? और काल कै हैं ? हरएक का नाम लो ।
(४२) क्रियाओं के बनाने की रीति बतलाव ।
(४३) अव्यय किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? उनके नाम लो ।
(४४) क्रिया विशेषण किसे कहते हैं ? यह कै प्रकार के हैं ? इसका बीजक बतलाव । अर्थात् क्रिया विशेषण के कौन-कौन शब्द हैं ?
(४५) विभक्ति किसे कहते हैं ? इसका बीजक बतलाव ।
(४६) समुच्चयबोधक अव्यय किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ?
(४७) सम्बोधन सूचक अव्यय किसे कहते हैं ? इसका बीजक बतलाव ।
(४८) विस्मयादि बोधक अव्यय किसे कहते हैं ? यह कै प्रकार का होता है ?
(४९) संधि किसे कहते हैं ? और यह कै प्रकार की होती है ? हरएक का नाम लो ।
(५०) हरएक प्रकार की सन्धि की थोड़ी रीतें बतलाव ।
(५१) समास किसे कहते हैं ? यह कै प्रकार के है ? उनके नाम बतलाव ।
(५२) छओ प्रकार के समास के लक्षण बतलाव ।
(५३) तद्धित किसे कहते हैं ? अपत्य अर्थ में कौन प्रत्यय होता है ?
(५४) कृदन्त किसे कहते हैं ? इसका उदाहरण बतलाव ।
(५५) अपभ्रंश शब्द किसे कहते हैं ?

तीसरा बाब — तीसरा खण्ड — Part III
व्यने जुमला — वाक्यविचार — Syntax

वाक्यविचार वाक्यों में शब्दों की ठीक सजावट को सिखलाता है ।

जुमला — वाक्य — Sentence

वाक्य शब्दों के पूरे अर्थ के बनाव का एक समुदाय है; जैसा, परमेश्वर ने संसार को बनाया ।

जुमला मुख्तसर — अदीर्घ वाक्य — Simple sentence

अदीर्घ वाक्य वह है जिसमें एक कर्त्ता और एक ही क्रिया हो; जैसा, समय थोड़ा है ।

जुमला तूल — दीर्घ वाक्य — Compound sentence

दीर्घ वाक्य वह है जो दो वा दो से अधिक अदीर्घ वाक्यों से मिलकर बने, और जिसमें एक वा एक से अधिक समुच्चयबोधक भी हों; जैसा, "बैताल बोला, हे राजा ! जयस्थल

नाम नगर, वहाँ का वर्धमान नाम राजा, उसके नगर में विष्णु स्वामी नामी ब्राह्मण, उसके चार बेटे, एक जुआरी, दूसरा गंजेरी, तीसरा व्यभिचारी और चौथा नास्तिक था।"

(१) रीति

कर्तृ प्रधान वाक्य में क्रिया को कर्त्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार रखनी चाहिए; जैसा, लड़का खेलता है। लड़की खेलती है।

(२) रीति

कर्म प्रधान वाक्य में क्रिया को कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार रखनी चाहिए; जैसा, राजा ने गाली दी। देवरानी ने कुत्ता पाला।

(३) रीति

यदि एक क्रिया के अनेक कर्त्ता हों, तो अन्तिम कर्त्ता के लिंगानुसार क्रिया होगी; जैसा, यहाँ बहुत-सी गाड़ियाँ और बैल थे।

(४) रीति

कारक समेत संज्ञापद और क्रिया के योग से वाक्य बनता है; यद्यपि वाक्य में सब कारक आ सकते हैं, परंतु कर्ता और क्रिया का होना अवश्य है। जैसा, मैं आता हूँ।

(५) रीति

हिन्दी में वाक्य की आदि में कर्ता और अन्त में क्रिया रखनी चाहिए; जैसा, यज्ञदत्त अपने पाठक से पोथी पढ़ता है।

(६) रीति

वाक्य में ऐसे शब्दों के रखने से कि जिनका परस्पर कुछ सम्बन्ध न रहे असम्बन्ध वाक्य कहा जाता है; जैसा, 'घोड़ा धोबी रंगता है'। घोड़ा ऐसी वस्तु नहीं जिसको धोबी रंगे, धोबी को कपड़ा धाने से सम्बन्ध है, और 'रंगना' रंगरेज का काम है न कि धोबी का; इसलिये यह वाक्य असम्बन्ध है।

(७) रीति

जब दो संज्ञाओं के बीच में मेलवाचक समुच्चय-बोधक आवे, तो वे दो संज्ञाएँ एक ही अवस्था होंगी; जैसा, देवदत्त और यज्ञदत्त पढ़ते थे।

(८) रीति

यद्यपि वाक्य में बहुतेरी क्रियाएँ आती हैं, परंतु यदि पूर्वकाली होंगी, तो हरएक का कर्त्ता एक ही होगा; जैसा, देवदत्त और यज्ञदत्त नित मुँह धो, स्नान पूजा कर, ब्राह्मणों को दान दे, भोजन करता है।

(९) रीति

कर्त्ता का 'ने' चिन्ह अकर्मक और अप्रसिद्ध कर्तृक में और सकर्मक क्रिया के लाना, ले जाना, बोलना, और भूलना में नहीं आता है; जैसा, मैं आया। वह मारा गया। वह बोला।

(१०) रीति

(अ) विशेषण के लिए विशेष्य का भी होना आवश्यक है; जैसा, अनूखी वस्तु।

(ग्रा) विशेष्य कहीं छिपा हुग्रा भी रहता है; जैसा, भूखे को ग्रन्न देना चाहिए। ग्रर्थात् भूखे मनुष्य को।

(इ) हिंदी में विशेषण प्राय: विशेष्य के पहिले रक्खे जाते हैं; जैसा—चैतन्य पुरुष।

(ई) कहीं विशेषण विशेष्य के पीछे ग्राते हैं; जैसा, राजा बड़ा नैयायिक है। यहाँ 'राजा' विशेष्य ग्रौर 'नैयायिक' विशेषण है।

(उ) विशेषण में भी लिंग होता है; जैसा, ग्रच्छा लड़का। ग्रच्छी लड़की।

(११) रीति

प्रश्न के उत्तर में कभी तो पूरा वाक्य कहा जाता है ग्रौर कभी केवल "हाँ" व "न", "नहीं" के कहने से ग्रर्थ निकल जाता है; जैसा, तू किसका बेटा है? मैं देवदत्त का बेटा हूँ। तू वहाँ गया था? हाँ।

(१२) रीति

प्रश्न ग्रौर उत्तर की क्रिया बहुधा एक ही काल की होती है; जैसा—तू जायगा? हाँ, मैं जाऊँगा।

परंतु कहीं ग्रौर काल की क्रिया में भी उत्तर दिया जाता है; जैसा, तू ग्राज मेरे पास ग्रावेगा? ग्राप चलें, मैं ग्राता हूँ।

(१३) रीति

हिंदी में कभी 'न' शब्द का कुछ ग्रर्थ नहीं होता है; जैसा, "चले न ग्राव।" ग्रर्थात् चले ग्राव।

(१४) रीति

हिंदी में प्रतिष्ठे के कारण, एकवचन कर्त्ता की क्रिया बहुवचन होती है। जैसा, "श्री शुकदेव जी बोले।"

(१५) रीति

बोलचाल में उच्चारण के भेद से भी ग्रर्थ दूसरा हो जाता है; जैसा, "तुम जाते हो?" में यदि स्वीकार-बोधक प्रश्न हो, तो 'ए' ग्रौर 'ग्रो' को बहुत न बढ़ावेंगे ग्रौर शीघ्र बोल देंगे; परन्तु जो केवल सुधि लेनी हो, तो बढ़ाकर बोलेंगे।

(१६) रीति

हिंदी (खड़ी बोली) में जब मध्यमपुरुष वा ग्रन्यपुरुष की कही हुई बात को लिखते हैं, तो उत्तमपुरुष का सर्वनाम उसके स्थान में ग्राता है; जैसा, "उसने कहा, कि मैं न जाऊँगा।" "तू कहता था, कि मैं न जाऊँगा।"

परंतु इंगरेजी में उसी पुरुष का सर्वनाम ग्राता है; जैसा, He said that he will not come. उसने कहा, कि वह न ग्रावेगा। You said that you will not come. तूने कहा, कि तू न ग्रावेगा।

नीचे लिखे हुए वाक्यों को पूरा करो :—

वे पोथियाँ मेरी सन्दूक (   ) हैं।

थैली सन्दूक में (   )।

बिल्ली और कुत्ता आपस में (   )।
(   ) खेद मत दो, क्योंकि हम खेद देना नहीं चाहते हैं।
यह पोथी मैंने नहीं, परंतु (   ) ने पढ़ी थी।
तुम चल सको तो तुम्हें (   ) के साथ जाना होगा।
हा ! मैंने जाना था, कि (   ) मनुष्य है।
मनुष्य जितना अपने बच्चों को चाहता है, उससे अधिक (   ) को चाहता है।
रेल बहुत (   ) चलती है।
(   ) आदमी सदा दुःख पाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) वाक्य-विचार क्या सिखलाता है ?
(२) वाक्य क्या है ? इसका एक उदाहरण बतलाव।
(३) अदीर्घ-वाक्य किसको कहते हैं ?
(४) दीर्घ वाक्य किसे कहते हैं ?
(५) कर्तृ प्रधान वाक्य में क्रिया को किसके अनुसार रखनी चाहिये ? अथवा वाक्य-विचार की पहिली रीति बतलाव।
(६) कर्म प्रधान वाक्य में क्रिया को किसके अनुसार रखनी चाहिये।
(७) यदि एक क्रिया के अनेक कर्त्ता हों, तो किस कर्त्ता के लिंगानुसार क्रिया होगी ?
(८) कौन दो वाक्य-खण्ड के योग से वाक्य बनता है ?
(९) हिन्दी में वाक्य के किस स्थान में कर्त्ता और किस स्थान में क्रिया रखनी चाहिए ?
(१०) असम्बन्ध वाक्य किसे कहते हैं ?
(११) जब दो संज्ञाओं के बीच में मेलवाचक समुच्चयबोधक आवे, तो वे दो संज्ञाएँ दो अवस्थाएँ होंगी वा एक ही ?
(१२) यद्यपि वाक्य में बहुतेरी क्रियाएँ आती हैं, परन्तु यदि पूर्वकाली होंगी, तो हरएक का कर्त्ता एक ही होगा वा विलग विलग ?
(१३) कर्त्ता का 'ने' चिन्ह कहाँ-कहाँ नहीं आता है ?
(१४) कुछ विशेषण के नियमों को बतलाव।
(१५) प्रश्न के उत्तर में समूचा वाक्य कहा जाता है वा एक दो शब्द ?

●

चौथा बाब चौथा खण्ड Part IV

चिन्ह विचार Punctuation

चिन्ह-विचार उस रीति को बतलाता है कि जिससे विराम आदि के द्वारा वाक्यों का लिखना और वांचना शुद्धपूर्वक हो ।

विराम Stops

पुस्तक वा पत्री आदि के लिखने वा वांचने में, अर्थबोध के हेतु ठौर-ठौर पर जो ठहराव होते हैं उनको विराम कहते है ।

मुख्य विराम सात हैं; स्वल्प विराम (,), अर्ध विराम (;), अपूर्ण विराम (:), पूर्ण विराम (।), प्रश्न चिन्ह (?), उदार चिन्ह (!), विशेषार्थ (-) ।

स्वल्प विराम Comma

स्वल्प विराम वाक्य के उन खण्डों को विलग करता है, कि जो अर्थवत मिले हुए है, परंतु एक ठहराव का होना अवश्य है ।

(१) रीति

अदीर्घ वाक्य जब छोटा हो तो उसके अन्त में केवल पूर्णविराम चाहिये; जैसे, इस पृथ्वी में कोई सुखी नहीं है ।

(२) रीति

दीर्घ वाक्य के खंड सब चाहे छोटे हों वा बड़े, स्वल्प विराम से विलग विलग किये जाते हैं; जैसे, "धरती पर अनेक देश हैं, और उनमें मनुष्य बसते हैं; परन्तु सब देश के लोगों की बोली एक सी नहीं है, जैसा यहाँ के लोग, जिसे कुत्ता कहते हैं उस जंतु को इङ्गलण्डीय लोग डौग कहते हैं ।"

(३) रीति

जब एक वाक्य खंड के दो शब्द समुच्चय-बोधक से मिलाए जाते हैं तो उनके बीच में स्वल्प विराम नहीं रक्खा जाता; जैसे, पृथ्वी और चन्द्रमा ग्रह हैं ।

(४) रीति

जब एक वाक्य खंड के तीन वा तीन से अधिक शब्द समुच्चयबोधक के साथ वा बिना उसके आते हैं तो, उन शब्दों के पीछे एक-एक स्वल्प विराम देना उचित है, परन्तु अंत के शब्द में नहीं; जैसा, युग चार हैं, १ सत्ययुग २ त्रेता ३ द्वापर और ४ कलियुग ।

शुब्हा वक्फ मुतवस्सित अर्ध विराम Semicolon

अर्ध विराम वाक्य के उन खंडों को विलग करता है, कि जो स्वल्प विराम की अपेक्षा कम मिलाप रखते हैं ।

(२) रीति

जब वाक्य का पहिला भाग एक पूरे अभिप्राय को जनाता है, परंतु उसके अंत में एक विराम जो उसके फल बतलाने के लिये, वा कुछ वर्णन के लिये योग किया जाता है, तो अर्ध विराम से दोनों भाग बिलग बिलग होंगे; जैसा, अपने धर्म को श्रद्धापूर्वक निवाहो; क्योंकि यह तुमको स्वर्ग के योग्य बनावेगा।

(३) रीति

जब कई छोटे छोटे वाक्य आवश्यक बिना सम्बन्ध एक दूसरे के आते हैं, वे अर्ध विराम से बिलग बिलग किये जा सकते हैं; जैसा, हरएक वस्तु अदृश्य हुई जाती है।

(४) रीति

जब किसी वाक्य में कई विषय को गिनती रहती है, तो प्रत्येक भाग अर्ध विराम से बिलग बिलग किये जाते हैं—जैसा, ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि स्वभाव अपनी कर्तृत्व से अनियमित है, इसे ऐसी सम्पत्ति है जो कभी घट नहीं सकती; ज्ञान की सदा बढ़ती है, और होनिहार सन्तान ऐसी वस्तुओं को ढूँढ़कर ऊपर करेंगे जिसका हमको कुछ भी बोध नहीं है।

अपूर्ण-विराम Colon

किसी वाक्य को दो वा अधिक खंडों में (जो अर्ध-विराम से कम सम्बन्ध रखते हैं परन्तु ऐसा अनाश्रित न हो कि पूर्ण-विराम दिया जा सके) बाँटने के लिये, अपूर्ण विराम व्यवहार किया जाता है।

१ रीति

अपूर्ण विराम उस दशा में व्यवहार किया जाता है जब कि वाक्य का एक भाग अभिप्राय और आश्रय दोनों से पूरा रहे, परन्तु किसी दूसरे सहायक वचन वा वर्णन से योग किया गया हो; जैसा, सोंच की प्रकृति में परिश्रम करो, इससे बढ़ करके कोई परिश्रम नहीं है।

२ रीति

जब वाक्य (जो परस्पर में अर्ध विरामों से बिलग बिलग किये गए हैं) के कई भागों का अभिप्राय, अन्तिम भाग पर ठहरता है, तो वह भाग प्रायः अपूर्ण विराम के द्वारा दूसरे से बिलग किये जाते हैं; जैसा, "देवरूपी नियम स्थापक, अपने शब्द को स्वर्ग से प्रकट करते हैं; सर्वशक्तिमान अध्यापक अपनी भुजा को पारितोषिक वा दंड देने के लिये आगे पसारते हैं; यही विचार संसार को भय दिखलाता है, सत्यशीलता को टेकता है, और पाप को रोकता है।

३ रीति

जब कोई उदाहरण, स्वोक्ति-बोधक, वा बातचीत प्रवेश की जाती है, यह शेष वाक्य से अर्ध विराम वा अपूर्ण-विराम के द्वारा पृथक किये जाते हैं; जैसा, 'धर्म पुस्तक हमको देवता का मन भावन प्रदर्शन देती है, इन शब्दों में; परमेश्वर ही प्रीति है।"

पूर्ण-विराम Full stop

जब वाक्य अभिप्राय, और आशय दोनों में पूरा हो जाता है, तो पूर्ण-विराम व्यवहार होना चाहिए; जैसा, आशा खंडन और अनुभव से उपद्रव का दुख भोग पाला गया है।

विशेषार्थ Dash

विशेषार्थ (—) वहाँ व्यवहार किया जा सकता है जहाँ कि वाक्य एकाएक टूट जाता है, जहाँ अर्थ बोध के हेतु एक विराम का देना आवश्यक हो, अथवा वहाँ जहाँ कि कुछ कल्पना हो; जैसा, "और परमेश्वर ने कहा"—क्या ? "प्रकाश होने दो।"

प्रश्न-चिन्ह The note of Interrogation

प्रश्न-चिन्ह (?) प्रश्न बोधक वाक्य के अन्त में रक्खा जाता है; जैसा, तुम अपने धर्म को क्यों छोड़ते हो ?

उदार-चिन्ह The note of Admiration

उदार-चिन्ह (!) अकस्मित चित्तवृत्ति, ह्लाद, भय, आश्चर्य आदि के वर्णन के उपरान्त और सम्बोधन में व्यवहार किया जाता है; जैसा, "नित्य ! तू हर्षित है, भयानक शोच !"

अतिरिक्त अंस Parenthesis

अतिरिक्त अंस ( ) आवश्यक वा सुलभ के हेतु वाक्य के अन्तर्गत रक्खा जाता है, परन्तु इसके छोड़ देने से भी व्याकरण में कुछ दोष नहीं होता; जैसा, रावण (जो लंका का राजा था) रामचन्द्र का बैरी था।

नीचे लिखे हुए चिन्ह टिप्पणी अर्थात् पृष्टि के अन्तिम लेख को बतलाते हैं।

नक्षत्राकार Asterisk (*)
चतुष्कोन सुच्याकार Oblisk (†)
द्विगुण कटार Double Dagger (‡)
स्पष्टसूचक A Parallel (||)
परिच्छेद Paragraph (॥)

कागपक्ष Caret

भूलसूचक (‸) जनाता है कि कोई शब्द छूट गया है; जैसा, आप बड़े ‸ हैं। (‸ = बुद्धिमान)

त्रूटी Ellipsis

त्रूटी (-) वहां दी जाती है, जहाँ कोई अक्षर छूट जाता है; जैसा, "दा—दर" दामोदर के पलटे।

कोष्ट Bracket

कोष्ट [ ] शब्द (जो कि दोष को मिटाने के अभिप्राय से रक्खा जाता है) के घेरने के लिये व्यवहार किया जाता है।

संयोजक Hyphen

संयोजक (-) दो शब्दों को मिलाने के लिये आता है।

प्रदेसनो Index

प्रदेसनो (☞) विशेष बात को बतलाती है।

बाब खण्ड बोधक Section

खण्ड बोधक (§) किसी पुस्तक को कई अध्यायों में बाँटने के लिए आता है।

स्वक्ति बोधक Quotation

स्वक्ति-बोधक वा अवतरण चिन्ह (" ") वहाँ आता है जहाँ किसी पुस्तक वा किसी के वचन को ज्यों का त्यों लिख लें।

नीचे लिखे हुए वाक्यों में जहाँ जहाँ जिस जिस चिन्ह (विराम) को रखना उचित है, रखो।

"और और नगरों में सौदागरी करता हुआ कई महीनों पर वह बनिआ भरतखंड की राजधानी में उपस्थित हुआ अहा दिल्ली की उस समय अपूर्व शोभा थी भरतखंड में तो क्या सारी पृथ्वी में ऐसा नगर नहीं बसता कलकत्ता को कौन पूछे लन्डन भी वैसा बड़ा मनोहर और मनुष्य खचित नहीं है जैसा मोगल राजाओं के समय में हिन्दुस्तान का यह प्रधान नगर था कौन ऐसा मनुष्य है जो दिल्ली की वर्तमान अवस्था सोच भर ठंढी सांस न लेता हो कौन ऐसा मनुष्य है जिसका हृदय वहाँ के टूटे फूटे घरों को देख न विहरता हो पाठक वर्ग इस नगर के देखने ही से हमारा कहना अल्प समझोगे।"

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) चिन्ह विचार क्या बतलाता है ?
(२) विराम किसको कहते हैं ?
(३) मुख्य विराम कै हैं ? हरएक नाम बतलाव।
(४) स्वल्प विराम का लक्षण बतलाव।
(५) अदीर्घ वाक्य जब छोटा हो, तो उसके अन्त में कौन विराम चाहिये ?
(६) दूसरी रीति में क्या वर्णन किया गया है ?
(७) तीसरी रीति में स्वल्प विराम का क्या व्यवहार लिखा है ?
(८) चौथी रीति में विराम का जो व्यवहार लिखा है बतलाव।
(९) अर्ध-विराम का लक्षण बतलाव।
(१०) अर्ध-विराम का पहिला व्यवहार (रीति) बतलाव।

इसका पाँचवाँ खंड (छन्द-विचार) दूसरे वाल्युम में लिक्खा गया है।

Printed—By D. V. Sapray

मौलवी स्टाइल की हिन्दी का

छन्द भेद

जिसको

अयोध्या प्रसाद खत्री

मोज़फ्फ़रपुर निवासी ने लिखा।

THE VERSIFICATION
OF THE
HINDI
OF THE
MAULVI STYLE

By

AYODHYA PRASAD KHATRI

OF MOZUFFERPORE

१८८७ ई०

मौलवी स्टाइल की हिन्दी का

छन्द भेद

मुसलमान राजाओं के समय में मोलवियों ने अरबी की चालू पर हिन्दी में दस तरह के छन्द माने और उनके नाम भी अरबी ही नाम रक्खे; १ फ़र्द, २ ग़ज़ल, ३ क़सीदा, ४ तशबीब, ५ रुबाई, ६ क़िता, ७ मसनवी, ८ तरजीय बन्द, ९ मोसम्मित और १० मुस्तज़ाद।

फ़र्द

फ़र्द एबारत है एक शेर से चाहे मोक़फ्फ़ा हो वा ग़ैर मोक़फ्फ़ा, परंतु किसी ग़ज़ल वा क़सीदे आदि की न हो; नहीं तो एक विशेष छन्द क्यों माना जाता !

फ़र्द

जिस जगह बैठे हैं वा दीदए मम उट्ठे हैं।
आल किस शख्स का मुँह देख के हम उट्ठे हैं?
जौक़।

तू टुक जिगर तो मेरे मुर्ग़ नामेबर का देख,
वहाँ उड़े हैं जहाँ पर जलें फ़िरिश्तों के।
सौदा।

ग़ज़ल

ग़ज़ल उन शेर मिले हुए वज़न और क़ाफ़िये को कहते हैं कि जिसमें छवि, प्रीत (इश्क़), बड़ाई, संयोग वियोग आदि का वर्णन हो; इसके सिवाय दूसरे प्रकार के मज़मून शिक्षा (नसीहत), शान्ति वर्णन (मार्फ़त), भजन (वाज़) आदि जो बिर्ले मूर्ख लिखते हैं ग़ज़ल नहीं हो सकी। शेर औवल के दोनों मिसरों में क़ाफ़िया हो (उसको मुतला कहते हैं) शेष शेरों के मिसेर दोयम में क़ाफ़िया हों, मिसरा औवल में कुछ प्रयोजन नहीं। शेर दोयम को **हुस्नमुतला** अथवा—ज़ेब मुतला कहते हैं। ग़ज़ल में तखल्लुस अर्थात् अनुमानिक नाम अपना अवश्य रखते हैं।

शेर

जो देता है बोसे के मोक़े की फ़र्गात,
टुक देखो **सौदा** यह तेरा खाम न होए।
सौदा।

ग़ज़ल की शेरों की गिंती—५, ७, ९, ११, १३, १५ और १७ है, और किसी ने इसका अन्त २५ शेर लिक्खी है।

ग़ज़ल

बशकल् मेह है गर्दिश है हमको सारे दिन ,
जो तुम फिर आव तो प्यारे फिरें हमारे दिन ।१।
नहीं है तेरी मरीज़ां हिज्र का चारा ,
अब अपनी ज़ीस्त के भरते हैं यह बेचारे दिन ।२।
कब उससे होगी मुलाक़ात ? मैं यह पूछूं हूँ ,
ज़रा तू देख नजूमी मेरे सितारे दिन ।३।
बवस्ल क्योंकि मोब दिल हूँ हिज्र के ऐयाम ,
मगर ख़ोदा है, यह बिगड़े हुए संवारे दिन ।४।
लगाया रोग जवानी में क्यों **मियां जुरात** ?
अभी तो खेल तमाशे के थे तुम्हारे दिन ।५।

३ क़सीदा

क़सीदा बऐ नहु ग़ज़ल के सदृश है, केवल अंतर यह है कि ग़ज़ल में ख़सूसियत मज़मून की है और क़सीदे में आम है, चाहे स्तुति (हम्द) हो चाहे उपहास (हज्वो) । क़सीदा २५ (बिर्ले के मत से) १५ बैत से कम नहीं होता और इसकी हद नहीं है। बिर्ले ने १२०, बिर्ले ने १७० बैत मुक़र्रर की है। इसमें शेर गूढ़ अर्थ की होती है और शब्दालंकार और अर्थालंकार रहते हैं कि जिससे कवि (शाएर) की उक्ति (ज़ोरे तबिअत) जान पड़े। प्राय: क़सीदा अपने मज़मून से मौसूम होता है अर्थात् अगर इश्क का वर्णन हो तो **इश्किया**, अगर ग्रह की फेर (शिकायते गर्दिश जमाने में) हो तो **हालिया**, अगर अपनी बड़ाई हो तो **फ़ख़रिया**। अथवा रद्दीफ़ के अक्षर से मौसूम होता है, जैसे अगर रद्दीफ़ ज है तो **जकारी** (जीमिया) म हो तो मकारी (मीमिया)। अथवा रद्दीफ़ (अनुप्रास) से जैसे रद्दीफ़ सूर्य्य हो तो सूर्य्य सम्बन्धी (शमशिया) ।

तशबीब

तशबीब भी ग़ज़ल के सदृश होता है इसमें ऋतु (मौसिम), मदिरा (शराब), मांस (कबाब), सस्ती मोहब्बत यार आदि का वर्णन रहता है। फिर उसी से किसी और नजम खाह मदह ममदूह ख़ाह तारीफ़ माशूक़ वोग़ैरह की ओर झुकावें। निदान तशबीब एक ख़ास किस्म तमहीद की है जिसे **मुरेज़** भी कहते हैं और बिर्ले कवि जुमले तमहीद को (उसमें कोई मज़मून हो) तशबीब (प्रशंसा) कहते हैं। जिस क़सीदे में तशबीब न हो उसको मोज़द्द कहते हैं।

तशबीब संयुक्त क़सीदे का उदाहरण ।

उठ गया वह मन वो देश चमनिस्तां से अमल
तेग़े उर्दि ने किया मुल्के खेजां मुस्त असल ।
सजदए शुक्र में है शाखे समरदार हरएक
देखकर बाग़े जहां में करमें अज्ज व जल ।

क़ूवते नामिया लेती है नबातात की अर्ज़
डाल से पात तलक फूल से लेकर ता फल।
वार से आव खा अक् से हुज़ू में गुल के
लोटे है सबूजे पे अज बस्के हुआ है बेकल।
जोशे रोई दगी प ख़ाक से अब दूर नहीं
शाख़ में बाव ज़मी के भी जो फूटें कोंपल।
आबे ज़ू गिर्द चमन लम्अए ख़ुर्शीद से है
ख़त्ते गुलज़ार के सफ़हे प तिलाई जदवल।
किश्त करने में हरएक तुख़्म से अज़ फ़ैजे हवा
गिरते गिरते ब ज़मीं बर्ग वोबर आता है निकल।
जौहरी को चमनिस्ताने जहां में इस फ़स्ल
आ गया लाल वे ज़मुर्रद के परखने में ख़लल।
ताकुजा शर्ह करूं में किस बक़ौले उर्फ़ी
अरवगर अज्ज फ़ैजे हवा सब्ज़ शवद दर मनक़ल।
निस्बत इस फ़स्ल को पर क्या है सोरवन से मेरे?
है फ़ैज़ा इसकी तो दो चार ही दिन में फ़ैसल।
और मेरा सख़ुन आफ़ाक़ में तायूमें क़ेयाम
रहेगा सब्ज़ बहर मजमा व हरएक दंगल।
हो जहाँ के शोअरा का मेरे आगे सर सब्ज़,
नक़सीदा, न मोख़म्मस, न रुबाई, न ग़ज़ल।
है मुझे फ़ैज़े सो ख़न इसकी हि मद्दा ही का
ज़ात पर जिसकी मुब्रहन कन हे अज्ज बजल।
शेरे यज़दां शहे मर्दां अली आली क़दर
वसीए ख़त्म रोसुल और इमामें औवल।
ख़ाक नालैन की जिस की मददे ताले से
पहुँचे उस शख़्स हुआ अम्माए अजल।
मददे ग़ायब से खुले उसके न मद्दाह का दिल
रू बरू मल्ले सानी से यह हो ओकदा हल।
दीद तेरी बदुई हक से निगह का है ख़लुल
एक शैदो नज़र आती है बचश्मे अहवल।
मर्ज़ीए हक़ तेरी मर्ज़ी से है ज्यों जौहर फ़र्द,
इस यक़ीं में न गुमां कर सके ज़िन्हार ख़लल।
राय तेरी के मोवा फ़िक जो न लिक्खे नुस्ख़ा
करे तासीर न ईसा का मोदावा ब कसल।

साए में दस्ते करम के तेरे हर सुबह वो मसा
दौलते हर दो जहां से हो ग़नी अंब्दे अकल।
वस्फ़े तुझ तेग़े दो सरका मैं कहूँ क्या शहेदीन
दिले मजनूं का जो मैदां में करे है सैक़ल।
नर्म और सख्त मोसावी है किसू पर आवे
ख़ाह बर रूए क़ज्ज वो खाह वह बर पुश्ते जबल।
इसको आसेब नहीं सूरते शमशेर क़ज़ा
न झड़े वह न मुड़े वह न पड़े उसमें बल।
ज़ेरे रां है जो तेरी रख़्शे फ़लक सैर शहा
है वह महबूब जिसे कहिए नेहाएत अचपल।
वस्फ़े तेरे की है शायान जबां तेरी ही
समझे तू आपको या तुझको खुदा बन्दे अजल।
मदह अपनी न समझ यह जो कहा मैं इससे
रुतबा तुझ मदह का आला है सोखन यह असफ़ल।
अर्ज़ अहवाल ही अपना है मुझे इससे ग़रज़
ता बआखिर यह जो मौज़ूँ मैं किया अज औवल।
सो तो वह क्या है रहा होवे जो तुझसे मख़फ़ी
नहीं राज़े दो जहां तेरी नज़र से ओझल।
पर करूँ क्या मैं कि है आठ पहर दिल मेरा
ग़र्दिशे चर्ख़ से जो शीशए साएत बेकल।
कही जाती नहीं वह मुझसे जो इस ज़ालिम ने
किस तरह की मेरी औकात में डाली हलचल।
इस सितमगर से जब ज़ोर मेरा कुछ न चला
तब मैं लाचार कही शिकवे में इसके यह ग़ज़ल
दाद को किसकी फ़लक पहुँचे कि अज रोज़े अज़ले
सुबह जब निकले है ख़ुर्शीद तो लेकर मशअल।
सामने इसके उठे दस्ते तज़ल्लुम उसका
जौहरे अक्ल में जिस शख़्स के आलाय खलल
रास्त केशों से कजी इतनी है इस मलऊल को
कि दिया सर्वो को इसने न कभी फूल न फल।
जहर अपने को जेहैबत से तेरी या हैदर
आप पीता ही गया है बदन इसका सब फल
करके दर्याफ़्त इस अह्वाल को अब, या मौला !
तुझ से यों अर्ज़ करे है यह तेरा अबदे अक़्ल

यह न कर मुझ प' मोवारा के गजन्द इसके से
हिन्द की खाक में अजज़ाए बदन जावें गल।
जल्द पहुँचा बजमीं ने नजफ़ इस आसी को
के इसे उम्र अबद है जो वहाँ आय अजल।
मेरी क़िस्मत कि मुवाफ़िक़ तू मोएयन कर दे
अपनी सर्कार से अब साए तहल्लुल का बदल।
ताक़ते तू ले सोखन आगे भी टुक सौदा को
बख़्श ऐ कूवते बाज़ुए नबी ए मुर्सल।
चाहता है करे आखिर वह दोआ ईया पर
नज़म तुझ मदह की बेहतर जे कलामे औवल।
तामिले खलअते नौरोज़ बबुस्ता ने जहाँ
पावेता नैयरे आज़म शरफ़ अज़ बुर्जे हमल।
बर्ग पैदा करे ता बाग़ में हर एक नेहाल
फूटे ता नामिय से शाखे शजर में कोंपल।
ता मुसम्मा रहे यह नज़्म व बाबु लजन्नत
जब तलक इससे बर आय मेरी उम्मीद व असल।
नखले उम्मीद से अपने हों बरोमन्द मुहिब
हो महब्बत न तेरी जिनको न वह पावें फल।

५ रुबाई

रुबाई (जिसको तराना, दोबैती, चार मिसराई, खस्सी और नाक़िस भी कहते हैं) में चार मिसरे मिले हुए वज़न और क़ाफ़िए होने चाहियें। मिसरा सेवम में अगर क़ाफ़िया हो बेहतर है और नहीं तो परवाह नहीं। इसमें वियोग का वर्णन रहता है।

रुबाई

लाजिम है इनसान को हो सबसे जुदा,
होता है मश्हूर रहे जो तनहा।
वहदत से है फ़रोख खुर्शीद फ़लक,
शोहरत है अज़लत में है मिसाल उंका

अब्दुल अज़ीज़ खाँ।

६ क़िता

क़िता एबारत है दो वा अधिक बैत मिले हुए वज़न और क़ाफ़िए की, मुतले हो खाह न हो, मज़मून सब बैत का मुतल्लिक़ हो जुदागाने न हो। क़िता किसी ग़ज़ल या क़सीदे का टुकड़ा है। दो शेर से कम और १७० शेर से ज़्यादा नहीं होता।

क़िता

मैं न तड़पा जो दमे ज़बह तो यह बाएस था,
कि रहा मदे नज़र हुस्न का आदाब मुझे।
वर्ने वह शोख़ कि जो गुल से नाज़ुक हो सिवा,
लेवे इस तरह से ज़ानू के तले दाब मुझे॥

ज़ौक़।

७ मसनवी

मनसवी या मज़दूज में बेत मिले हुए वज़न होते हैं, हर बैत के मिसरे परस्पर मोक़फ़ी होते हैं।

मसनवी

इश्क़ है ताज़कार ताज़ा ख़याल,
हर जगह उसकी एक नई है चाल।
कहीं आँखों मे ख़ून हो के बहा,
कहीं सर में जनूं हो के रहा।
गह निमक इसको दाग़ का पाया,
गह फतिंगा चिराग़ का पाया।

मीर तक़ी।

८ तरजीय बंद

तरजीय बंद अगर चंद शेर मिले हुए वज़न और क़ाफ़िए मिस्ल क़सीदे वो ग़ज़ल के बाद एक शेर मिले हुए वज़न और अनमिले हुए क़ाफ़िए लाएं उसको **बंद** कहते हैं। अगर चन्द बैत इसी तरह जमा किए जायं बशर्ते कि शेर अनमिले हुए क़ाफ़िए हर बंद में एक ही वाक़े हो उसको तरजीय बंद कहते हैं। हर बंद पांच बैत से कम और ग्यारह बैत से ज्यादा न हो।

तरजीय बंद

तू छोड़ मुझे चला गया दिल,
है उससे ज्यादे बेवफ़ा दिल।
दिलदार के खैंचने पड़े नाज़
अफ़सोस कि मेरे पास था दिल।
यह दुश्मन जान तुम्हें मुबारक,
याने नहीं मेरे काम का दिल।
क्यों दावी दिल रुबाई इतना?
माएल उधर आप ही हुआ दिल।

देता हूँ दम ऐसे फ़ितने गर पर,
इन्साफ़ से देखना मेरा दिल।
इस चशम ने कर दिश्रा ख़राब ग्राह,
था वर्ने बहुत ही पारसा दिल।
कैसी मेरी जान पर बन ग्राई,
ग्रल्लाह! बिगड़ गया है क्या दिल।
घोंटती है गले को कोई हमदम,
क्या बात करूं कि है ख़फ़ा दिल।
ऐ मोहरम राज़ क्या कहूँ मैं?
किस ग्राफ़त जान पर ग्रा गया दिल।
ऐ मूनिस ग़म गुसार हर दम!
क्या पूछिए है क्योंकि ले गया दिल।
ग्रां शोख़ चुनां जे बुद ग्रज़मन,
गोया कि दिल मन बुद ग्रज़मन।
पर्दे में है रश्क माह मेरा,
क्योंकर न हो दिल स्याह मेरा?
क्या मरने के बाद पांव फैलाय,
है मोक़बिरा ख़्वाबग़ाह मेरा।
बस ग्राप में ग्राव तुम कि शायद,
हो दिल में गुज़ार गाह मेरा।
इस सदे सिकन्दरी को तोड़ो,
ग्राईना है संग राह मेरा।
मैं कुश्त बे देता हूं,
है शौक सितम गवाह मेरा।
देखा तूने कि रंग बदला,
ऐ शोख़ फ़सूं निगाह मेरा।
ऐ दोस्तो हाथ से चला मैं,
काबू में नहीं दिल ग्राह मेरा।
मरना नहीं ग्रख़तियार की बात,
ख़ुद जुर्म है उज़ुरख़ाह मेरा।
ऐ चारे गर ग्रब तो फेंक तबरीद,
है हाल बहुत तबाह मेरा।
नासिख़ इन्साफ़ तू ही कर यार,
दिल देने में क्या गुनाह मेरा।
ग्रां शोख़ चुना जे बुद ग्रज़मन,
गोया कि दिल मन बूद ग्रज़मन।

९ मोसम्मित

मोसम्मित में बंद श्रौवल के सब मिसरे मोक़फ्फी हों श्राइंदे हर बंद का क़ाफ़िया जुदा मगर श्राखिर मिसरा असल बंद श्रौवल की तरफ हो। मोसम्मित सात क़िस्म का होता है; १. मोरब्बा, २. मख़म्मस, ३. मोसद्दस, ४. मोसब्बा, ५. मोसम्मन, ६. मोतसा, ७. मोग्रश्शर। रेख़ता कहनेवालों ने आठ भेद माने हैं अर्थात् मोसल्लस एक भेद अधिक माना है। इसको हिन्दी में तक्कड़ कहते हैं। सिवाय मोख़म्मस के और भेद व्यवहार में बहुत कम हैं।

मोख़म्मस शेर

गर शाह सर पर अफ़सर रखकर हुआ तो फिर क्या ?
और वह सलतनत का गौहर हुआ तो फिर क्या ?
माही इल्म मोरा तिब पुर जर हुआ तो फिर क्या ?
नौबत निशां नक़ारा दर पर हुआ तो फिर क्या ?
सब मुल्क सब जहाँ का सरवर हुआ तो फिर क्या ?
क्या रख के फ़ौज लश्कर की सलतनत पना है ?
फिरी दुहाई अपनी ले माहताव मा है।
जब आब कर फ़ना के सिर पर पड़ी तबाही।
फिर सर रहा न लश्कर ने ताज पाद शाही।
दारा वो जम सिकन्दर अकबर हुआ तो फिर क्या ?

१० मुस्तज़ाद

मुस्तज़ाद असल में एक जुज वज़न रुबाई का बाद हर मिसरे रुबाई के लाना है और खूबी मुस्तज़ाद की यह है कि मज़मून शेर का उस फ़िक़रे पर मोनहसिन् नहीं उस सूरत में उसको **मुस्तज़ाद आरिज़** कहते हैं और अगर मानी फ़िक़रे पर मोनहसिर हो उसको मोस्तज़ाद मलजम कहते हैं।

है जब से मेरे तुझसे जुदाई प्यारे, है हाल तबाह।
ग़म से है जान लब प' आई प्यारे, इनल्लाह।
ऐ गुलशन ! जो जानता मैं पहले से, होगा यह हाल।
करता हरगिज न आश्नाई प्यारे, ख़ालिक है गवाह।

मौलवी साहब का साहित्य

जिसको

अयोध्या प्रसाद खत्री

मोजफ्फरपुर निवासी ने लिक्खा ।

THE ARABIC RHETORIC INTRODUCED

By

MOULWI

into

HINDI

१८८७ ई० ।

मौलवी साहब का साहित्य

शब्दालंकार

तजनीस

दो वा अधिक शब्द तदरूप को तजनीस कहते हैं। इसके सात भेद हैं, (१) तजनीसे ताम, (२) तजनीसे नाक़िस, (३) तजनीसे मोकर्रर, (४) तजनीसे मोरक्कब, (५) तजनीसे ख़त, (६) तजनीसे जायद, (७) तजनीसे मोतरिफ़।

तजनीसे ताम

दो वा अधिक शब्द अक्षर और मात्राओं में तदरूप को तजनीसे ताम कहते हैं, जैसा—(१) मोढ़ा (२) तिपाई (३) कांध्वा।

तसनीसे नाक़िस

तजनीसे नाक़िस के शब्द अक्षरों में तदरूप परन्तु मात्राओं में विषम होते हैं; जैसा, वैर और वीर।

तजनीसे मोकर्रर

तजनीसे मोकर्रर में एक ही शब्द दोबारे सेबारे आता और कभी पहिले शब्द में दो एक अक्षर आदि में बढ़ा भी देते है; जैसा,

बैत

हमसे क्यों रखता नहीं है वह बुते खुदा काम काम ?
जिसने अपना कर दिया हर एक पर अन आम आम ॥

तजनीसे मोरक्कव

तजनीस मोरक्कव के शब्द उच्चारण में समान परन्तु विवर्ण में भिन्न होते हैं; जैसा, बैत,

"तुझको न कभी देख मुझे तर्स आया।
भर उम्र नजारे के लिए तरसाया॥
तक़सीर सिवाय इश्क़ क्या मुझसे हुई ?
उरदुक तू खुदा से क़ाफ़िरा तरसाया॥"

तजनीसे ख़त

तजनीसे ख़त के शब्द अक्षरों में बराबर परन्तु उच्चारण में पृथक होते हैं; जैसा—मुश्कीं, मिस्कीं, सुराव, शराब।

तजनीस जायद

किसी मुकाबिल के शब्द में आदि वा अन्त में एक अक्षर बढ़ा देने को **तजनीस जायद** कहते है; जैसा, चाह, चाहा।

तजनीस मुतरिफ़

दो तदरूप शब्दों के अक्षर बराबर हों परंतु अन्त के अक्षर भिन्न हों उसे तजनीसे मुतरिफ़ कहते हैं, जैसा, आज़ाद, आज़ार।

तर्सीय

यह अलङ्कार ऐसा है कि कोई फ़िकरा लिक्खें या कोई मिसरा मौज़ू करें और मोक़ाबिल उस फ़िक़रे या मिसरे के कोई फ़िक़रा या मिसरा इस ढंग पर लावें कि पहिला शब्द इस फ़िक़रे सज्जा का पहिले फ़िक़रे का पहिला शब्द हो और दूसरा शब्द सज्जा का का दूसरा शब्द हो इसी प्रकार से तीसरा, चौथा, पांचवां, छठां और सातवां भी जब तक कि संपूर्ण न हो। और पहिला शब्द उस मिसरे का मिसरे सानी के पहिले शब्द का क़ाफ़िया हो और इसी प्रकार से दूसरे तीसरे शब्द भी हों जबतक कि मिसरा संपूर्ण न हो।

फ़िक़रा

पोंडा पोका इतना बड़ा कि जिसकी बड़ाई ब्यान से बाहर है। पौंडा करो ऐसा भला कि इसकी भलाई गुमान से बढ़कर है।

मिसरा

मुखरा तेरा हज़र खोदाय गरीम है।
गोजा वजा वफ़र वलाय अज़ीम है॥

तर्सीय वा तजनीस

मकसूद बेग दो मकसूद बेग दो।

मोअर्रब

इस अलङ्कार की समूची एबारत में एक ही मात्रा लाते हैं, अर्थात् जबर तो बिलकुल जबर, ज़ेर तो बिलकुल ज़ेर, पेश तो बिलकुल पेश।

ज़ेर

ऐ तेरी बबी के चेचे में मेख।

ज़बर

चनया मल कब का वादा कर कर गया है अभागा अबतक आता है।

पेश

जो तुम मुझको कुं दो तो तुमको गुलदुम दूं।

इश्तेक़ाक़

इस अलङ्कार में एक धातु के अनेक शब्द को लाते हैं, जैसा, जिस **जानेवाले** को दिली **जाना** हो **जाते जाते** चाहिये कि हमसे रुखसत होके जावे इस तरह कि जाने में इसका लिया जाता है।

रद्दुल अजज़ अलस्सद्र

इस अलंकार में दूसरे मिसरे का अन्तिम शब्द पहिले मिसरे का आदि शब्द होता है, चाहे तजनीस के वज़े पर चाहे उसकी रवी पर तजनीस।

शेर

मांग अपनी संवारती है आज
जिसने कल दिल लिया था हमसे मांग।

वराय तजनीस। शेर।

आदमी का मारना अच्छा नहीं!
मज़हरे ज़ाते ख़ोदा है आदमी।

इसके फारसी में कई भेद हैं मिन्जुमले उसके एक यह है कि मिसरे दोयम का पहिला शब्द मिसरे दोयम के अन्त में भी लाया जाय और यह भी तजनीस और ग़ैर तजनीस होता है।

तजनीस। शेर।

जिसने कल टपका खिलाया था हमें
पाल में आमों के डाली आज **पाला**

ग़ैर तजनीस। शेर।

खोदा जो कुछ कि मयस्सर करे वह खा लीजिये।
पुलाव गर न मयस्सर हो कौन खावे पुलाव॥?

इस अलंकार का एक भेद यह भी है कि मिसरे औवल का अन्तिम शब्द मिसरे सानी के शुरू में और मिसरे सानी का अन्तिम शब्द मिसरे सेयोम के आदि में और मिसरे सेयोम का अन्तिम शब्द मिसरे चेहारूम के आदि में लाय जायं और इसका नाम माद है।

रुबाई

आता नहीं क्यों मेरा वह आसाइश जान?
जां जिस प' फिदा करते हैं सब और ईसान।
ईमां है मेरा मुहब्बत उनकी दायम दायम
उसको भी मुझ प' है लुत्फ नेहाँ॥

मक़लूब

मक़लूब से मुराद शब्द, वाक्य, मिसरा और बैत से है। यह कई प्रकार का होता है।

मक़लूब कुल। मिसरा।

बात की बाक़ी नहीं है मुझमें ताब।

रुबाई

रत पर पैदा हमेश होवे तो **बर**
रब को कुदरत से होते हैं वा सब **दर**

रद जो कोई यह बात करे इसका तन।
नित कीजिये दुमचियाँ लगा खून से तर।

मकलूब बाज। मिसरा।

खफ़ा हो गये हैं मियाँ फख़ क्यों।

मकलूब मुजन्नह। मिसरा।

थान दो मलमल के ले आया ब्रजनाथ।

मुरब्बा

मुरब्बा (सर्वतोभद्र) से मुराद चंद सतर और बैत है, लम्बाई और चौड़ाई उसकी पढ़ी जांय और एक सां ठहरे।

कहो कुछ	अजी तुम	खमोशी	कहाँ तक
अजी तुम	सुनो तो	छबीली	भ्यानक
खमोशी	छबीली	बताव	यह क्या है
कहाँ तक	भ्यानक	यह क्या है	एकाएक

लुजूम

कवि दो वा तीन वा अधिक चीजों को किसी शेर में जमा करे और जिक्र उसका हर शेर में करे।

बज़्म

नागिनी को जिस तरह से मोर जाता है निगल।
मैं भी खाकर गम को तेरे रोज रहता हूँ अस्ल।
नागिनी से ली तेरी और हलकए बेनी है मोर।
दो पहाड़ों में छिपे हैं डर के कूं से निकल।

दूसरी किताब में यों लिखा है।

नज़्म

नागिनी से ली तेरी और हलकए बेनी है मोर।
जिस तरह हो मोर से इस नागिनी तू बचा।
नागिनी जांबर कहाँ हो मोर से ? तदबीरें
मोर जिसका हो चले वहाँ नागिनी का जोर क्या ?

तलमीय

एक बैत में दो जबान हों, जैसा,

झपके से हमें दूर से दिखलाके खोदारा।
ऐ नूर खोदा दर नजर अज़रूय वो मारा॥

मुतलव्वन

दो वा दो से अधिक वज़न के बैत।

मुतलव्वन महज़ूफ़। नज़म।

मुझको रुखा न कर ऐ आफत जां बहर खोदा।
बन्दा तेरा हूँ मैं कर रहम मियां बहर खोदा।
इसमें क्या फायदा गर मुझको किया तूने क़तल।
कुछ भी इन्साफ़ कर ऐ सरोखां बहर ख़ोदा।

रुबाई

रुखा न कर, ऐ आफते जां, बहर ख़ोदा
तेरा हूँ मैं, कर रहम मियां, बहृ खोदा
क्या फायदा गर तूने किया मुझको क़तल
इंसाफ कर, ऐ सरोखाँ, बहृ ख़ोदा॥

मुतलव्वन मनकूस। रुबाई।

बे रहम, जला न जी को मेरे, चुप रह!
मालूम है मुझको मकर तेरे, चुप रह!
किस्वास्ते इस कदर बतोले? बस बस!
तू आवेगा? हाय! मेरे देरे, चुप रह!

नज़म

बेरहम जला न जी को मेरे।
मालूम हैं मुझको मकर तेरे।
किस्वास्ते इस कदर बतोले?
तू आवेगा? हाय! मेरे देरे।

ज़ूक़ाफ़ियतैन

एक बैत में दो काफ़िये हों; शेर

गैर के आने में घर तेरे है नुकसान तेरा।
मैं तेरे वास्ते कहता हूँ कहा मान मेरा॥

तौशीह

ऐसे चन्द बैत कि जिनके औवल हर मिसरे से एक-एक हरूफ लिया जाय तो जमा करने से एक नाम या मिसरा पैदा हो।

बैत—जिसने दम में किये हजारों खून,
मारे लाखों गरीब बढ़ के फ़मून।
याद में इसके सब गये हैं भूल।
आब वो नान का था जिस कदर मामूल।
हो तू आगाह नाम से इसके
चारों मिसरे के हर्फ़ औवल ले।

मोअक़द व मोशज्जर

वैत के मिसरों को ऐसा लिक्खे कि गिरह का पंड़ का आकार बूझ पड़े और उन मोटे अक्षरों को जमा करें तो एक भिन्न अर्थ का वाक्य निकले—

ययाजवाली को कमिया के यार ने बंदी के घर नाहक नाहक अलफ़ू के सामने मारा। घर में सो रही थी सो दुशाले की गाँती बाँधे जोड़ी बजा रही थी। खूब जब गुल हुआ तो उठ गई और कोठे पर जाकर लेट रही और जो पौहान में हे-हे करने लगी और सरफराज नौ रोई।

नज़मुननस

ऐसे चन्द वैत कहें कि जो नसर भी हो सके।

मसनवी

अजी साहब, सुनो तो तुमने कल
क्या कहा था और आज किस लिये टल
गये अपने कलाम से? साहिब,
ऐसी उलफत भी कुछ नहीं वाजिव,
हम तो सर देने तक भी हाज़िर थे
पर तुम्हारे तो देखे ढंग नये।
वाह जी वाह! आप के क़ुर्वान।
हूजिये, क्या ही नन्हे और नादान।
बन गये हो, खोदा से टुक तो डरो।
याद तो कीजिये करारों को॥

हज़्फ़

वर्णमाला में से किसी एक अक्षर को छोड़कर कोई गद्य वा पद्य लिखा जाय। 'ब' अक्षर परित्यक्त। गद्य।

जिसका जी चाहे हमारे पास आवे,
घर है उसका, और जो कोई आता आता एकबारगी रह जावे,
तो हमको क्या ग़रज? अगर यह चाहे कि हम सा वेल्याकत भी आया
करे तो यह बात बहुत मुश्किल है।

हाजिब

दो क़ाफ़ियों के बीच में रदीफ़ का वाक़े होना।

शेर

कल जो उठ कर मेरे पहलू से गया दिलवर घर।
गिला उठ जाने से मेरा ही रहा दिलवर पर।

मक़ता

एक अक्षर दूसरे अक्षर के साथ संयोग न रखता हो फार्सी में प्राय: अक्षर विना हल के भी संयोगी होते हैं।

राम रे ! राम रे ! आव रे ! राम ! दौड़ रे दौड़ रे ! आव ज़रा रान दान।

मवस्सल

जिसमें सब संयोगी अक्षर हों और यह कई प्रकार के होते हैं।

दोहर्फी—कोका जी की लड़की की चोटी गोया काली नागिन है पर जब जी चाहे है तब काटे है।

मुन्नाचन्द क्या चला गया। जैसी कुतबी बेगम तैसी बख्शी बेगम। मनीजा पहले कहेगी।

सेहर्फी—मन्नाचन्द क्या चला गया।

चारहर्फी—जैसी कुतबी बेगम तैसी बख्शी बेगम।

पंचहर्फी—मनीजा पहले कहेगी।

तातील

वे नुक़ते की एबारत। फारसी में प्राय: अक्षर एक ही आकार के होते हैं और नुक़ते से दूसरे हो जाते हैं।

आशाराम दिलाराम का साला रम्भाल का कामिल हुआ।

मनकूत्

तातील का उलटा है अर्थात् सभी अक्षर एबारत के मनकूत हों।

जमाल यार ने है महतब भेजे जैसे।

रिक़ता

एक अक्षर में नुक़ता हो और दूसरा बेनुक़ता का।

अलरब सैयद जाफर खलफ हजरत मीर नईम बाई से रुख्सत है।

ख़ीफ़ा

एक शब्द नुक़ते का और दूसरा शब्द बे नुक़ते का।

तजमीबुल मुजदवज

दो शब्द मुसज्जा इकट्ठा लाना।

बोला का कोला हिलता चलता है।

तराफ़ुक़

चार मिसरे इस ढंग के हों कि जिस मिसरे को चाहें मिसरा औव्वल बना लें।

मकतूं हूं में इस शर्म वो हया का दिल से।
आशिक़ हूं में इस नाज़ वो अदा का दिल से।
शैदा हूं में इस ज़ुलफ़ दोता का दिल से।
कुश्ता हूं में इस तर्ज़ वोफ़ा का दिल से॥

अकस

यह अलंकार कभी दो शब्दों में कभी तो फिकरों में कभी एक बैत में होता है। दो शब्द—मारे अफलास के सोने का कटार और कटार का सोना बिक गया।

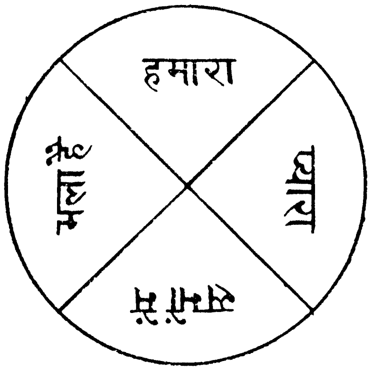
दो फिकरे—तुम्हारी सीरत तुम्हारी सूरत से बेहतर है। तुम्हारी सूरत तुम्हारी सीरत से बेहतर है।

नज़म—यह खूबी और ज़ेबाई यूसुफ़ ने कहाँ पाई। यूसुफ ने कहाँ पाई यह खूबी ओ ज़ेबाई। इस अलंकार में बैत कई वज़न का होता है।

मिसरा—प्याजो हमें देगी बुलाकर नई गाली।

मुदव्वर

मुदव्वर (वृत्ताकार) वह अलंकार है कि वृत बनाकर एक ऐसा मिसरा लिखें कि जिस रुकुन से चाहें शुरू करें।



मुसल्लस

कवि तीन मिसरे एक रुबाई के इस ढंग से कहे कि उन्हीं तीन मिसरों के विर्ले शब्दों के ले लेने से चौथा मिसरा बन जाय और जो शब्द कि चौथे मिसरे के लिए लिये जायं रंगीन अक्षरों में लिखे जायं।

रुबाई

तुझ सा नहीं प्यारा कोई ऐ रश्क कमर,
महबूब कोई न होगा कोई तुझसे बेहतर।
ऐ दिलवर नाजनीं तुझसे कहते हैं सब।
तुझ सा नहीं महबूब कोई ऐ दिलवर॥

मुशाकलत

एसे शब्द के व्यवहार को मुशाकलत कहते हैं जो असंगत हो परंतु कहनेवाले के इच्छानुकूल हो।

मसनवी

किसी के घर गया मेहमान मफलूक।
तन उसका ज़ोफ़ से था गैरते दूक।
कहा यह मेज़मां ने देख उसको।
मज़ा जो चाहता हो दिल बता दो।
कि पकवावें बबर्ची को बुला कर।
खिलावें आप को खाना बिठा कर।
कहा उसने पकावो एक कुर्ता
और उसके साथ कोई मोटा दोपट्टा॥

बदाये मसनूई अर्थालंकार

तज़ाद

तज़ाद अर्थात् विपरीत शब्दों का व्यवहार करना। जो थोड़ा हंसेगा सो बहुत सा रोवेगा।

तिवाक़

तिवाक़ कि जिसको मुराकात नज़ीर भी कहते हैं, मवाफिक़ शब्दों का व्यवहार करना।

फलाना हिन्दू बच्चा जो नया-नया मुसलमान हुआ है, कल जो किसी ने उसके साम्हने **गंगा** का जिकिर किया, और बुज़ुर्गी उसकी पूछी तो मारे शर्म के **पानी-पानी** हो गया। नज़दीक था कि उसके चेहरे से पसीने के **नाले बहने लगें**, या अगर हो सके तो चिल्लू **भर** पानी में डूब मरे।

ज़िला जुगुत

इबहाम तवाक़ वा तज़ाद अर्थात् श्लेष (दोमाने) शब्द का व्यवहार करना, एक समीप और दूसरा दूर। इसको ज़िला जुगुत भी कहते हैं।

वर्षा

नजर बदली हुई देखी सनम की।
नदी नाले ने फ़ुरसत एकदम की।

रूई

निदाफ़ की छोकड़ी बैठी दूकान पर
गालों को साफ करके बेचे है खूब रूई।

रेल

हमारे दिल के इस्टीशन में गम की रेल जारी है।
लगी है **तार** हिचकी की ख़बर जाना कि मिलती है।

इहाम

इहाम (श्लेष) अर्थात् दो अर्थ जिसमें समझे जायं।

अर्श पर क्यों कर न हो तेरा दिमाग़ ?
दी गवरनर ने तुझे कुर्सी प' जा।

दूसरा

सबसे ऊंचा बैठना अच्छा नहीं।
हाथ से मोढ़ा जरा कीजिये जुदा।

तदमीज

रंग के नामों में कोई एबारत।

"मीर बाकर साहब ने जो परसों **सुर्ख पैराहन** मौत का पहिना था सो आज की रात में सबज हो गया।" अर्थात् मीर बाकर जो परसों रक्त कलेवर हो संग्राम में गये सो आज की रात स्वर्गवासी हुए।

इजहारे मुज़मर

किसी के मानसिक प्रश्न को बूझ जाना, उसकी रीति यह है कि थोड़े से अक्षर किसी मिसरे में जमा करे और चार मिसरे दूसरे, रुबाई के वज़न पर इस ढंग से कहे जायें कि एक अक्षर जमा किये हुए अक्षरों में से मिसरे औव्वल में कि जो सिवाय इस रुबाई के है एक या दो या तीन या चारो मिसरों से उस रुबाई के मौजूद हो। अगर केवल पहिले ही मिसरे में हो प्रथम अक्षर मिसरे पूर्व लिखित का होगा और अगर दूसरे मिसरे में पाया जाय द्वितीय अक्षर मिसरे मजकूर का होगा और अगर पहिले और दूसरे में हो तीसरा अक्षर उस मिसरे का होगा और अगर तीसरे मिसरे में हो तो पूर्व लिखित मिसरे का चौथा अक्षर होगा और अगर औवल और तीसरे में हो पांचवां अक्षर होगा। और अगर दूसरे और तीसरे में हो छठवां अक्षर होगा और पहिले, दूसरे और तीसरे में हो सातवां अक्षर उसका होगा। अगर केवल चौथे में हो आठवां अक्षर होगा। अगर पहिले और चौथे में हो नौवां अक्षर होगा। अगर दूसरे और चौथे में हो दसवां अक्षर होगा। अगर पहिले, दूसरे, चौथे में हो ग्यारहवां अक्षर होगा। अगर तीसरे चौथे में हो बारहवां होगा। अगर पहिले, तीसरे और चौथे में हो तेरहवां अक्षर होगा। अगर दूसरे, तीसरे, चौथे में हो चौदहवां अक्षर होगा। अगर चारों मिसरों में हों पन्द्रहवां अक्षर होगा। पूर्व लिखित मिसरे में पन्द्रह अक्षर हैं यदि किसी से प्रश्न करना हो प्रथम मिसरे को उसके साम्हने पढ़े और कहे कि इसमें से किसी एक अक्षर को जी में रक्खो में बूझ जाता हूं जब प्रश्नकर्ता ने किसी एक अक्षर को जी में

रख लिया तब निम्नलिखित चार मिसरों को उसके साम्हने पढ़े और हम मिसरे में पूछे कि तुम्हारा मान्सिक अक्षर है या नहीं तब ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार बूझ दे।

मिसरा—है लबे दोस्त मख़ज़ने शकर।

रुबाई—१ आशिक सा मेहृदार है राज दिल आर।
२ सौ तरह का जेवर और खाले रूखसार।
४ सब आव करो गौर निशां हो साहब।
८ मुश्ताक का अज़्म जानकर आखिरकार।

मुहतमलुज्जिद्दैन

कोई ऐसा गद्य वा पद्य कि जिसके दो अर्थ का संदेह हो और एक अर्थ दूसरे अर्थ का विपरीत हो।

हज्वो मलीह भी इसी का एक भेद है।

तेरे मुंह के आगे समुद्र एक बूंद हो।

तजाहुलुल आरिफ़

आदमी है या फिरिश्ता या परी वा हूर है?
या कोई तसवीर है वह या दरख़्ते नूर है

लफ बोनश

जिक्र चन्द चीजों का शामिलात में जो एक चीज दूसरे से संबंध रखती हो।

आहु वो नाफ़ावी मसरीं को सहा वख़्शेत
नाफ़ के वूफ़ ख़ुश के रंग, हो जितना दरकार।

जमा

चन्द चीजों का जमा करना।

दौलत वो वख़शिश वो इल्म और सफाई वासिन
कर्म ब्टावने से तुझे हक ने दिया है सब कुछ।

तफ़रीक

दो वस्तुओं में अन्तर बतलाना।

तेरे आगे में लूं रुस्तम का क्या नाम।
शुनीदे कै बवद मानिन्द दोदे?

तक़सीम

विभाग को कहते हैं।

वही देगा मुझे सब्र वो सकूं जिसने दिया,
रुखे जेवा तुझे, और दीदए गिरयां मुझको।

रुजू

किसी कही हुई प्रशंसा से बढ़कर कोई प्रशंसा करें।

नहीं नहीं, यह ख़ता है, परी से बेहतर है।

हुस्नुत तालील

किसी सबब को पसंदीदे तौर से ब्यान करना।

मैंने कहा कि लब प मिसी तूने क्यों मली ?
बोला मिसी नहीं यह छड़ी है निगाह की।

हुस्नुत् तकरीर

तूने मुझे प्यारी बुरा गर कहा कहा
या मसलहत से ग़ैर के मुँह पर कहा कहा।

कौलविल मूजब्

किसी के कहे हुए शब्दों का अर्थ बदल कर दूसरे भाव में उत्तर देना।

"आपकी तो आंख लग गई। क्या कीजे साहिब नींद आई है।"

आँख लग गई, से कहनेवाले का तात्पर्य आशक्त हो जाने से था परन्तु उस युवती ने और युवतियों से इस भेद को गुप्त रखने के लिए उसका अर्थ सोना मानकर उत्तर दिया कि नींद आई है।

मजहब उल क़लामी

किसी बात को सतर्क (तकरारी) बनाना।

किस तरह हमें इस देहन तंग से वह शेख़ तकसीम प जुज़ के हैं दलाएल सभी वासिल।

मुवालग़ा

वह तीन प्रकार का होता है—बुद्धि और व्यवहार के अनुसार ठीक हो उसको सबलीग़ कहते हैं—बुधि के अनुसार परंतु व्यवहार के विपरीत हो उसे हम एगराक़ कहते हैं। जो बुधि और व्यवहार दोनों से विरुधु हो उसे ग़ुलू कहते हैं।

क्या व्यां उसकी सखा कीजे कि सायल को अगर,
कुछ न पहुंचे हो तत्रीयों का बहुत बाजार गर्म।

इग़राक़

मिसरा—गदा को बख़शे तू मुल्के सिकंदर।

हां के कहते हुए यह जस्त करे वो के वहां,
पहुंचे दस लाख बरस में भी तनकां इसके तलक।

लोग़ज

पहेली।

क्या है वह शमा कि जिसका है दिल खल्क लगन,
हर शव इसकी हो तजब्बी से नया घर रौशन;
कभी ईवाँ में सलातीन के हो वज़्म अफ़राज़।
कभी वालें प गदाओं के करे शव को रोज़।

रंजी

वह तीनों तेरे हाथ में मैं फिरता तेरी घात में,
बूझ पहेली मेरी मैं घुर फिर मारूँ तेरी।

पासा

पीली है बेसन की नहीं बनाते हैं।
खाने की तो चीज़ नहीं पर खाते है ॥ अशर्फी।

चार चन्द्रमा चौबीस तारे हे सखी हम देखा,
थूक लगावे टांग उठावे मारे छक्का लेखा ॥ घोड़े की नाल।

श्री गणेशायनमः

खड़ी बोली-आन्दोलन

श्री बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री

द्वारा संकलित

श्री पं० भुवनेश्वर मिश्र

द्वारा संपादित

(प्रकाशक, संस्करण तथा संवत् नहीं है)

खड़ी बोली-आन्दोलन

अर्थात् खड़ी बोली पद्य सम्बन्धीय आन्दोलन जो पूर्व काल में हुआ था।

श्री बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा संकलित।

श्री पं० भुवनेश्वर मिश्र द्वारा संपादित।

हिन्दी में पद्य की भाषा ब्रजभाषा नहीं होनी चाहिए खड़ी बोली होनी चाहिए इस बात को स्थिर करने के लिए और खड़ी बोली पद्य लिखनेवालों को उत्साह दिलाने के अभिप्राय से श्री बाबू अयोध्या प्रसाद जी ने "खड़ी बोली का पद्य न० १" नाम की पुस्तक, छपवाई थी। इस पर हिन्दी रसिकों के बीच खड़ी बोली पद्य के विषय में आन्दोलन आरम्भ हुआ था। उस आन्दोलन में जितने लेख पत्रों में प्रकाशित हुए थे वे सब यहाँ प्रकाशित किए जाते हैं। आशा की जाती है कि प्राचीन आन्दोलन के पत्रों को देखकर इस समय खड़ी बोली पद्य के प्रेमियों को उत्साह प्राप्त होगा। इस आन्दोलन के कई खंड अर्थात् पीरियड हैं। क्रमानुसार सब पीरियडों के लेख प्रकाशित किये जाते हैं।

पहला खण्ड

इस पीरियड में श्री राधाचरण गोस्वामी जी ने डंका बजाया, फिर श्रीधर पाठक जी और प्रतापनारायण मिश्र जी दोनों लड़ाके भिड़ गये। वही डंके का काम देनेवाला प्रथम पत्र यहाँ सबसे पहले प्रकाशित किया जाता है।

हिन्दोस्थान ता० ११ नोवेम्बर सन् १८८७ ई०

श्रीयुत हिन्दोस्थान सम्पादकेषु

खड़ी बोली का पद्य

(बाबू अयोध्याप्रसाद लिखित)

आजकल हमारे कई भाइयों ने इस बात का आन्दोलन आरम्भ किया है कि जैसी हिन्दी में गद्य लिखा जाता है, वैसी हिन्दी में पद्य भी लिखा जाया करे। वास्तव में भाषा के दो ही स्वरूप हैं, गद्य और पद्य। जब कि हिन्दी गद्य की इतनी उन्नति हुई है तब हिन्दी पद्य की भी उन्नति नहीं तो कुछ तो होनी चाहिए। इस मत के पोषण करनेवालों से हमारी एक प्रार्थना है, वह यह है कि हमारी वर्तमान हिन्दी जो है, वह ब्रजभाषा कान्यकुब्जी, शौरसेनी, बैसवाड़ी, बिहारी, अन्तर्वेदी, बुन्देलखण्डी आदि कई भाषाओं के शब्दों से बनी है। थोड़े दिन पहिले हिन्दी का कोई विशुद्ध रूप न था, अब इसको एक स्वतन्त्र भाषा भी कह

सकते हैं पर वस्तुत: ब्रजभाषा आदि से इसका भेद नहीं।[1] अब इस प्रकार की भाषा में छन्द रचना करने में कई आपत्ति हैं। प्रथम तो भाषा के कवित्त सवैया आदि छन्दों में ऐसी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता और यदि किया भी जाता है तो बहुत भद्दा मालूम होता है। तब भाषा के प्रसिद्ध छन्द जोड़कर उर्दू के बैत शेर, गजल आदि का अनुकरण करना पड़ता है पर फारसी शब्दों के होने से उसमें भी साहित्य नहीं आता फिर जब काव्य में हृदयग्राही गुण नहीं हुआ तो ऐसे काव्य की रचना ही व्यर्थ है। दूसरा यह कि चन्द के समय से बाबू हरिश्चन्द्र तक जो कविता हुई है वह सब ब्रजभाषा में हुई।[2] और सब पंडितों ने संस्कृत के अनन्तर 'भाषा' शब्द से इसी का व्यवहार किया। इसके साहित्य की जैसी उन्नति है, संस्कृत के बिना और किसी भाषा के साहित्य की उतनी उन्नति नहीं। और सिवाय क्रिया पदों के हिन्दी से इसका भेद भी नहीं। तब इतने बड़े अमूल्य रत्न भाण्डार को छोड़कर नये कंकर-पत्थर चुनना हिन्दी के लिए कुछ सौभाग्य की बात नहीं, बरंच इस ब्रजभाषा के भंडार को हिन्दी से निकाल देने से फिर हिन्दी में क्या गौरव की सामग्री रह जायगी? पृथ्वीराज रायसा, सूरसागर, तुलसीकृत रामायण, बिहारी सतसई, पद्माकर, देव, आनन्दघन की अमृतमयी कविता को तिलांजलि दे दीजिये, फिर क्या हजार वर्ष में भी इतनी हिन्दी कविता आप इकट्ठी कर सकेंगे? तीसरा—हमारी कविता की भाषा अभी मरी नहीं है, जीती है, तब फिर इसमें क्यों न कविता की जाय? चौथा संस्कृत नाटकों में साहित्य के लालित्य के लिये संस्कृत, प्राकृत, पैशाची, कई भाषा व्यवहार की गई है। तो यदि हम हिन्दी-साहित्य में दो भाषा व्यवहार करें तो क्या चोरी है? पाँचवाँ—इस समय में हमारे परम आतुर आर्य समाजी और मिशनरी आदिकों ने भाषा साहित्य की रीति और अलंकार आदि बिना जाने कविता लिखने का आरम्भ करके अपने हास्य के सिवाय काव्य की भी उलटे छुरे से खूब हजामत की है? और इस पिशाची कविता से अपना समाज का भी खूब मुख नीचा किया। बस यह खड़ी बोली की कविता भी पिशाची नहीं तो डाकिनी अवश्य कवि-समाज में मानी जायगी। इत्यादि कई कारणों से हम खड़ी बोली के पद्य के विरोधी हैं, हमारे ग्रंथकार महाशय ने जो इसके उदाहरण में कविता दी है, वह सर्वांश में विशुद्ध नहीं हैं, जिससे वह आदर्श के योग्य नहीं हो सकती। हाँ यदि गद्य और कविता की हिन्दी में कुछ अन्तर है तो इतना ही कि एक प्राचीन भाषा, और एक नवीन भाषा। इस दो तरह की भाषा परिपाटी रहने से हिंदी का गौरव है, लाघव नहीं। ऐसी कविता के प्रयासी यदि भाषा के झगड़े में न पड़ करके एक काम करें तो उत्तम हो। हमारी भाषा में जो कविता है वह सब

१—आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता लल्लू लाल कवि ने अपनी पुस्तक प्रेमसागर की भूमिका में हिन्दी की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार किया है, "यावनी शब्द छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में यह नाम प्रेमसागर धरा"। दिल्ली, आगरे की भाषा उर्दू कहलाती है। उर्दू में फारसी शब्द के स्थान संस्कृत शब्द रखकर आधुनिक हिन्दी बनी। तब हिन्दी और उर्दू दो भाषा कैसे कही जावेगी? मु० मि०।

२—बाबू हरिश्चन्द्र ने लिखा है कि हिन्दी पद्य में ब्रजभाषा की शरण लेने का "नियम अकबर के समय से पूर्व नहीं था क्योंकि मुहम्मद मलिक जाईसी और चन्द की कविता विलक्षण हैं।" (देखिये खड़ी बोली का पद्य नं० १ पृ० ५ भूमिका।) यदि हरिश्चन्द्रजी सच्चे हैं तो गोस्वामीजी को नमस्कार। मु० मि०।

पुराने ढंग की हैं, हमारे नवीन कविताप्रिय नवीन समय के अनुकूल नवीन-नवीन भावों को लेकर नवीन-नवीन विषयों पर कविता करें और यूरोप के विशद साहित्य का भाषा में अवतरण करें तो परम उपकार हो।

—राधाचरण गोस्वामी

(२)

पूर्वोक्त पत्र के उत्तर में पं० श्रीधर पाठक जी ने निम्नलिखित पत्र छपवाया जिस पर सम्पादक हिन्दोस्थान ने अपनी राय भी लिखी।

"हिन्दोस्थान ता० २० दिसम्बर सन् १८८७ ई०

सम्पादकीय टिप्पणी

आज पाठक जन हमारे प्रेरित स्तम्भ में पंडित श्रीधर पाठक का एक पत्र पावेंगे जिसमें उन्होंने यह दिखाया है कि खड़ी हिंदी में भी छंद उत्तम रीति से लिखे जा सकते हैं और लिखने चाहिये। हम पंडित श्रीधरजी के साथ इस विषय में सहमत हैं। इस बात के सिद्ध करने में कि हमलोगों के आजकल की बोलचाल की हिंदी में कविता हो सक्ती है समय और बुद्धि का लगाना हमारी समझ में अनावश्यक है। जितनी भाषा आज तक संसार में बोली गयी हैं प्रायः उन सब में कविता की गई है और हम कोई कारण नहीं देखते जिससे कि आजकल की हिन्दी वा खड़ी बोली इस सांसारिक नियम से बाहर हो। यह बात दूसरी है कि चिरकाल के परिचय और अभ्यास तथा कुछ स्वरादिकों की कोमलता के कारण हिंदी से उस रूप की कविता जिसको हम ब्रजभाषा कहते हैं हमको अधिक मधुर, मनोहर और प्यारी लगती है किंतु कालांतर में प्रचलित भाषा की कविता भी हमको वैसी ही मधुर और मनोहर लगेगी।

उसी तारीख के हिन्दोस्थान के प्रेरित स्तम्भ में पंडित श्रीधर पाठक जी का निम्नलिखित पत्र छपा था। इसी की चर्चा पूर्वोक्त सम्पादकीय टिप्पणी में की गई थी।

खड़ी हिन्दी में पद्य

श्रीयुत हिन्दोस्थान संपादक योग्य।

महाशय !

११ नवम्बर के हिन्दोस्थान में एक पत्र देखने में आया जिसमें राधाचरण गोस्वामी ने यह दिखलाया है कि खड़ी बोली में पद्य लिखना सम्मत नहीं है। क्योंकि 'उसमें कई आपत्ति हैं—

(१) प्रथम यह कि कवित्त सवैया आदि छंदों में खड़ी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता।

(२) चंद के समय से हरिश्चंद्र तक सब कविता ब्रजभाषा ही में हुई है और उसका साहित्य इतना उन्नत और एक ऐसा अमूल्य रत्न भंडार है कि उसे छोड़कर नये कंकर पत्थर चुनना हिन्दी के लिये कुछ सौभाग्य की बात नहीं।

(३) कविता की भाषा जिससे गोस्वामीजी का तात्पर्य ब्रजभाषा से प्रतीत होता है (जिसमें कि शौरसेनी इत्यादि अनेकों प्रान्तिक भाषा सम्मिलित हैं) अभी मरी नहीं है।

(४) आर्यसमाजी, मिशनरी इत्यादिकों ने भाषा साहित्य की रीति और अलंकार बिना जाने कविता लिख अपना हास्य और काव्य की अप्रतिष्ठा कराई और अपनी पिशाची कविता से अपने समाज का भी मुँह नीचा किया।

और अन्त को खड़ी बोली की कविता को भी 'पिशाची', 'डाकिनी' बना पत्र समाप्त किया।

आजकल दुर्वाक्य और असंगत असभ्य वचनों का बर्त्ताव, हिन्दी समाचार पत्रों में, विशेषकर प्रेरित पत्रों में, इस बहुतायत से देखने में आता है और दिन २ इतना बढ़ता जाता है कि आश्चर्य नहीं थोड़े दिनों में इस भाषा के अलंकारों में गणना पा जाय और नागरी की सुन्दरता का एक अंग हो जाय, पर हमारी समझ में ऐसे वाक्य व्यवहार से केवल हिंदी की गौरव हानि है, और जितना शीघ्र इसका प्रचार छोड़ दिया जाय उतना ही इस भाषा की प्रतिष्ठा के लिये उत्तम है। हमें विशेष खेद इस बात का है कि पं० राधा चरण गोस्वामी सरीखे हिंदी वेत्ता भी इस अनुचित परिपाटी का अनुसरण करते हैं। और हिन्दी पद्य सरीखे गौरव युक्त विषय पर अपने लेख को कुवाक्यों से कुत्सित करने में संकोच नहीं खाते ! अस्तु यह विषय हमारे पत्र के मुख्य विषय से भिन्न और स्वतन्त्र है, इसपर विशेष कहना स्थान से बाहर है। यहाँ पर हम केवल ऊपर दिखाई हुई 'आपत्तियों' पर विचार करते हैं जिन पर गोस्वामी का उद्देश्य आश्रित है, पाठकगण संख्या के अनुसार अनुरोध कर लें।

(१) प्रथम तो यह आवश्यक नहीं है कि जिन छंदों में ब्रजभाषा की कविता की जाती है वे ही पद्य खड़ी बोली के पद्य में काम में लाये जायँ—घनाक्षरी, सवैया इत्यादि के अतिरिक्त अनेकों छंद ऐसे हैं कि जिनमें खड़ी कविता बड़ी कठिनाई और बड़ी सुघराई के साथ आ सक्ती है। फिर गोस्वामी जी ने कैसे निश्चय किया कि कवित्त इत्यादि में खड़ी बोली व्यवहृत नहीं हो सक्ती ? कभी खड़ी बोली में कवित्त लिखने पर श्रम भी किया है ? यदि आवश्यकता समझी जायगी, प्राय: प्रत्येक छंद इस भाषा में दिखला दिया जायगा।

(२) गोस्वामी जी के अनुसार चंद से हरिश्चंद्र तक हिंदी की सब कविता ,ब्रज-भाषा ही में यदि हुई है तो यह किस लिये अवश्य है कि इससे आगे भी अब सब कविता उसी बोली में होवे ? हमारा मत है कि दोनों में हो, ब्रजभाषा में भी और खड़ी साधु भाषा में भी—वरंच खड़ी बोली में कई कारणों से कविता की विशेष आवश्यकता है। सबसे प्रबल कारण यह है कि उस हिंदी के समझनेवाले जिसे कि ब्रजभाषा कहते हैं अधिकतर भारतवर्ष के उन्हीं प्रांतों में हैं जहां के कुछ कुछ शब्द प्रचलित पद्य भाषा में बर्त्ताव में आते हैं। वह प्रांतिक शब्द समाज गोस्वामी जी ही के अनुसार यह है—

१—ठेठ ब्रज की बोली—

२—कान्यकुब्जी—कन्नौज प्रांत की बोली—

३—शौरसेनी—यह ब्रज की ठेठ बोली ही का नाम प्रतीत होता है। शौरसेनी शायद शूरसेन के राज्य का नाम था जो किसी समय में मथुरा का राजा था। कोई शौरसेनी से भदावरी लेते हैं—परंतु इस श्लोक के अनुसार भी शौरसेन से ब्रजबोली प्रतीत होती है (संस्कृतं प्राकृतञ्चैव शौरसेनञ्च मागधम्, पारसीकमपभ्रन्शम्भाषायां लक्षणादिषट्)।

४—बँसवाड़ी—अवध के आग्नेय और दक्षिण भाग की बोली ?

५—बिहारी—मगध की भाषा।

६—अंतर्वेदी—गंगा यमुना के बीच की—

७—बुंदेलखंडी—

और इन प्रांतिक बोलियों के साथ फारसी, अरबी, तुर्की के शब्दों का सम्पर्क है, यह भी न भूलना चाहिए।

अब देखना चाहिए कि इन ऊपर लिखे हुए प्रान्तों का विस्तार अधिक से अधिक पानीपत से पटने तक और हिमालय की तराई से विन्ध्याचल की तलहटी तक है और इसी बीच में ब्रज भाषा का पद्य अच्छी तरह समझा और पढ़ा लिखा जाता है। बंगाली, गुजराती, मरहठे और मदरासियों को ब्रज भाषा की कविता ऐसी ही है जैसी उन लोगों की भाषा की कविता हम लोगों को है कारण इसका यही है कि ब्रज भाषा और विशेषकर पद्य की ब्रज भाषा एक ऐसी भाषा है कि वह बोलने में कम प्रचलित है यहाँ तक कि अपने मुख्य देशवालों की समझ में भी कभी-कभी नहीं आती और गद्य से वह नितान्त वहिर्गत है। गद्य सब खड़ी बोली ही के अधिकार में है और यह खड़ी बोली इतनी प्रचलित है कि भारतवर्ष के सब खंडों में थोड़ी बहुत समझी जाती है। वास्तव में ठेठ हिंदुस्तानी जो उर्दू कहलाती है और साधारण खड़ी हिंदी में कुछ भी भेद नहीं है। अंतर उस समय हो जाता है जब कि उर्दू में अधिकतर फारसी के और हिंदी में अधिकांश संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का बर्त्ताव किया जाता है। इस हिंदुस्तानी वा हिंदी का प्रचार भारतवर्ष में इतना विस्तृत है कि योरोपियन इसे यहाँ की Lingua Franca फ्रेंच जबान करके समझते हैं और ठीक है जब अंगरेजी बिना पढ़े बंगाली और मरहठे अथवा मद्रासी और गुजराती आपस में बात करते हैं तो इसी (हिंदी) भाषा का आश्रय लेते हैं। सिंध का रहनेवाला नैपाल के निवासियों से और कश्मीर का वासी कन्याकुमारीवाले से अंगरेजी के अतिरिक्त इसी बोली में बातचीत कर सकता है। और जब हम यह देखते हैं कि जिन अक्षरों में हिंदी लिखी जाती है उनकी वर्णमाला भी संपूर्ण भारतवर्ष से संबंध रखती है अर्थात् सब स्थानों में पढ़ी लिखी जाती है तो हमको यहाँ तक कहने का साहस हो आता है कि यदि इस बिबिध भाषाओं के देश भारतवर्ष की कोई एक भाषा कही या मानी जा सकती है तो हिंदी ही मानी जा सकती है और वह हिंदी खड़ी हिंदी है—ब्रजभाषा की हिंदी नहीं। इस खड़ी हिंदी की उन्नति भी देश देशांतरों में देखने में आती है, इसमे बहुत से समाचार पत्र निकलते हैं, सहस्रों ग्रंथ वनते चले जाते हैं और निस्संदेह यह भाषाओं के समाज में दिन दिन अधिक ही अधिक आदरणीय होती जाती है। भारतवर्ष के उत्तरीय विभाग में तो (जो इसका

मुख्य घर है) इसका बहुत ही बैभव बढ़ता जाता है। इसमें संस्कृत के शब्दों का बर्त्ताव भी अब अच्छी तरह होता है जिससे इसका रूप दिन दिन दूना दिपता जाता है—उधर ब्रजभाषा का बोलचाल में भी प्रचार घटता जाता है। ब्रजवासी भी कम···।[१]

* * *

पूर्वोक्त पत्र के उत्तर में श्री पं० राधाचरण गोस्वामी जी ने ता० १५ जनवरी १८८८ ई० के हिंदोस्थान पत्र में निम्नलिखित लेख छपवाया। शोक की बात है कि इस लेख का अंतिम भाग भी नष्ट हो गया सा मालूम होता है। परंतु पाठकों को इस पत्र का आशय पं० श्रीधर पाठक जी के उस पत्र से प्रगट हो जायगा जो इस पत्र के उत्तर में छपा था और जो इस पुस्तक में न० ४ में प्रकाशित किया गया है। असाध्य विषय को सिद्ध करने में विद्वान लोग भी कैसे अकृतकार्य होते हैं यह बात पं० राधाचरण गोस्वामी के इस पत्र से प्रगट होती है।

'' महाशय,

आपके २० नवम्बर[२] के पत्र में खड़ी बोली कविता के विषय मेरे मित्र श्रीधर पाठक का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस विजय में आलोचना की। कविता का विषय बड़ा गंभीर है इसलिये बहुत विचार की आवश्यकता है। केवल प्रचलित भाषा की दुहाई देने से ही हमारे मित्र कृतकार्य नहीं हो सक्ते। हमारे मित्र कहते हैं कि मैंने अपने पहिले पत्र में 'दूरशब्दों का' प्रयोग किया है। मैंने अपना पत्र कई बार पाठ किया परंतु मुझे कोई ऐसा शब्द नहीं मिला कि जिस पर मेरे मित्र इतना लिखते ? जो मैंने पिशाची डाकिनी आदि खड़ी बोली की कविता को लिखा है वह यथार्थ है। इसके लिए मेरे मित्र 'खड़ी बोली का पद्य' एक दृष्टि से देख लें।[३] पर हां यह दूसरी बात है कि 'निज कविता किहि लाग न नीका'। मेरे मित्र का यह कथन और इसकी बड़ी उत्तेजना कि ब्रजभाषा की

१—बड़े शोक की बात है कि इस उत्तम लेख के शेष भाग की प्रति नष्ट हो गई और अब यत्न करने से भी मिलनेवाली नहीं है। —मु० मि०

२—यह २० दिसम्बर होना चाहता था। —मु० मि०

३—इस पुस्तक 'खड़ी बोली पद्य' के संबंध में गो० जी को बहुत बड़ा भ्रम था क्योंकि उन्होंने उसके प्रकाशित होने के उद्देश्य को नहीं समझा था। विशुद्ध हिंदी साहित्य के पद्य विभाग का संस्कार आवश्यक समझकर बाबू अयोध्या प्रसाद जी ने कई सौ रुपये खर्च करके इस अभिप्राय से इस पुस्तक को छपवाया था और बिना मूल्य तथा बिना डाक महसूल हिंदी रसिकों बीच बितरित किया था (और अभी तक बितरित कर रहे हैं) कि लोगों का ध्यान खड़ी बोली पद्य की ओर झुके और इस विषय में आन्दोलन होवे। यदि गोस्वामी जी इस पुस्तक को इस भाव से देखते तो पूर्वोक्त कटाक्षयुक्त वाक्य का प्रयोग कभी नहीं करते। पर गोस्वामी जी को यह तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि इस पुस्तक के द्वारा लोगों का ध्यान खड़ी बोली पद्य की ओर निश्चय झुका और जैसा आंदोलन इस पुस्तक के द्वारा हुआ वैसा हिंदी साहित्य के इतिहास में और किसी पुस्तक के द्वारा नहीं हुआ। —मु० मि०

कविता सब देशों में नहीं समझी जा सक्ती, खड़ी बोली की कविता सब देशवासी समझेंगे भ्रम है। हमें वह कृपा करके उन शब्दों को बतला दें जो ब्रजभाषा में नहीं हैं, और हिंदी में हैं या ब्रजभाषा में कठिन और हिंदी में सरल हैं। कविता का समझना साधारण नहीं है, उसके लिए कुछ ज्ञान अवश्य सापेक्ष है। अब यह कि जो भाषा प्रचलित है उसमें क्यों न कविता की जाय? इसके लिए मैं पहिले पत्र में कुछ कारण लिख चुका हूँ, अबकी इतना और लिखता हूँ कि यदि कविता के मनोहारित्व आदि गुणों पर दृष्टि न देकर केवल छंदोबद्ध कर देना ही अभिप्राय है, तो फिर गद्य ने क्या चोरी की? छंद में लिखने की क्या आवश्यकता है? जिस प्रकार से छंद बनाये जाते हैं, उस प्रकार से कोई नहीं बोलता? फिर जब कि ब्रजभाषा और हिंदी में कुछ अंतर नहीं है, जब कि हिंदी के बड़े बड़े विद्वानों ने अपने उत्तम उत्तम ग्रंथों में कविता के स्थान में इसी का प्रयोग किया है, जब कि यह भाषा काव्य के सर्व गुणों से शोभित है, जब कि हमारे देश के कवियों की यही भाषा है, जब कि खड़ी बोली मधुर कविता से उपयुक्त नहीं, तब क्या अवश्य है कि इसी का आग्रह किया जाय? हमारे मित्र प्रत्येक भाषा के कवि लोगों का समस्त काव्य व्यवहार जानते होंगे, उसकी उपेक्षा करना कविता की दुर्दशा करना है? हमारे मित्र का यह अभिप्राय नहीं कि ब्रजभाषा की कविता लुप्त हो, और जब तक जगत में काव्य की चर्चा है ऐसा होना असंभव है, तथापि हमारे दूसरे मित्र अयोध्या प्रसाद जी तो ब्रजभाषा की कविता को हिंदी से दूध की मक्खी की तरह निकालना चाहते हैं। खड़ी बोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों को विशेष होती है जो ब्रजभाषा में न कविता कर सक्ते न काव्य के तत्त्व को जानते हैं और कविता करने को आतुर हैं, जो इससे भिन्न प्रकृति के मनुष्य हैं वह कभी ऐसे मत को (सिवाय हमारे मित्र के) स्वीकार नहीं सक्ते।[1] नितान्त इस पक्ष में ब्रजभाषा की कविता को हिंदी से निकाल देने से ब्रजभाषा की भी हानि और हिंदी की भी हानि है। हम नहीं जानते कि तब हिंदी पद्य के स्थान में हमारे मित्र किस कविता को लेकर हिंदी काव्य का अभिमान करेंगे? और किसके आधार पर हिंदी काव्य रचना करेंगे? हम अनुमान करते हैं कि यदि खड़ी बोली की कविता की चेष्टा की जाय, तो फिर खड़ी बोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाय। इधर गद्य में सरकारी पुस्तकों में फारसी शब्द घुस ही पड़े, उधर पद्य में भी फारसी भरी गई, तो सहज ही झगड़ा निबटा……।[2]

पूर्व प्रकाशित श्री राधाचरण गोस्वामी के लेख का उत्तर श्री श्रीधर पाठक जी ने यह लिखा था—

१—गोस्वामी जी के उदार चरित्र का अच्छा उदाहरण उनके इस वाक्य में मिलता है। वह अपने विपक्षी के सदगुणों में विश्वास नहीं करते और समझते हैं कि उपयुक्त दलील की त्रुटि व्यक्तिगत आक्षेपों से पूरी हो सकती है। —मु० मि०

२—शायद यह लेख इतना ही था परंतु हमारे पास जो फाइल है उसको देखने से यह भी शंका हो सकती है कि इसके आगे और भी कुछ था। यदि ऐसा था तो वह अब अप्राप्य है। —मु० मि०

"हिंदोस्थान, ता० ३ फरवरी १८८८ ई० ।

खड़ी हिंदी में कविता ।

(पं० श्रीधर पाठक लिखित)

खड़ी हिंदी की कविता के विरोध में पं० राधाचरण गोस्वामीजी का दूसरा पत्र जो १५ जनवरी के 'हिंदोस्थान' में निवेशित है और जिसका सारांश यह है कि—

(१) यह कहना कि ब्रजभाषा की कविता सब देशों में नहीं समझी जाती और खड़ी भाषा की कविता सब समझ सकेंगे, भ्रम है, क्योंकि—

(२) वह कौन से शब्द हैं जो ब्रजभाषा में नहीं हैं और हिंदी में है वा ब्रजभाषा में कठिन और हिंदी में सरल हैं ?

(३) कविता समझने के लिये कुछ ज्ञान अवश्य सापेक्ष है ।

(४) कविता में मनोहारित्व आदि गुण होने चाहिये, केवल छंदोबद्ध कर देना ही अभिप्राय हो तो गद्य ने क्या चोरी की है ? छंद में लिखने की क्या अवश्यकता है ? फिर —

(५) जब कि ब्रजभाषा और हिंदी में कुछ अंतर नहीं है जब कि हिंदी के बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने उत्तम उत्तम ग्रंथों में इसी का प्रयोग किया है, जब कि हमारे देश के कवियों की यही भाषा है; और जब कि खड़ी बोली मधुर कविता के उपयुक्त नहीं; तब क्यों इसी का आग्रह किया जाय ?

(६) खड़ी बोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों को विशेष होती है जो न कविता कर सक्ते, न समझ सक्ते और न काव्य के तत्व को जानते हैं और कविता करने को आतुर हैं । इससे भिन्न प्रकृति के लोग ऐसे मत को कभी स्वीकार नहीं करते ।

(७) ब्रजभाषा की कविता को हिंदी से निकाल देने से ब्रजभाषा की भी हानि और हिंदी की भी हानि है और गोस्वामीजी नहीं जानते कि (कहीं ऐसा किया गया तो) हम इसके स्थान में किस कविता को लेकर हिंदी काव्य का अभिमान करेंगे और किस के आधार पर हिंदी काव्य रचना करेंगे ।

(८) गोस्वामीजी अनुमान करते हैं कि यदि खड़ी बोली में कविता की चेष्टा की जायगी, तो थोड़े दिनों में उसमें उर्दू घुस पड़ेगी ।

(१) इसके उत्तर में मैं विनयपूर्वक गोस्वामीजी से प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरे पूर्व पत्र के उस भाग को जिसमें गोस्वामी की (२) संख्यक 'आपत्ति' पर समाधान दिया है, कृपा कर एक बार ध्यान से और अवलोकन करें । खड़ी हिंदी तथा उसकी कविता के समझने वाले ब्रज भाषा के समझने वालों से संख्या में अधिक हैं यह एक ऐसी स्पष्ट बात है कि इसके सिद्ध करने के लिये युक्तियों की आवश्यकता नहीं, और इसका सविस्तर निरूपण भी मेरे उस पत्र में विद्यमान है । रही

(२) शब्दों की, सो संज्ञा वाचक और गुण वाचक शब्दों को छोड़ (जिसमें कि अधिकांश दोनों ही भाषाओं में सादृश्य पाया जाता हैं) शेष शब्द समाज ब्रजभाषा और खड़ी हिंदी का नितांत न्यारा-न्यारा है। परंतु बहुबचन में संज्ञाओं के रूप भी दोनों में एक से नहीं होते, क्रिया और अव्यय दोनों के अत्यंत भिन्न हैं। क्या हुआ जो कोई कोई क्रिया का रूप वा कोई कोई अव्यय एक सा पाया गया ? इससे सादृश्य नहीं कहा जा सक्ता। फिर ब्रजभाषा में एक शब्द के पद अनेकों (प्रांतिक) रीतियों पर किये जा सक्ते हैं और प्रत्येक प्रांतिक रूप में बरते जा सकते हैं, उनके लिए कोई निर्दिष्ट नियम नहीं, कवियों की इच्छा के अनुसार उन्हें आकार मिलता है और यही मुख्य कारण है कि ब्रजभाषा में पदलालित्य को अधिक अवसर प्राप्त है जिसके बल से केवल इसी को पं० राधाचरण गोस्वामीजी की श्रेणी के विद्वान काव्योपयोगी भाषा का (खड़ी हिदी की अपेक्षा) अधिकार देते हैं। यहाँ पर उदाहरण के लिये कुछ शब्दों के रूप दिखाये जाते हैं।

'जो' वा उसके रूपांतर
'जिहि' की षष्ठी,
जाकौ, की, के
जासु
जिहिकर
जिहिकेरि
जिहिकेरौ
जिहि
जिहि के रूप
'करिवों', 'करन', वा 'करै' धातु।

भविष्यत

करैगो, गी,
करिहे, करही, करी, करवै इत्यादि
उसी का भूतकाल
कर्‌यो, री, रे, कियौ, ये
कीनौ, ना, न्ह, कर्‌यो, करेउ इत्यादि

परंतु खड़ी बोली में ऐसा नहीं हो सकता, उसकी सब बातें नियमों से विरुद्ध[1] हैं। सारांश यह कि ब्रजभाषा और खड़ी हिंदी का पद्य वा गद्य लिखने वा समझने के लिए व्याकरण संबंधीय भिन्न २ नियमों का ज्ञान अपेक्षित है—और जिन्हें ब्रजभाषा के प्रांतिक

१. शोक की बात है कि मेरे पास की फाइल से पांच पत्र गायब हैं जिससे इस स्थान का लेख अप्राप्य हो गया। मालूम होता है कि पं० श्रीधर पाठक जी ने यहां पर अपने रचे खड़ी बोली पद्यों का उदाहरण दिया था।—मु० मि०

अंगों से सम्यक अभिज्ञता प्राप्त नहीं है वे उसके काव्य को झटिति वा सुगमता से नहीं समझ सक्ते—परंतु खड़ी बोली की कविता इस कारण से कि उस बोली का प्रचार और विस्तार ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक है और यहां की शिक्षित समाज की वह 'मातृभाषा' है बिना बड़े आयास के समझ में आ सक्ती और विशेष समझी जाने के कारण विशेष लाभ पहुँचा सक्ती है।

(३) कविता समझने के लिये केवल उस भाषा का सम्यक ज्ञान आवश्यक है जिसकी कविता समझना उद्देश्य हो, क्योंकि भाषा का समझना ही भाव का समझना है और उत्कृष्ट कविता वह है जिसके द्वारा अपूर्व भाव सुगम शब्दों में प्रकाशित किये जाते हैं। अलंकार जानना वा पहचानना ही कविता समझने का लक्षण नहीं है। हमारी समझ में जितना ज्ञान उत्तम गद्य समझने को अपेक्षित है उतना ही उत्तम पद्य समझने के लिये है।

(४) * * *

(मुझे इस बात का संकोच है कि खड़ी हिंदी की कविता के उदाहरण मुझे अपने ही बनाये देने पड़े कारण यह कि इस प्रकार की कविता के लेखक बहुत थोड़े हैं।)

खड़ी हिंदी की कविता अभी बाल्यावस्था में है, अभी इसका आरंभ ही है। अभी कवियों ने अपनी शक्ति को इसपर भलीभाँति परीक्षित नहीं किया तो फिर क्योंकर कहा जा सकता है कि इसकी कविता में कविता के गुण नहीं आ सक्ते वा इसकी भाषा काव्योपयोगी नहीं है? एक साथ हो कोई कार्य उत्कृष्टता की परमावधि को नहीं पहुँच सकता। बाल्मीकि के काव्य में जो कि संस्कृत का आदि काव्य समझा जाता है उतने मनोहारित्व आदि गुण कहां हैं जितने उसके पीछेवाले कालिदास आदि के लेखों में हैं! इस ंसार में एक वस्तु एक ही बार उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ती है, फिर या तो स्थिर हो जाती है या गिर जाती है। ब्रजभाषा की कविता कई बातों में उन्नति की पराकाष्ठा से भी परे पहुँच चुकी है और यद्यपि अनेकों अन्य बातों में उसे उन्नति की समाई है पर अवसर नहीं। ब्रजभाषा की कविता को अब यदि अवसान नहीं तो विश्राम लेने का समय अवश्य आ पहुँचा है—उसको अधिक श्रम देना आवश्यक नहीं। उसका बहुत सा काम खड़ी हिंदी में आजकल बहुत अच्छी तरह निकल सक्ता है। कोई कोई होनहार बात यद्यपि, बुद्धि की आंखों से, पहले ही दीख जाती है पर रुक नहीं सक्ती। हिंदी की भविष्यत अवस्था किसी के रोके रुकने की नहीं। उसकी सब बातें समय के हाथ हैं।[१]

अंगरेजी की भांति हिंदी हमारी समझ में कालानुक्रम से तीन भागों में विभक्त हो सकती है।

(१) प्रथम—प्राचीन—चंद के समय से मलिक मुहम्मद जाइसी तक अथवा कहिये पृथ्वीराज से हुमायूं तक।

१—यहाँ तक यह लेख ता० ३ फरवरी १८८८ ई० के हिंदोस्थान पत्र में छपा था। इसके आगे का भाग ता० ४ फरवरी सन् १८८८ ई० के 'हिंदोस्थान' पत्र में छपा था। —मु० मि०

(२) द्वितीय—मध्यकालीन वा ब्रजभाषा। इसका सूरदास अर्थात् अकबर के समय से आरंभ है और कविता में यह अभी तक जीवित है यद्यपि हरिश्चंद्र के साथ इसकी समाप्ति कही जा सकती है।

(३) तृतीय—नवीन वा खड़ी हिंदी। यह हिंदी यद्यपि बोलचाल में न्यूनाधिक तब से व्यवहृत समझनी चाहिये जब से दिल्ली आगरे में उर्दू बोली जाने लगी परंतु लेख के रूप में यह लल्लूजी के प्रेमसागर ही में पहले देखने में आती है—इसलिये तभी से इसका जन्म समझना चाहिये। परंतु तब से अब इसका कुछ रूप रंग बदल गया है और बंगाली का अनुकरण करके वह उस दशा को पहुँचती है जो आजकल के गद्य ग्रंथ और समाचार पत्रों में दर्शित है।

प्रथम और द्वितीय तो अधिकांश कविता ही में व्यवहृत हुई देखी जाती हैं, परंतु तृतीय अर्थात् नवीन हिंदी जब से जन्मी है अभी तक गद्य के ही रूप में रही है और इसी रूप में इसको वह शक्ति और ओज प्राप्त है जो प्राचीन और मध्यकालीन को पद्य के रूप में भी लब्ध नहीं—भारतवर्ष के वर्तमान नवीन विजेताओं के साथ जिस प्रकार और बहुत सी बातें नवीन हो गई हैं हिंदी को भी नवीनता प्राप्त हुई, और जितना विस्तार इसका ३० या ४० साल के[१] अल्प काल में बढ़ गया है पहली दोनों को ८०० वर्ष में नहीं प्राप्त हुआ। इसके वैभव के आगे लोग कुछ दिनों में ब्रजभाषा के काव्यों को भूल जायगें और प्रकृति के बलिष्ट नियम की प्रेरणा से इसीका लालन पालन इसीका आदर और इसीको प्रत्येक प्रकार प्रत्येक रूप में चाहेंगे। इसकी गति (यदि सब ठीक ठाक चला गया) बड़ी दूर तक होगी; और इसका गौरव बहुत अधिक फैलेगा। इसके गद्य में वह गुण आवेंगे जो ब्रजभाषा के उत्तमोत्तम पद्य में नहीं हैं और इसके काव्य में वह 'मनोहारित्व' होगा जिसका हमें अनुभव भी नहीं है[२]।

१—प्रेमसागर के प्रकाशित होने से आधुनिक हिंदी का जन्म समझा जाता है। सन् १८०३ ई० में प्रेमसागर बनना आरंभ हुआ और सन् १८०६ ई० में पूरा होकर छपा। यह बात प्रेमसागर की भूमिका से प्रगट है। इस हिसाब से पाठक जी के उक्त पत्र लिखने के काल तक आधुनिक हिंदी घट से घट ७६ वर्षों की हो चुकी थी जिसको पाठक जी भूल से ३०, ४० वर्षों की लिखते हैं। परंतु इस हिंदी का अधिक प्रचार राजा शिवप्रसाद सिंह के समय से हुआ। यदि पाठक जी ने इस प्रचार के खयाल से लिखा है तो ठीक है।

—मु० मि०

२—बाबू अयोध्या प्रसाद की राय है कि पाठक जी ने हिंदी के तीन काल माने हैं परंतु उनको आधुनिक हिंदी वा खड़ी बोली के तीन काल अर्थात् पीरियड मानना चाहिये। ता० ८ अप्रैल सन् १८८८ ई० को बाबू साहब ने 'एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना' नामक मुद्रित पत्र प्रकाशित किया था। उसमें इसके विषय में उन्होंने यों लिखा था "पाठक जी अपने पत्र में (जो ४ फरवरी १८८८ के हिंदोस्थान में छपा है) हिंदी के तीन काल माने हैं। मेरी समझ में हिंदी के कई काल माने जा सकते हैं। परंतु गवर्नमेंट भेद से तीन काल माने जांयगे और प्रत्येक गवर्नमेंट में फिर कई काल माने जा सकते हैं। **Hindu period, Mohamedan period** और **English period** (हिंदू काल, मुसलमान काल और अंगरेज काल—मु० मि०) ये काल राज्य और जाति के कारण हैं।

(५) गोस्वामी जी अपने पत्र में एक स्थान में ब्रजभाषा और हिंदी को भिन्न कहते हैं, दूसरे स्थान में उनमें कुछ अंतर नहीं बताते ! गोस्वामी जी महाराज कहते हैं कि अब तक हिंदी के बड़े विद्वानों ने अपने उत्तम उत्तम ग्रंथ ब्रजभाषा ही में लिखे हैं। पर अब विद्वान लोग खड़ी हिंदी में भी लिखेंगे। अब तक हमारे देश के कवियों को केवल यही (ब्रजभाषा) थी पर अब उसके साथ खड़ी भाषा भी होगी। खड़ी बोली मधुर कविता के उपयुक्त नहीं यह समझना भूल है। वह शतबार सहस्रबार मधुर कविता के उपयुक्त है जिसका उदाहरण दिखा ही दिया है।

(६) खड़ी कविता की लालसा आप जिनको कहते हैं उनको नहीं वरन उन लोगों की होती है जो खड़ी हिंदी के सच्चे हितैषी हैं, जो उस भाषा के गद्य की गद्दी पर पद्य की पदवी भी पहुँचाया चाहते हैं। अंगरेजी को देखिए गद्य पद्य की एक भाषा है। पद्य की भाषा में गद्य की अपेक्षा कुछ वैलक्षण्य अवश्य रहता है इसमें संदेह नहीं परंतु वह आवश्यकीय है। उसके बिन बनती नहीं। कवियों को बचन रचना संबंधी अधिकार की सब जगह जागीरें रहती हैं। ये लोग सब जगह 'मुआफीदार' होते हैं।[३]

(७) ब्रजभाषा की कविता को हिंदी से कोई नहीं निकालता यह भय निरी भूल और निर्मूल है। जैसा कि मैं अपने प्रथम पत्र में प्रकाश कर चुका हूँ, हमलोग ब्रजभाषा और खड़ी भाषा दोनों की कविता से अपनी आराध्य हिंदी को द्विगुणित, चतुरगुणित आभूषण पहनाकर और विविध रीति से उस के 'अटल' भंडार को बढ़ा कर उसके असीम वैभव के सदा अभिमानी होंगे और दोनों का आधार साधार रक्खेंगे।

(८) खड़ी हिंदी की कविता में उर्दू नहीं घुसने पावेगी। जब हम हिंदी की प्रतिष्ठा के परिरक्षण में सदा सचेत रहेंगे तो उर्दू की ताव क्या जो चौखट के भीतर पांव रख सके।

"पाठक जी को, खड़ी बोली का तीन काल English period में मानना चाहिये। १ लल्लू लाल की हिंदी, २ राजा शिवप्रसाद की हिंदी और बाबू हरिश्चंद्र की हिंदी, और ३ पं० श्रीधर पाठक की हिंदी। १ले काल की हिंदी जो उर्दू का ब्राह्मण कृत संस्कार है अर्थात् तुलसी सोना मुंह में लेकर लल्लू जी ने झूठी जबान में प्रेमसागर लिक्खा है और पद्य ब्रजभाषा का है। २रे काल की हिंदी में फारसी अरबी के शब्द आये हैं और पद्य ब्रजभाषा ही के रहे। ३रे काल की हिंदी में पद्य की भाषा पाठक जी ने खड़ी बोली कर देने की चेष्टा की है और दृढ़ आशा है कि हो जायगी। अयोध्या प्रसाद का (मेरा) 'खड़ी बोली का पद्य' इसका कारण है।"

पं० श्रीधर पाठक और बाबू अयोध्या प्रसाद के मत में इस विषय में भेद तो प्रत्यक्ष ही है परंतु इसमें कोई शक नहीं कि काल निर्णय करने में पाठक जी और बाबू साहब दोनों एक-एक युक्ति का ग्रहण करते हैं और दोनों युक्तियों के पक्षपाती अनेक लोग होंगे। —मु० मि०

३—पाठकजी के कथित 'प्राचीन' तथा 'मध्यकालीन' हिंदी के कवियों ने इस 'जागीर' का इतना बुरा बर्ताव किया है और इस दरजे की अपनी स्वतंत्रता प्रगट की है कि सच्चे हिंदी वेत्ताओं को अवश्य लज्जित होना पड़ता है। गोस्वामीजी का प्यारा 'मनोहारित्व' गुण आधे आध पर आकर रहता यदि ब्रजभाषा के कवि लोग इस पोइटिकल लाइसेंस की दुर्गति नहीं किये होते। इस संबंध में १६वीं दिसम्बर सन् १८८६ ई० के विहार बन्धु का वह लेख भी देखिए जो 'खड़ी बोली का पद्य न० २' पृष्ठ २ भूमिका में उद्धृत है। —मु० मि०

सर्कार अपने स्कूलों की हिंदी में अप्रचलित उर्दू शब्दों का बर्ताव कराती है, पर हिंदी के पक्षपाती तो उसके अनुयायी नहीं, हिंदी के गद्य वा पद्य की उन्नति हमलोगों पर निर्भर है सर्कार पर नहीं।—श्रीधर पाठक।

(५)

हिंदोस्थान ता० ८ मार्च सन् १८८८ ई०

संपादकीय टिप्पनी

'खड़ी हिंदी कविता के विरोधी।

पंडित श्रीधर पाठकजी लिखते हैं –

'हमारे मित्रवर मिश्र प्रतापनारायण भी खड़ी हिंदी की कविता के विरोधी हैं और अपने 'ब्राह्मण' पत्र में लाला अयोध्या प्रसाद खत्री संगृहीत पद्य की समालोचना में 'लेखक की मनोगति असंभव' सिद्ध करने को कहते हैं कि आधुनिक कवियों के शिरोमणि भारतेंदुजी ही से 'जब यह (कार्य) न हो सका तो दूसरों का यत्न निष्फल है'। हम नहीं समझते मिश्रजी 'न हो सका' का प्रयोग किस प्रमाण पर करते हैं। वे केवल इतना ही कह गये हैं कि मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं, पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी'। और यदि एक सतकवि का यह कथन अबाध्य प्रमाण भी माना जाय, तब भी इस प्रकार की कविता विषयक असम्भवता सिद्ध नहीं होती। सामान्य रीति से असम्भवता संसार में बहुधा अलीक बातों ही की कही जाती है। और जब कि हमारे मिश्रजी भी कई एक नियत छंदों में खड़ी हिंदी कविता का बनना संभव स्वीकार करते हैं तो 'असम्भव' का प्रयोग करना बुद्धिमत्ता के विरुद्ध जंचता है।

भारतेंदु श्री हरिश्चंद्र ने उतना श्रम इस कविता पर कदापि नहीं किया जितना ब्रजभाषा पर, नहीं तो इसकी महिमा दिखाना भी उनको कोई बड़ी बात न थी।

कवियों की निरंकुशता हम भी मानते हैं, पर वह निरंकुशता भाषा संबंधी नियमों से अबाध्य नहीं होती। उसका स्वत्व कतिपय नियत बातों ही में रहता है और उन बातों की सीमा के बाहर उसकी गति नहीं होती—पूरे शब्द के स्थान में आधा वा पौन शब्द का प्रयोग करना पादपूरीत वा छंदोनिर्वाह के अर्थ ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व बना देना; इस प्रकार की कतिपय बातों में कवियों को प्रत्येक भाषा में अधिकार रहता है। इसको चाहे छंदरचना संबंधी अधिकार (Poetical license) कहिये, चाहे कवियों की एतद्विषयक स्वच्छंदता कहिये, पर कवियों की निरंकुशता जो मानी जाती है वह कथन की रीति से संबंध रखती है भाषा के अंग पर उसका अधिकार नहीं। कवि लोग राई को पर्बत और पर्बत को राई और संभव को असंभव और असंभव को संभव सा अपने कथन बल से कभी दिखला देते हैं पर भाषा पर उनका हस्ताक्षेप ऊपर दिखाये से अधिक कभी नहीं होता। यदि इस 'निरंकुशता' का मनमाना और निरंकुश व्यवहार किया जाय तो न जाने भाषा की क्या दशा हो जाय। जो भाषा शिष्ट निर्दिष्ट नियमों को नहीं मानती उसका भाषापन खोटा समझा जाता है और वह आदर की अधिकारी नही होती।

जब कि ब्रजभाषा और नवीन हिंदी दो भिन्न-भिन्न भाषा हैं और बहुत ही थोड़े अंश में उनकी एकता है। और जितनी एकता है वह भी धीरे-धीरे नष्ट होती जाती है। तो यह मत

कैसा असंगत ज्ञात होता है कि एक के झूठ मूठ के परिरक्षण के अर्थ दूसरी कविता के अधिकार से बिमुख कर दी जाय। और यह बात कि ब्रज भाषा में पद्य अधिकतर मीठा मालूम होता है, नवीन हिंदी को पद्य का अधिकार न देने के लिए कोई पुष्ट वा शिष्ट सम्मत कारण नहीं। यदि इस प्रकार की हिंदी जिसमें आजकल गद्य ग्रंथ और समाचारपत्र आदि लिखे जाते हैं सूरदास, तुलसीदास आदि के समय में प्रचलित होती तो संदेह नहीं सूरसागर रामायण आदि काव्य इसी भाषा में लिखे गये होते—

आधुनिक अर्थात् नवीन हिंदी का जन्म बहुत ही थोड़े काल से हुआ है। और अभी इसमें कविता की चेष्टा भी बहुत कम की गई है। इसकी कविता की अवस्था भी कच्ची और कोमल है और ब्रजभाषा की पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हो गयी है। यह अभी वयः संधि ही में है, पर ब्रजभाषा प्रौढ़ावस्था को डांक 'बुड्ढी नायका' की दशा पर भी आ पहुँची। एक अभी आसन्न कुसुमोद्गम पौधे के रूप में है, दूसरी सरस पक्वफलोऽवनत पूर्णावस्था गत पेंड़ के पद को प्राप्त है। इसकी कविता के मार्ग की अभी अच्छी तरह दागबेल भी नहीं पड़ी, उधर सैकड़ों वर्षों से बनी हुई स्वच्छ सुथरी सड़क पर गाड़ियां दौड़ती हैं। यह सब जान कर (क्योंकि हमें आशा है इससे वे अजान नहीं हैं) मिश्र जी का नवीन हिंदी को बांस और ब्रजभाषा को ऊख की उपमा देना वैसा अनुचित दीखता है।

हमारे मिश्र जी अपने तई छोटे मोटे कवि प्रगट करते हैं, पर हम उन्हें बड़े मोटे कवि कह सकते हैं, क्योंकि महाशय का छोटा मोटापन उनके वृहद्दर्शक कांच Magnifying glass तुल्य (भाषा विषयक) लेख में बड़ा मोटा होकर दृष्टिगोचर होता है।

कोई यह न समझे कि इस लेख से हमारा प्रयोजन बाबू अयोध्याप्रसाद संगृहीत पद्य का सर्वांश में पक्ष करना है, क्योंकि उस संग्रह में निस्संदेह दो एक लेख ऐसे हैं जिनमें अनेक दूषण दिखलाये जा सकते हैं। परंतु इन दूषणों में खड़ी हिंदी का कुछ अपराध नहीं है, किंतु उनका भार लेखकों के सिर जाना चाहिये। हमारा अभिप्राय यह है कि किसी शिष्ट भाषा के विषय में यह कहना कि वह कविता के योग्य नहीं है, भाषा के सामान्य स्वरूप और कविता के उद्देश्य ले अपनी अनभिज्ञता का प्रदर्शन करना है। यह बात कि अमुक भाषा की कविता अमुक भाषा की कविता से अधिक रसीली है दूसरी है, और इससे किसी भाषा की काव्य के लिये अनुपयोगिता सिद्ध नहीं होती।—

हम यह नहीं कहते कि नवीन हिंदी की कविता ब्रजभाषा की कविता से मधुर होती है। हमारा तो केवल यतना ही मंतव्य है कि नवीन हिंदी में जैसे गद्य हैं वैसे पद्य भी होना चाहिये।[१]

१—यहाँ तक पं० श्रीधर पाठक का लेख है। यहाँ से आगे हिंदोस्थान के संपादक की राय चलती है। —मु० मि०

* * *

"खड़ी बोली पद्य न० १ की समालोचना प० प्रतापनारायण जी ने अपने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र में की थी, उसी का उत्तर इस लेख में दिया गया था।" ब्राह्मण का वह अंक अभी तक नहीं प्राप्त हुआ। —मु० मि०

"इस प्रकार का भाषा वा साहित्य संबंधी विवाद से, जिसमें पं० राधाचरण गोस्वामी, पं० प्रतापनारायण मिश्र और पं० श्रीधर पाठक जो तीनों महाशय हिंदी भाषा के प्रेमी और कवि हैं, वादी और प्रतिवादी है, हमारे पाठकों को निःसंदेह बहुत सुख और आनंद प्राप्त होता होगा। इस निर्दोष निर्मत्सर और हितकारी विवाद के सन्मुख पुरुष विशेष पर अनुचित आक्षेप और असभ्य बचनों से भरे विवाद कैसे घृणा के योग्य समझ पड़ते हैं। हम अत्यंत प्रसन्न होंगे यदि और और भी विद्वान इसी प्रकार के भाषाओं साहित्य संबंधी बातों के निर्णय करने में कभी-कभी अपना पांडित्य और समय लगावेंगे।

खड़ी हिंदी में कविता हो सक्ती है और होनी चाहिये वा नहीं इस विषय में हम अपना मत पहिले ही प्रकाश कर चुके हैं कि खड़ी हिंदी ही क्या ज्यतनी संस्कृत वा असंस्कृत, कोमल वा कठोर, मधुर वा अमधुर, भाषा संसार में बोली जाती हैं उनमें सबमें कविता हो सक्ती है और होती है। कविता का उत्तम वा अनुत्तम होना शब्दों पर उतना निर्भर नहीं ज्यतना कवि के भावों पर और उन भावों के प्रकाश करने की रीति पर।[१] निस्संदेह कवि अपने भावों को शब्दों ही के द्वारा प्रकाश कर सक्ता है और इसलिये कविता के श्रवन (कान) संबंध रखनेवाले गुण शब्दों ही पर निर्भर रहते है; किंतु संसार में ऐसी कोई भाषा नहीं जिसके शब्द ऐसे रूखे वा कठोर हों कि यदि कवि के भाव उत्यम और मनोहारी हैं तो उन भावों के प्रकाश करने के योग्य शब्द उस भाषा में न मिल सकें।

हमारी इच्छा है कि हम अवसर पाकर इस रोचक और विवादित विषय में पूर्ण रीति से अपना मत प्रकाश करें, जिससे हम आशा करते हैं वादी प्रतिवादी सब महाशयों को संतोष होगा। किंतु हम यह भी नहीं चाहते कि यह विवाद जो हम समझते है कि हमारे पाठकों को भी रोचक है बहुत शीघ्र शांत हो जाय। जो भाषा के विद्वान महाशय इस विषय में अपना मत हमारे पास भेजेंगे उसको हम बहुत प्रसन्नता के साथ प्रकाश करेंगे"।

(६)

हिंदोस्थान ता० २१ मार्च सन् १८८८ ई०

सम्पादकीय टिप्पनी।

'खड़ी हिंदी की कविता के पक्षपाती'

श्रीयुत् पं० प्रतापनारायण मिश्र जी लिखते हैं—

'हमारे मित्र श्रीधर पाठक महोदय खड़ी हिंदी की कविता का पक्ष लेके ८ मार्च के हिंदोस्थान में हम पर अजब तरह का आक्षेप करते हैं कि हमारी मित्रता और निज बुद्धिमत्ता से हमारी हां में हां भी मिलाते जाते हैं और खड़ी बोली के मुलाहिजे के मारे बेपर की भी उड़ाते जाते हैं। अस्तु हम अपनी ओर से उत्तर दिए देते हैं पर यह भी निवेदन किये देते है कि शास्त्रार्थ और बात है पर काव्य रसिकता चित्त से संबंध रखती है उसमें निरी तर्क प्रणाली काम न देगी! एवं सबके समझाने के लिए दो चार छंदों में तुक जोड़ने मात्र का नाम कविता

१—इसमें शक नहीं कि यह वाक्य कविता की सुंदरता का मूल मंत्र है। परंतु शोक की बात है कि पं० प्रतापनारायण जी और पं० राधाचरण जी ने इस पर पूरा ध्यान नहीं दिया। पं० श्रीधर पाठक जी ने भी इस विवाद में इस पर उतना जोर नहीं दिया, जितना उनके ऐसे विज्ञ पुरुषों को उचित था। —मु० मि०

नहीं है ! यह बात आप भी समझते हैं कि कविता चित्त पर असर न करे तो कविता काहे की ?[१] फिर बतलाइए हमने श्री हरिश्चंद्र के इस बचन से मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं, पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी' खड़ी बोली की कविता की असंभवता मान ली तो क्या बुरा किया ? संसार की रीति है कि 'निज कविता केहि लाग न नीका, सरस होउ अथवा अति फीका'। इसके विरुद्ध जो कविता स्वयं कवि ही के चित्तानुसार न हो उससे दूसरे का चित्त क्या ग्रहण करेंगे ? आप के मित्र जी (प्रताप) ने कई एक छंदों में खड़ी हिंदी की कविता बनना इस कारण स्वीकार किया है कि अरबी फारसी के पिंगल में उन्नीस या इक्कीस प्रकार के छंद माने गए है। वे ही उर्दू में भी काम आते है और (उरूज) में कोई और छंद नहीं है। इससे उर्दू वाले कह सकते है कि हम अपने यहां के कुल छंदों को अपनी जवान में मौजूं कर सकते हैं पर आर्यों के छंदों ग्रंथों में २१ क्या २१००० भी छंद गणना की इति श्री नहीं है और खड़ी बोली में यदि फारसी छंदों के सिवाय कोई छंद बनाइए तो जान पड़े कि हमारी खेलती कूदती बोली (वृजभाषा) के आगे आप की खड़ी बोली एक मिनट खड़ी रहेगी; यदि इंसाफ कोई वस्तु है तो उसका ध्यान करके कहिये कि जो भाषा लाखों छंदों में से केवल २१ वा २२ छंदों में काम आ सकती है उस भाषा को कौन बुद्धिमान हिंदी कवि कविता के योग्य कह सकता है ! 'असंभव' शब्द का अर्थ अपने केवल डिक्शनरी में देख लिया। कवियों के मुहाविरे में देखते तो मेरा कथन आप की बुद्धिमत्ता के विरुद्ध न जंचता। अस्तु मेरी अबुद्धिमत्ता क्षमा कीजिए पर यह तो बतलाइए कि जब बाबू हरिश्चंद्र स्वयं कहते हैं 'मैंने कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं' तो आप किस बुद्धिमत्ता से कहते हैं कि 'भारतेंदु' श्री हरिश्चंद्र ने उतना श्रम इस कविता पर कदापि नहीं किया' ? क्या भारत में आज खड़ी बोली की इतनी 'महिमा मेरे तुम्हारे' श्रम का फल है ? पर किया क्या जाय, कविता के योग्य यह भाषा नहीं है, 'कई बेर परिश्रम' करने पर भी उनके 'चित्तानुसार' इसकी कविता न बनी ! तो छोड़ दिया ! प्रत्यक्ष को क्या प्रमान ! कोई पिंगल लेके बैठिए (कहिए तो छंदार्णव मैं भेज दूं) और इसी हिंदोस्थान पत्र में प्रत्येक छंद के उदाहरण आप खड़ी बोली में दे चलिए और मैं वृजभाषा में, फिर देखिए क्या होता है।[२]

१—आपकी यह राय बहुत ठीक है। पर यह तो बतलाइए कि चित्त पर असर भाव से होती है कि शब्द से ? अच्छा भाव रहने पर गद्य भी असर करता है; पर भाव अच्छा नहीं रहने से पद्य भी असर नहीं कर सकता। और आप भी नहीं कहते कि खड़ी बोली में अच्छा भाव नहीं प्रगट हो सकता। तो फिर खड़ी बोली में पद्य क्यों न हो ? खड़ी बोली ब्रजभाषा की कनौड़ी क्यों बनी रहे ? —मु० मि०

२—एक तो प्रतापनारायण जी के वाक्य ही लच्छेदार होते थे, आदि अंत का ठिकाना मिलना कठिन रहता था और विराम के आधुनिक व्यवहार (Punctuation) से उनको कुछ घृणा सा था; और दूसरे "हिंदोस्थान" पत्र के स्वामी "अन्नभवान" के छापेखाने के नियम भी विलक्षण हैं। इन कई कारणों से यह लेख और प्रतापनारायण जी के अन्य लेख प्रथम प्रकाशित रूप में वैसे स्पष्ट नहीं मालूम होते थे। इसलिए हमने इन लेखों में स्थानानुसार विराम लगा दिया है और वाक्यों के खंड खंड अलग कर दिया है और कहीं २ विराम का परिवर्तन भी कर दिया है। —मु० मि०

कवियों की 'निरंकुशता' भी आपकी खड़ी बोली में नहीं रह सकती। जिस समय आप 'आश्चर्य' को 'अचरज्ज', 'प्रकृति' को 'परकीति' लिखियेगा उसी समय बिचारी खड़ी बोली भट्ट में बैठ जायगी।[१] आप ही के बचनानुसार 'भाषा पर उन (कवियों) का हस्तक्षेप.... कभी नहीं होता', जो भाषा मुद्दत से कविता में व्यवहृत है उसे छोड़ के कवि दूसरी भाषा नहीं स्वीकार कर सकते। जो कवि नहीं हैं वे चाहा करें कि हस्तक्षेप तो दूर रहा एक भाषा जो कविता के उपयुक्त है वह फेंक दी जाय और उसके ठौर पर खड़ी बोली रक्खी जाय तो क्या होता है? 'जो भाषा शिष्ट निर्दिष्ट नियमों को नहीं मानती' (ह ह ह ह जादू वह जो सिर पै चढ़ के बोले[२]) सच है, जो भाषा कवियों की मानी हुई संस्कृत समान वृजभाषा के नियमों में हो ही नहीं सकती वह कवियों के 'आदर की अधिकारी' (कसूर माफ! खड़ी बोली में अधिकारनी चाहिये[३]) कैसे हो सकती है! 'जब कि वृजभाषा और नवीन हिंदी दो भिन्न २ भाषा हैं—नहीं भाई! भिन्न कहां है? दोनों की जननी संस्कृत है, दोनों का घर आर्य देश है[४]। केवल इतनी भिन्नता है कि पहिली वृजमंडल वासिनी है दूसरी दिहली लखनऊ की रहनेवाली है और एक केवल खड़ी रहती है और दूसरी स्वेच्छानुसार लीला क्रीड़ा भी कर सकती है इतनी मात्र भिन्नता से भिन्न भाषा न हो जायगी। इतनी 'एकता' बहुत थोड़े अंश में कदापि नहीं है! वृजवाले खड़ी बोली भली भांति समझ सकते हैं और थोड़े से अभ्यास में बोल भी सकते है। यही दशा वृजभाषा की भी है। फिर इनकी 'एकता' कौन 'नष्ट' कर सकता है? यह और सुनो 'एक के (वृजभाषा) के झूठ मूठ परिरक्षण के अर्थ दूसरी (खड़ी बोली) कविता के अधिकार से बिमुख कर दी जाय'। हां निस्संदेह 'यह मत असंगत है' पर यह मत चली नहीं सकता! वृजभाषा के 'परिरक्षण' की चिंता ही 'झूठ मूठ' है। एक जिला उसको दिन रात बोलता है और प्रत्येक प्रांत के कवि उसे लिखते हैं उस पर आपत्ति ही क्या है जो परिरक्षण का उद्योग कोई करे? क्या थोड़े से अंगरेजी पढ़े हुए, वृजभाषा न जाननेवाले एवं सीखने के लिए थोड़ी सी मिहनत न करके नई गढ़ंत गढ़नेवाले, एवं काव्य शास्त्र न पढ़ के कविता करने वाले[५] उसकी कोई हानि कर सकते है? रही खड़ी

१—ऐसी निरंकुशता खड़ी बोली में क्यों किसी बोली में रहना उचित नहीं। "प्रकृति" को "परकीति" बना डालना "कवियों की निरकुशता" नहीं बल्कि "कवियों की सृष्टि रचना शक्ति" कही जायगी। —मु० मि०

२—राधाचरण गोस्वामी जी लिखते हैं (खड़ी बोली आंदोलन पृ० ११) "कविता का विषय बड़ा गंभीर है"। अलबत्त: ! जब तो प्रताप नारायण जी इतनी गंभीरता के साथ लिखते हैं! पाठक लोग स्वयं देख लेवें कि इन वाक्यों में गंभीरता और पांडित्य कितने हैं और चुटखेपनी और बात बनाना कितने हैं। —मु० मि०

३—और ब्रजभाषा में क्या होना चाहिये यह तो जरा बतला दो कोई ब्रजभाषा के पंडित!

४—संस्कृत का घमंड होना और उसका अधिकार बढ़ाने की इच्छा रखना दूसरी बात है परंतु इसको आधुनिक हिंदी की जननी कहना ऐतिहासिक घटनाओं का निरादर करना है। ऐसे तो हिंदुस्थान में विदेशी चीज भी आती है तो हिंदुस्थानी रूप धारण कर लेती है परंतु इससे हिंदुस्थान में प्रचलित सब चीजें हिंदुओं के प्राचीन समय की संपत्ति नहीं कहला सकती है। हिंदी की उत्पत्ति के विषय में इस पुस्तक की भूमिका को देखिए। —मु० मि०

५—ब्रजभाषा के पक्षपाती जब तक खड़ी बोली वालों को मूर्ख और ज्ञान रहित नहीं कहते तब तक उन्हें कोई युक्ति सूझती ही नहीं। खड़ी बोली आन्दोलन पृ० १३ में इसके संबंध में एक टिप्पनी दी जा चुकी है।

बोली वह भी वृजभाषा की बहिन ठहरी। उसको 'अधिकार' से कौन हिंदू 'बिमुख' कर सकता है! गद्य मात्र की वह पूर्ण स्वामिनी है। पद्य भी जितने प्रकार के उसमें हो सकते हैं हों![1] यह तो और भी हमारे लिये अहंकार का विषय है कि दूसरे देशोंवाले केवल एक ही भाषा से गद्य पद्य दोनों में काम चलाते हैं हमारे यहां एक गद्य की भाषा है, एक पद्य की!! क्या वृजभाषा भी हिंदी नहीं है? अरबी है? फिर उसका 'परिरक्षण, क्यों न किया जाय? हमारे प्यारे पाठकजी इसका कोई पुष्ट प्रमाण दे सकते हैं कि 'सूरदास, तुलसीदासादि के समय में खड़ी बोली प्रचलित न थी? हम रामायण और सूरसागर में कई ठौर कई खड़ी बोली के शब्द दिखा सकते हैं। उर्दू का जन्म दिहली की खड़ी बोली ही से हुआ है—आया, गया, हुआ, किया आदि क्रिया अरबी के नहीं है। उर्दू से पहिले अवश्य संस्कृत वा संस्कृत के अपभ्रंश शब्दों के साथ बोले जाते थे और यही हमारी नागरी या आप की खड़ी बोली का रूप है। मुसलमान लोगों ने अपने समझने को केवल संज्ञावाचक शब्द मिला के हमारी ही खड़ी बोली[2] का नाम उर्दू रख लिया है। अत: यह स्वय सिद्ध है कि नागरी भाषा[3] नवीन नहीं है पर कविता के उपयुक्त ही न होने से आर्यों ने नहीं रक्खी, यवनों ने अपने पिंगल (उरूज) के अनुकूल देख के स्वीकृत कर ली। यदि सूरसागर आदि खड़ी बोली में बनते तो 'खड़ी बोली के पद्य' वाले दो एक लेखों से अधिक मनोहर कभी नहीं हो सकते। दोहा चौपाई गीतिकादि छंद और राग खड़ी बोली में बना चाहे जो ले, पर माधुर्य और लावण्य (जो केवल कवियों के प्रयोग ही से नहीं वृजभाषा में स्वयं है) हो ही गा नहीं। 'शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे' का सा मजा आवैगा। वृजभाषा को

वड़ां गोस्वामी जी तो भला पाठक जी को छोड़कर अन्य लोगों को ऐसा कहते हैं परंतु प्रतापनारायण जी तो उन्हें भी नहीं छोड़ते। हा हतभाग्य पाठक जी! ब्रजभाषा में उत्तम कविता करने पर भी आप "वृजभाषा न जाननेवाले", "थोड़े से अंगरेजी पढ़े", "एवं काव्य शास्त्र न पढ़े" कहलाए! वृजभाषा वालों के खयाल शरीफ में इतनी बात नहीं जगह पाती कि विद्वानों में भी राय की एकता नहीं हो सकती—ऋषियों को भी आपस में मतभेद होता है। —मु० मि०

१—तब आप को पाठक जी से विरोध ही क्या रहा कि इतनी ललकार और इतना ताल ठोकना जारी किया? पाठक जी की राय ख० बो० आं० पृ० २३ पारा ७ देखिए। —मु० मि०

२—दो ही पांती ऊपर प्रतापनारायणजी लिखते हैं "आपकी खड़ी बोली" गोया उससे अपना पृथक होना जताते हैं। पर यहां लिखते हैं "हमारी ही खड़ी बोली" मुनादी तो फिरवा दी कि खड़ी बोली में कविता न होवे और अपने मुंह से कहते हैं "हमारी ही खड़ी बोली।" पाठक वर्ग! इस 'ही' पर जरा खयाल कीजियेगा। अलिफ लैले के 'अजब चिराग' नामक किस्से में इसी तरह से जादूगर ने अलादीन को "मेरा बच्चा २" कह कर अपना भतीजा बनाया था और जादूगर न होने से अनुमान से हिंदी का इतिहास लिखने यहाँ क्यों बैठते? —मु० मि०

३—"नागरी" शब्द भाषा का बोधक नहीं है अक्षर का बोधक है। पर आज कल पश्चिमोत्तर प्रदेश के बहुत से लोग—जिनमें थोड़े विद्वान भी हैं—नागरी शब्द से हिंदी भाषा समझते हैं। यह भारी भूल है।

—मु० मि०

हमारे पाठकजी ने 'बुड्ढी नायका' से सादृश्य दिया है यह महा अनुचित है।[१] काव्य के ग्रंथों में बुड्ढी स्त्री को नायका कदापि नहीं कहते, इससे सिद्ध होता है कि आपने कभी कवियों का डौड़ भी नहीं मझाया है। और सुनिये, भाषा है भगवती का रूप, उसको बुढ़िया नायका कहना योग्य नहीं।[२] नागरी देवी की बहिन या यों कहो दूसरा स्वरूप जब से प्रादुर्भूता हुई हैं अपने पूर्ण सौंदर्य से अद्यापि विराजमान हैं, पर उनका दर्शन जिन्हें काव्य चक्षु के अभाव से नहीं होता वे चाहे जो कहें। विदेशीय लोग हमारी संस्कृत को भी Dead Language कहते हैं।[३] पर क्या होता है? उक्त भाषा के विद्वानों की दृष्टि से कोई देखें तो जान पड़े। इसका उत्तर तो हम पहिले ही दे चुके कि 'हिंदी का जन्म थोड़े काल से है' पर यह हम भी मानते हैं कि उसका गुण गौरव हमें थोड़े ही काल से ज्ञात हुआ है! 'इसके कविता के मार्ग की······दागवेल' आप डालिये, यथा सामर्थ हम भी कंकर पत्थर डालते रहेंगे[४]। पर यह भी स्मरण रखिये कि यह 'सड़क' ऐसी 'स्वच्छ सुथरी' कभी न बन सकेगी कि कवियों की उक्ति रूपी 'गाड़ियाँ' बेरोक दौड़ सकें !!!

हमारे पाठकजी हमें 'बड़े मोटे कवि' समझे हैं। इस 'बड़े मोटे' शब्द का अर्थ यदि स्वभावोक्ति से माना हो तो उन का सौजन्य है, हम बिचारे जगत की चिंता में दुबले रहते हैं, कभी-कभी कुछ बक डालते हैं। इससे साधारण कवि बनने के तो योग्य ही नहीं 'बड़े मोटे' किस बिरते पर बने? पर हां यदि काकोक्ति से हम 'बड़े मोटे' दृष्टिगोचर हुए हैं तो हमारा दोष केवल इतना है कि हम अंतरजामी नहीं हैं कि सबका हाल ठीक ठीक जान सकें। यह अनुमान किया था कि हमारे पाठक महोदय कविता की मुख्य भाषा ही के स्वादु को नहीं जानते तो काव्य की बारीकियाँ क्या जानते होंगे। इसी से हमने 'भाषा विषयक लेख' बड़े मोटे (जिसके अर्थ में बहुत सोचना न पड़े) भाव से लिख मारा था। क्षमा करें। हम खड़ी हिंदी के विरोधी होते तो हानि पर हानि सहके 'ब्राह्मण' का संपादन क्यों करते।[५] पर

१—"बुड्ढी नायका" का प्रयोग करने का अभिप्राय तो प्रताप नारायणजी अवश्य समझ गए थे—नहीं तो इतने चोटीले हृदय से नहीं लिखते—परंतु उसके व्यथा को दूर करने के लिए काव्य ग्रंथ संबंधी शास्त्रार्थ करने लगे थे। अंगरेजी में Wit और Humour किसको कहते हैं? —मु० मि०

२—केवल इतना ही कहने से तो आपकी "खेलती कूदती" भाषा पर लोगों की भक्ति न होगी। जरा और बढ़कर कहिये कि "ब्रजभाषा है श्री राधिका जी का प्रत्यक्ष अवतार" तब ठीक होगा। —मु० मि०

३—हमें शक है कि प्रतापनारायण जी ने Dead Language का अर्थ नहीं समझा था, नहीं तो ऐसा कभी नहीं लिखते। किसी भाषा को भली भाँति नहीं जानकर उसके शब्दों का प्रयोग करने से ऐसी ही भूल होती है। —मु० मि०

४—वाह! क्या अच्छा काम अखतियार किया है! कवि क्या हुए भाषा म्युनिस्पैलिटी की कूड़ा गाड़ी हो गए। —मु० मि०

५—यदि ब्रजभाषा गद्य में "ब्राह्मण" निकाल सकते और ब्रजभाषा को छोड़ खड़ी बोली गद्य में उसे निकालते तो समझा जाता कि खड़ी बोली से आंतरिक प्रेम है। बात यह है कि ब्रजभाषा को कोई पूछता नहीं; लाचार होकर खड़ी बोली में लिखना पड़ा। और खड़ी बोली की अयोग्यता सिद्ध करने की पूरी कोशिश करने के बाद उससे प्रेम प्रगट करना वैसा बुरा दीखता है? किसी गांव में एक परम दुष्ट बूढ़ा ब्राह्मण रहता था। अपनी शक्ति भर उसने कभी किसी की भलाई नहीं होने दी। उस गांव में एक आदमी ने अपने लड़के के

कविता इस भाषा की वृजभाषा के देखेरूखी होती है और होगी। इसी से निरर्थक श्रम नहीं किया चाहते। यह हम मान लेंगे कि अच्छे कवि जिस भाषा को चाहें उस भाषा का गौरव बढ़ा सक्ते हैं पर रसीली रंगीली तबीअत वालों के लिये भाषा भी वैसी ही चाहिये। 'कवि हिं अर्थ आखर बल सांचा।[1] अनुभव वाल गति हिं नट नाचा'। संस्कृत के कवि भी प्राकृत भाषा का प्रयोग करते है, इससे यह प्रयोजन नहीं कि देववाणी में कोई बात नहीं बन सकती; पर प्रत्येक बात का ढंग ही जुदा होता है जिसे कवि ही समझ सक्ते हैं। कविता हो सब बोलियों में सक्ती है पर उसका लोच सबमें एक सा नहीं होता। जब हमें ईश्वर ने पकी पकाई खीर दे रक्खी है तो दलिया पकाने में क्यों समय खोवें ?[2]

(७)

हिंदोस्थान ता० २३ मार्च सन् १८८८ ई०

'सम्पादकीय टिप्पनी।'

'खड़ी बोली और ब्रजभाषा कविता'

पंडित राधाचरण गोस्वामी जी लिखते हैं—

'खड़ी बोली और ब्रजभाषा की कविता के विषय जो बाद हिंदोस्थान में चल रहा है, वह कदाचित जय पराजय के लिए नहीं है। यदि कोई ऐसा समझे तो बड़ी भूल है। हम केवल एक विषय की बिबेचना करते हैं। यदि हम परस्पर अपने अपने पत्र के शब्दों पर झगड़ा न करके आशय पर झगड़ें, तो कदाचित अप्रतिष्ठित न होंगे। मेरी अनुमति यह है कि यह विषय सर्व साधारण है, इसके निर्णय के लिए हिंदी भाषा के सब विद्वानों का मत लेना चाहिए। अतएव एक सभा 'कविता विचारिणी' नाम से नियत हो। उसमें हिंदी के सब विद्वान चाहे एक स्थान पर एकत्र होकर निर्णय करें, चाहे कुछ प्रश्न छाप करके सब विद्वानों के पास भेजे जांय, और एक नियत समय में उनका उत्तर लिया जाय, फिर बहुमत के अनुसार इसका निर्णय हो। यदि यह बात हमारे खड़ी बोली के कविता रसिक स्वीकार करें, तो इसका प्रबंध किया जाय।'[3]

ब्याह की बात कहीं इतना छिप कर पक्की करी कि उस बूढ़े को मालूम नहीं हुई। तिलक आई। बूढ़े को खबर मिली। फौरन उस जगह पहुँचा। पिता डर गया—लड़के को बूढ़े के पांव पर गिराया। बूढ़े ने आंखों में आंसू भर कर अत्यंत कोमल और दरदीले स्वर से पुकार कर कहा "अहा! मैं इस लड़के को कितना मानता हूं। इसके ब्याह की तयारी देखकर मेरा कलेजा कितना बड़ा होता है। जाओ बेटा, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि आज से तुम्हारी मिरगी छूट जायगी।" सुनते ही तिलक चढ़ानेवाला भाग गया। —मु० मि०

१—खूब खयाल रहे कि पहिले 'अर्थ बल' लिखा है और पीछे 'आखर बल' लिखा है। —मु० मि०

२—या यों कहिये कि जब नानवाई की दूकानों में तरह तरह के खाने तयार मिल रहे हैं तो क्यों घर में आग बालने और रसोई बनाने का झंझट उठावें! पंडित जी को इतना भी खयाल नहीं रहा कि दूसरे के घर की खीर अग्राह्य है? अजी साहब, मथुरा की बनी खीर कानपुर में खाने से हिंदूपन जाता रहेगा।

—मु० मि०

३—यह सभा आज तक न नियत की गई और न इसके संबंध में प्रश्न छाप कर वितरित किये गये। खड़ी बोली की जय कालानुक्रम से स्वाभाविक नियमों के कारण हो गई। —मु० मि०

(८)

हिन्दोस्थान ता० ३० मार्च सन् १८८८ ई०

प्रेरित पत्र

प्रेरित पत्र के उत्तरदाता हम न होंगे।

श्री शुभ सम्बोधन योग्येषु हिंदोस्थान सम्पादकेषु !

महाशय !

पं० श्रीधर पाठक जी ने सारसुधानिधि में इस बात की सूचना दी थी कि ब्रजभाषा और खड़ी बोली पद्य संबंधी लेख हिंदोस्थान ही में छपें। अतएव यह प्रेषित है। आशा है आप इसको स्थान देकर निपक्ष भाव से विचारते भी रहेंगे।

यद्यपि यह उत्तर प्रथम ही प्रस्तुत हो चुका था परंतु मैं इधर एक 'सोसायटी' के कार्य में लिप्त था इससे विलम्ब हुआ। यह दैवीय घटना की दीर्घ सूचना भी क्षमा योग्य है।

ब्रजभाषा और नया पद्य

यह तो हम बारंबार लिख चुके हैं[१] कि ब्रज भाषा के सन्मुख खड़ी बोली का पद्य बिलकुल फीका मालूम होता है। पर आज फिर कुछ उसी के विषय में लिखना पड़ेगा। श्रीधर पाठक जी का एक पत्र और छपा था। वे लिखते हैं 'हम ऐसा समझते हैं—और ऐसा होगा'—इसमें हम नहीं कह सकते क्योंकि न तो हम किसी का चित्त ही अपने वश में कर सकते हैं और न हम ऐसी ज्योतिष विद्या और फिलासफी पढ़े हैं कि समय के विपरीत दृढ़ता पूर्वक कहैं कि ऐसा ही होगा।[२]

हमारा यह मत नहीं है कि ब्रज भाषा और खड़ी बोली एक है क्योंकि यदि एक ही होती तो उसका अन्तर ही क्यों दिखाते किंतु हां यह अवश्य है कि बहुत नहीं तो थोड़ा अंतर है।[३]

पाठक जी कहते हैं कि उर्दू इसमें नहीं घुसने पावेगी क्योंकि हम हिंदी की प्रतिष्ठा के परिरक्षण में सर्वथा सचेत रहेंगे, भला एक आप[४] इसकी रक्षा में उद्यत रहेंगे तो औरों को क्या कीजिएगा? जिस प्रकार आज कल के गद्य में बहुधा लोग उर्दू के शब्दों का प्रयोग करते हैं तो पद्य में उर्दू के शब्द आवें इसके लिये क्या कोई ऐक्ट पास किया जायगा? एक स्थान में आप चाहते हैं ब्रजभाषा निकाली न जाये और दूसरी जगह आप प्रकृति प्रबंध कारिणी कमीटी के अधिपति मुंशी बलानुसार यह नतीजा निकालते हैं 'लोग कुछ दिनों में ब्रजभाषा के काव्यों को भूल जायंगे?'

१—यह "बारम्बार" के पत्र शायद सारसुधानिधि में छपे थे। न उसकी फाइल मेरे पास है और उस पत्र की अकाल मृत्यु के कारण न उसकी फाइल अब मिल सकती है। —मु० मि०

२—न कहा सो गलती की। खड़ी बोली पद्य की वर्तमान अवस्था देखिए। —मु० मि०

३—भला शास्त्री जी तो इतनी कृपा करते हैं और खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा को एक नहीं कहते हैं, पर उनकी पार्टी के आज कल के लोग तो ब्रजभाषा को भी हिंदी ही कहने लगे हैं। —मु० मि०

४—लेखक को शायद यह नहीं मालूम था कि 'हम' शब्द बहुबचन है और पाठक जी 'हम' शब्द से 'कवि मंडली' का तात्पर्य रखते हैं। —मु० मि०

यह जो कहा गया है कि खड़ी बोली का अभी आरंभ है। इसलिए इसमें मनोहारित्व ऐश्वर्य नहीं है, कभी ठीक नहीं। आज कम से कम १५ बरस के समय से खड़ी बोली में लावनी, ख्याल और भजन बनाते हैं। पर ब्रजभाषा की समता करने पर एक भी योग्य नहीं ठहरता। यही नहीं, नव्वाब खानखाना आदि के समय के बहुत से श्लोक खड़ी बोली में प्रस्तुत हैं पर केवल संस्कृत काव्य के नकल करनेवाले भाणों के समान मालूम पड़ते हैं, यथा 'भया बालका बादशाही करेगा'—और कोई भी लालित्य उसमें न आया।

फिर संस्कृत की रीश कोई भाषा क्या करेगी, आज फारसी वालों को सैकड़ों वर्ष से बाजी के शेर में बीत गया और अंगरेजों की इल्म की फिक्र में कितनी जुबिलियां बीत गईं, पर वह माधुरी तो बड़ी बात है, उसकी नकल करने का ढंग भी नहीं आया! तब विचारी खड़ी बोली क्या है?

पाठक जी प्रथम तो कहते हैं 'हमारी समझ में ज्यतना ज्ञान उत्तम पद्य समझने को सापेक्षित है, उतना ही उत्तम गद्य समझने के लिए है और फिर आप ही यों फरमाते हैं 'पद्य की भाषा में गद्य की अपेक्षा कुछ वैलक्षण्य अवश्य होता है।' तब समझने के लिए बुद्धि को कुछ वैलक्षण्य क्यों न चाहिए?

हम देखते हैं कि अंगरेजी में गद्य पद्य की एक ही भाषा है तो इससे क्या? हमें चाहिये कि अपनी भाषा को अंगरेजी के वैज्ञानिक विषयों से भूषित करें और साथ ही यह भी चाहिये कि उसके शुक्ल काव्य की नकल भी न करें।

हरिश्चन्द्र के साथ ही ब्रजभाषा की समाप्ति बताना सर्वथा भ्रम है। अभी भारतेंदु के समय के वे कवि, जिनकी स्वयं उन्होंने प्रशंसा की है, मरे नहीं हैं, यदि ज्यादा प्रसंग चाहो तो भारत जीवन कार्यालय से 'विक्टोरिया रानी' की समस्यापूर्ति मगा कर देख लेओ कि अभी कैसे कैसे जिन्दा बैठे हैं! अगर बहुत नहीं तो दस पांच के नाम तो मैं क्षण भर बिना सोंचे बतला सकता हूँ।

आप फिर इस प्रकार लिखते हैं 'इस संसार में एक वस्तु एक ही बार उन्नति के शिखर पर चढ़ती है, फिर या तो स्थिर हो जाती है या गिर जाती है' यह फिलासफी ठीक नहीं देखिये! मूर्ति पूजा भारत में कै बार उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हुई?

कायस्थों की बादशाही में कितनी उन्नति होकर फिर अब उन्नति की पताका बढ़ती जाती है। यह क्या दूसरी उन्नति नहीं हुई? फिर इतिहास इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि कितनी मनुष्य मंडलियाँ कितनी ही बार उन्नति करके फिर गिरी और फिर चढ़ी। फिर यह जो कहा गया है कि 'ब्रजभाषा कई बातों में उन्नति की पराकाष्ठा भी परे पहुँच गई है और यद्यपि अनेकों अन्य बातों में उसकी समाई है पर अवसर नहीं' यह क्या? रेलवे की नौकरी करती है जो अवसर नहीं?

और प्रिय सुहृद पाठक महाशय, इस बात ते जब आप ही कहेंगे तब बड़ा अनर्थ ठहरेगा। देखिए अंगरेजी जिन बातों में पराकाष्ठा अथवा सीमातिरिक्त अवस्था में पहुँच गई है तो क्या अब वो दूसरा रूप रचने का उद्योग करगे?

आज सहस्रों 'नावेल' (उपाख्यान) अंगरेजी में बने प्रस्तुत हैं। किस बात का 'नावेल' अंगरेजी में नहीं लिखा गया है ? फिर भी ऐसा कौन सा सप्ताह नहीं होता कि जिसमें दो एक नये उपाख्यान छपकर प्रकाशित न होते होंय और भी कई लोगों को यह कहते हुए देखा है कि 'हिंदी की कविता भूषी नहीं है'।

यह आश्चर्य और दु:ख का विषय कहा जा सकता है कि ये लोग इतने ही में फूल उठे हैं। यह विद्या का समुद्र है, इसमें जितना घसोगे उतना ही अगाध निकलेगा। यद्यपि हमारी ब्रजभाषा की कविता प्रत्यङ्गावयव सुंदरी है पर अभी वीर, करुणा, रौद्र और भयानक आदि रसों के पदों का अभाव ही कहा जा सकता है। क्योंकि इस प्रकार के पद्य बहुतायत से नहीं हैं। अतएव इस प्रकार कहना युक्ति विरुद्ध है कि 'ब्रजभाषा को विश्राम लेने का समय अवश्य पहुँचा है'।

खड़ी हिंदी हमारी भाषा है और उसकी उन्नति में हमारा गौरव है किंतु इस विषय में वह ब्रजभाषा की बराबरी नहीं कर सकती है और इसीलिए उस रूप की कोई आवश्यकता नहीं है। बेशक हिंदी के विशुद्ध गद्य का बड़ा मान्य है पर साथ ही उसके ब्रजभाषा की कविता का भी गौरव कमती नहीं है। पर हां यह तो अवश्य होगा कि उसके समझनेवाले ही गौरव करते हैं। क्योंकि 'गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणी' हैं।

यदि ब्रजभाषा के क्रियापद अनेक रूपांतरों में हैं बेहतर है कि हों, जिसमें उसकी यमक आदि ध्वनि में और भी सुंदरता आवे। इससे यह नहीं हो सकता है कि हिंदी कबिता (ब्रजभाषा) भ्रष्ट है या कुछ निकृष्ट है।

खड़ी बोली की कविता के नमूनों को आगे के प्रकरण में परखेंगे। आशा है कि स्थानाभाव के देखकर पाठक जी भी क्षमा करेंगे।

शिवनाथ शर्मा
बड़ी कालिका स्ट्रीट, लखनऊ

शिवनाथ शर्मा जी के लेख के बन्दिश से प्रगट होता है कि वह समझते हैं कि पं० श्रीधर पाठक जी अंगरेजों का अनुकरण करके हिंदी में ब्रजभाषा के स्थान में खड़ी बोली का पद्य चलित किया चाहते हैं। परंतु यह बात नहीं है। हिंदुस्थान में आजकल हिंदी जाननेवाले अंगरेजों में ग्रियर्सन साहब सर्वाग्रगण्य हैं। यदि अंगरेजों की रुचि इस ओर होती तो ग्रियरसन साहब अवश्य खड़ी बोली पद्य के अनुयाई होते। पर वह इसके विरोधी हैं। उन्होंने गया जी से ता० ६ सितम्बर १८८७ ई० को बाबू अयोध्या प्रसाद को यों लिखा था—

I have recived your Khari Boli Ka Padya and your letter asking for an opinion of it, I regret no criticism of mine can be of use to you, as I am strongly of opinion that all attempts at writing poetry in Khari Boli must be unsuccessful. The matter was fully discussed some years ago by Babu Harishchandra of Benares and I consider his arguments convincing.

फिर ता० ६ फरवरी सन् १८९० को उन्होंने गया जी से बाबू अयोध्या प्रसाद जी को लिखा—Dear Sir, I have received a copy of your Khari Boli Ka Padya. It is very nicely printed, but I regret that I cannot agree so much labour and money have been spent upon an impossible task.

फिर ता० २२ फरवरी १८९० ई० को उन्होंने लिखा—I must ask you not to trouble to send me any more papers &c about Khari Boli, my mind is quite made up on the subject.

ग्रियर्सन साहब के इस पत्र के कारण और अन्य लोगों के भी बाबू हरिश्चंद्र की दुहाई देने के कारण बाबू अयोध्याप्रसाद जी ने "एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना" नामक मुद्रित पत्र प्रकाशित किया था जिसका एक अंश इस पुस्तक के पृष्ठ २१ के फुटनोट में प्रकाशित किया जा चुका है। उस अंश को छोड़ उस पत्र का शेष भाग यहां प्रकाशित किया जाता है। इतना कहना आवश्यक है कि यदि इस पत्र में बाबू अयोध्या प्रसाद जी शिवनाथ शास्त्री के इस लेख का जिक्र नहीं किये होते तो हम इस लेख को इस पुस्तक में स्थान नहीं देते क्योंकि मेरी समझ में शास्त्री जी का यह लेख उपयोगी युक्ति से बिलकुल रहित और व्याकरण की कई अशुद्धियों के सहित है।

"एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना"

ब्रजभाषा कविता के पक्षपाती बाबू हरिश्चंद्र की दुहाई देते हैं इसलिये हरिश्चंद्र के बचन का खंडन होना आवश्यक है। बाबू हरिश्चंद्र ईश्वर नहीं थे। उनको शब्द शास्त्र का Philology का कुछ भी बोध नहीं था। यदि Philology का ज्ञान होता तो खड़ी बोली में पद्य रचना नहीं हो सक्ती है ऐसा नहीं कहते। आप लिखते हैं कि "पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा ब्रजभाषा है यह निश्चित हो चुका है। मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है। मैंने इसका कारण सोंचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती तो मुझको सबसे बड़ा यह कारण जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है इससे कविता अच्छी नहीं बनती।" यदि दीर्घ मात्रा के कारण खड़ी बोली में कविता करने में कठिनता है तो दीर्घ को ह्रस्व कर देना कवियों को Poetical license बहुत दिनों से हासिल है। दूकान उठा लो में घोड़ा न हटाऊंगा—हठ करना दूसरी बात है। दीर्घ मात्रा रहते ही उर्दू के कवि पद्य रचना करते हैं और बाबू हरिश्चंद्र भी करते थे। इसी लिये बाबू साहब का काव्य अपने खड़ी बोली का पद्य 'नं० २' में दिया है। उर्दू में वजीर और अनीस का काव्य बाबू हरिश्चंद्र को अति प्रिय था। वह अनीस को अच्छा कवि समझते थे। बाबू साहब अपने हिंदी व्याकरण में लिखते हैं "वाक्य बनाने में व्याकरण की शुद्धता को छोड़ के मुहाबिरे का भी ध्यान अवश्य है। वाक्य साहित्य और मुहाबिरों से ललित होते हैं।

जाति पुरुष और स्त्री दो प्रकार की हैं और हिंदीमें नपुंसक जाति के शब्द भी इन्हीं दो जाति में मिला दिये जाते हैं जो हिंदी भाषा में फारसी अंगरेजी इत्यादि भाषा के शब्द गए हैं उसको कहीं तो हिंदी वालों ने जाति बदल दी है कहीं नहीं बदली है इससे जो ऐसे शब्द आवें जिनकी जाति हिंदी वालों ने न बदली हो तो उन्हें उसी भाषा की जाति के अनुसार बोलना चाहिये।" इसके लिखने से मेरा तात्पर्य है कि बाबू साहब पंडित जी नहीं थे, मुंशी जी थे। आपकी हिंदी में फारसी अरबी के शब्द आये हैं। नमूने के लिये 'यात्रा' से उठा कर कुछ लिख देता हूँ। 'आज सुबह सात बजे मेहदावल पहुँचे। सड़क कच्ची है राह में एक नदी भी उतरनी पड़ती है उसका नाम आमी है। छः आना पुल का महसूल लगा।' जिस स्टाइल का यह गद्य है उस स्टाइल में खड़ी बोलीं में पद्य बहुत हैं। नज़ीर का कौड़ी नामा बाँचिये। पिंगल और स्टाइल दो भिन्न वस्तु हैं। माइकल मधुसूदन दत्त ने Blank Verse अंगरेजी छंद को बंगला में लिखा है। बाबू महेशनारायण ने 'स्वप्न' निराले छंद में लिक्खा है। इसलिये खड़ी बोली की कोई क्षति नहीं है। पंडित जी से मौलवियों ने, संस्कृत पिंगल हिंदी में व्यवहार करने के लिये कोई बाज़ीनामा या मुचलका नहीं लिखवाया है। पंडित श्रीधर पाठक का यह हिस्सा है।

* * * *

जबतक पश्चिमोत्तर देश की कचहरियों में फारसी अक्षर जारी रहेंगे गद्य और पद्य में फ़ारसी अरबी शब्द अवश्य आयेंगे।

पं० शिवनाथ शर्मा (जिनका लखनऊ में जन्म-ग्रहण करना व्यर्थ है) ३० मार्च १८८८ के हिंदोस्थान में लिखते हैं 'हरिश्चन्द्र के साथ ही ब्रजभाषा की समाप्ति बताना सर्वथा भ्रम है।' मेरी समझ में पाठक जी का मत बहुत उत्तम है। जैन मतावलंबी अभी तक हिंदुस्थान और एशिया के अन्य देशों में मौजूद हैं इससे हिंदू धर्म के इतिहास में जैन धर्म के बाद शंकराचार्य का Reformation हिंदू धर्म का नवीन काल नहीं माना जायगा ?[१]

(६)

हिंदोस्थान ता० ३ अप्रैल सन् १८८८ ई०

'सम्पादकीय टिप्पनी'।

खड़ी हिंदी की कविता पर झगड़ा।

पं० प्रतापनारायण मिश्र जी इस विषय को फिर उठाते हैं और २१ मार्च के हिंदोस्थान में और अपने ब्राह्मण में कुछ कह जाते हैं, मिश्र जी की लफ्ज़ों के लड़ाने और बातों के भिड़ाने में बड़ी प्रीति प्रतीत होती है, पर 'शास्त्रार्थ' 'तर्क प्रणाली' से आप चौंकते हैं। सो भी निरी, अर्थात् अमिश्र तर्क प्रणाली ! सच है मिश्र' 'अमिश्र' में क्यों बनने लगी ? मिश्र जी की 'काव्यरसिकता' केवल चित्त से संबंध रखती है। पर तौ भी मिश्र जी उसे चित्त के अंदर ही बंद नहीं रख सक्ते, तर्कवालों के सन्मुख छोड़ ही तो देते हैं। सर्कार साहब के

१—इस विषय की विशद समालोचना के लिये इस पुस्तक की भूमिका देखिए। —मु० मि०

मत से तर्क बिना चित्त के ही संभव है। क्या आश्चर्य है! सरकार 'निरंकुश कवियों' में भी तो हैं और निरंकुशता की ललित लता की आड़ में 'बेपर' की क्या, यदि बेसुर, बेसिर और बेपैर की 'उड़ावें' तो कोई रोकनेवाला नहीं—पर जो शास्त्रार्थ से ऐसा डर था तो उचित था कि मिश्र जी अपनी रसिकता और निरंकुशता दोनों को तर्क की चपेट से बचाने के लिये चित्त की कोठरी में मूंद रखते और बाहर भी न फटकने देते। पर अब क्या चारा है। हो गया सो हो गया। अब तो तर्क कर्कश कर से छुटकारा नहीं।

मिश्र जी जो यह आज्ञा करते हैं कि 'कविता चित्त पर असर न करे तो कविता काहे की' ठीक है, पर यह कैसे कहा जा सक्ता है कि खड़ी हिंदी की कविता इस सामर्थ से शून्य है। एक कोई खड़ी हिंदी कविता आप के श्री मुख से भी प्रशंसा पा चुकी है और आप समान सहृदयगण की हृदय ग्राहिणी हो 'चित्त पर असर' पहुँचा चुकी है—थोथे झगड़े और कोरी लफ्ज़ी लड़ाई में भला क्या भला होनेवाला है। हम आपकी छन्द रचना संबंधी युद्ध की मांग को हर्षपूर्वक स्वीकार करते हैं[1] और इस 'हिंदोस्थान' के रणखेत में संग्राम के हेतु उद्यत हैं पर याद रहे कि आप को भी ब्रजभाषा में जो छंद हम कहेंगे, बनाने पड़ेंगे, यद्यपि हमारा मत यह है कि जो छंद जिस भाषा में अच्छा बैठे उसी को उस भाषा के लिये उपयुक्त समझना चाहिये। आप की समझ में खड़ी हिंदी में २१ वा २२ से अधिक छंद नहीं आ सक्ते, और हम बीड़ा उठा कर अधिक नहीं तो २१ के ऊपर एक बिंदी लगाकर इस भाषा में छंद दिखला सक्ते हैं। यदि दोहे देखने हों नागरीदास का 'इश्क चमन' देखिए, चौपाई में दिखा दूंगा। सिवा इनके संस्कृत के और अंगरेजी के अनेकों छंद जिनका ब्रजभाषा में त्रिकाल में भी निर्वाह नहीं हो सक्ता, इसमें दिखलाये जायंगे। पहले तो ऋतु संहार का अनुवाद जो कल के हिंदोस्थान में छापा जायगा वंशस्थ और मालिनी वृत्त में पढ़िये और कृपा करके इसके प्रत्येक श्लोक को उसी के वृत्त में ब्रजभाषा में लिखकर दिखाइये तथा च खड़ी हिंदी के उस गीत को जो 'एक अनोखे सैलानी की अनोखी कहानी' से उद्धृत होकर ३ फरवरी के हिंदोस्थान में छपा है उसी छंद में ब्रजभाषा में कीजिये। संभव है आप कर सकें, पर उपयुक्त न होगा। इसी प्रकार खड़ी हिंदी में यद्यपि श्रम करने से चौपाई, सवैया, आदि छंद दिखलाये जा सक्ते हैं पर वे उतने अच्छे न लगेंगे जितने चौबोला, लावनी, दोहा, तोमर, पवंगम इत्यादि।

श्री हरिश्चंद्र जी के छोड़ने से क्या खड़ी हिंदी की कविता सदा सर्वदा के लिए सबके छोड़ने योग्य हो गई? क्या दूसरों की छोड़ी हुई बात को पूर्ण करने में हम लोग पापभागी हो सक्ते हैं? ऐसा प्राय: सदा से होता चला आया है कि जो काम एक से किसी कारण से छुट गया वा न हो सका उसे दूसरों ने पूरा किया।

'कवियों की निरंकुशता खड़ी बोली में नहीं रह सक्ती' वाह, खूब बोले! निरंकुशता क्या शब्द को सत्यानाश में मिलाने में होती है? निरंकुशता कथन की रीति से संबंध रखती है शब्दों के आकार में विकार लाना 'छंद रचना संबंधी अधिकार' में शामिल है सो खड़ी हिंदी को भी प्राप्त है, फिर हमें क्या पड़ी जो शब्दों की सूरत बिगाड़ें? 'आश्चर्य' की जगह 'अचरज'

१—'खड़ीबोली आन्दोलन' पृ० ३१ पंक्ति ३ देखिए। —भु० मि०

जो कि हिंदी का प्रकृत शब्द है हम बराबर लेंगे, पर जकार को द्वित्व करने की हमें आवश्यकता ही नहीं। 'प्रकृति' को हम 'प्रकृति' रक्खेंगे। यही तो ब्रजभाषा की अपेक्षा नवीन हिंदी में अधिक गुण है कि शब्दों को मनमाना आकार दे उनका अंग भंग नहीं करती। हमारे यहां के शब्द 'बहुरुपिया' बनना नहीं जानते। हां, कवि लोग 'अनोखा' को 'नोखा', 'यह' को 'य' इत्यादि पद संबंधी नियमों के अनुसार लिख सक्ते हैं।

'कवियों की जो भाषा मुद्दत से है उसे छोड़ वे दूसरी नहीं होते' पहले तो दूसरी लेने में वैसे भी कुछ पाप नहीं, पर जब आप के अनुसार कवि निरंकुश ठहरें तो उन्हें आप इस व्यवसाय में क्यों कर रोक सक्ते हैं।

'जो भाषा कविता के उपयुक्त है वह फेंक दी जाय' और खड़ी बोली ले ली जाय। मिश्र जी यों मत कहो, यों कहो कि ब्रजभाषा के रहते जिस्की कविता का मज़ा कि आप की (और और सैकड़ों की) ज़बान पर चढ़ा हुआ है खड़ी बोली में कविता न बनाओ क्योंकि वह ऐसी रसीली नहीं होती, पर यह कभी भूल से भी मत[1] बोलना कि खड़ी हिंदी कविता के उपयुक्त नहीं हैं।

'अधिकारी' स्त्रीलिंग में व्यवहृत होने पर आप चौंकिए न। नागरी के बड़े आचार्य भारतेंदु जी के लेखों को देखिए तो पाइएगा कि इसी साथ के अनेकों विशेषण स्त्रीलिंग शब्दों के साथ बर्त्ते गए हैं। पुरानी कवि वचन सुधा और हरिश्चंद्र चंद्रिका में भी ये अवश्य मिलेंगे।

ब्रजभाषा को एक ही ज़िला नहीं किंतु कई ज़िले बोलते हैं पर खड़ी बोली तो कई सूबों में व्यवहृत है और समझी जाती है। फिर ब्रजभाषा को अधिकतर अपढ़ गंवार ही बोलने में लाते हैं। पर खड़ी हिंदी सुशिक्षितों के बोलने और लिखने दोनों में आती है। अथच ब्रजभाषा सिवा कविता के किसी और मसरफ़ की नहीं; पर खड़ी हिंदी हमको अनंत लाभ पहुँचाती है।

झूठ मूठ के परिरक्षण से आग्रह से तात्पर्य है। जो परिरक्षण की चिंता झूठ मूठ है तो ब्रजभाषा के पक्ष वाले[2] खड़ी हिंदी की कविता पर कुढ़ते क्यों है? आप को भी तो उसके 'फेंक दी जाने' का डर है।

यदि खड़ी हिंदी कविता के लिए रूखी है तो उस कवि की कवित्व शक्ति परम सराहनीय है जो ऐसी भाषा में भी अपनी चतुराई से सरसता दरसा दे। आप जानते है कि ब्रजभाषा की कविता के शब्द एक देशीय नहीं है, न उसकी महिमा एक ही समय में वा एक ही के द्वारा प्रतिष्ठित हुई है। इसी प्रकार खड़ी हिंदी की कविता के विषय में भी समझना चाहिए—ब्र० भा० में मधुरता सहज गुण है पर तारीफ कवि की तभी है जब एक खड़ी बोली में भी यह गुण ले आवे।

१—मूल में 'मत' शब्द नहीं है परंतु बिना इस शब्द के अर्थ नहीं होता है इसलिए मैंने यहाँ उसे रख दिया है। —मु० मि०

२—इस प्रकार 'ब्रजभाषा के पक्षवाले' लोगों से अपने को पृथक करने पर भी पाठक जी ने इस विवाद के बाद बिलकुल पद्य ब्रजभाषा में रचा। तेरह वर्ष बीत गए, पर आज तक उन्होंने कोई खड़ी बोली पद्य नहीं रचा।
—मु० मि०

गद्य और पद्य की भिन्न २ भाषा होना हमारे लिए उतना अहंकार का विषय नहीं है जितना लज्जा और उपहास का है कि जिस भाषा में हम गद्य लिखते हैं उसमें पद्य नहीं लिख सक्ते। हमारे यहाँ भेद और फूट और ही सैकड़ों बातों में यथेष्ट विद्यमान है, भाषा में उस सत्यानाशी विभेद की क्या आवश्यकता है? अरे भाई, दो एक बातों में तो एकता को अधिकार दो। जिस खड़ी हिंदी के द्वारा आज कल एकता आदि अपनी और अपनों की भलाई करने की आशा रखते हो उसे कविता के सुख से बंचित न रक्खो। उसका मुख देखो, फिर अपना मुख देखो, और उसे विमुख न होने दो।

सूरसागर आदि में खड़ी बोली के कई एक शब्द पाये जाने से क्या यह पाया जाता है कि उस समय में आधुनिक रूप को सर्व गुण संपन्न खड़ी हिंदी हिमालय से विंध्याचल तक और पानीपत से पटने तक उस प्रकार से प्रचलित थी जैसे अब है? फिर यह कौन कहता है कि खड़ी बोली का एक एक अक्षर नवीन है? उसमें सैकड़ों वर्ष पुराने बहुत सैकड़ों शब्द बर्ते जाते हैं। और भी यदि सूरसागर आदि के समय में खड़ी बोली प्रचलित होती तो उस समय का यदि पद्य नहीं तो गद्य तो कोई अवश्य देखने में आता। और ऐसा क्यों होता कि जो गद्य उस समय का पाया जाता है वह उसी टूटी फूटी व्याकरण की रीति से रहित भाषा में देखने में आता है जिसका अधिक भाग ब्रजभाषा के पद्य में व्यवहृत है?

'बुड्ढी नायका' से हमारा तात्पर्य वृद्धावस्थाजन्य नायकात्वाऽभाव ही से था। यदि कविता भगवती का रूप है तो उसमें वृद्धत्व दिखाना कोई निंदा वा गाली नहीं है क्योंकि वृद्धत्व बड़प्पन का द्योतक है।

जैसे हिंदी का गुण गौरव आप को थोड़े ही दिनों से ज्ञात हुआ है उसी तरह उसकी कविता का गौरव भी धीरे धीरे समझ में आवेगा। ज़रा सबर कीजिये, उतावले न हूजिये।

'कंकड़ पत्थर डालने' के सिवा यदि आप खड़ी हिंदी की कविता के राज-मार्ग की रचना में और कुछ नहीं कर सक्ते, खैर यही किये जाइये, हमारा तो इससे भी खूब मतलब निकलेगा। सामान्य सड़क भी तो बिना हजारों कंकड़ पत्थर डालनेवालों के जल्दी नहीं बन सकी। ये नहीं तो इंजिनियरों का काम ही कैसे चले।

आपने अपने को 'छोटा' कहा था, हमने आपका बड़प्पन देख बड़ा कह दिया, पर आप अप्रसन्न हो गये, और हमारी सीधी सादी सूझ को उलटा समझ काकोक्ति (काकूक्ति भी नहीं!) कहने लगे तो हमारा असौभाग्य है। खैर आप बड़े से 'छोटे' फिर हो जाइये और हमें क्षमा कीजिये।

मिश्र जी एक बात तुम्हारे मुखारविंद से ठीक उच्चरित हुई है। हम उसे मानते हैं और उसके कारण हम आप को भी मानते हैं। अर्थात् यह कि 'अच्छे कवि जिस भाषा का चाहें गौरव बढ़ा सक्ते हैं।' बस इस पर हम भी 'आमी' कहके झगड़ा समाप्त करते हैं—पर हां आप की 'खीर' और रह गयी, उस पर भी आप को कुछ सलाह देनी चाहिये। यानी 'पकी पकाई खीर तो आप को मिलती ही है' उसमें किसी बात की 'मीन मेख' नहीं, पर जो

श्रम करके नये चावलों की खीर पकाओ तो शाबासी पाओ यों खाली 'पोला' पुलाव सभी कोई पका सक्ता है।[१]

उधर गोस्वामी जी झगड़ा निबटाने को एक 'कविता विचारिणी सभा' का प्रस्ताव करते हैं। खड़ी हिंदी पद्य के पक्षवालों को यह अच्छी तरह स्वीकृत है। पर पहले यह तो सोच लेना चाहिये कि सभा का परिणाम क्या होगा। निस्संदेह सभा इतना कह सकेगी और निश्चित भी कर सकेगी कि अमुक भाषा अमुक भाषा से अधिक मीठी है। पर यह सहस्र सभाओं की सामर्थ नहीं कि किसी भाषा में कविता बनने का निषेध कर सके और लोगों की प्रकृति प्रेरित प्रवृत्ति को रोक सके। सभा की क्या आवश्यकता है, हम खड़ी हिंदी की कविता की तारीफ करना लीजिये आप ही के कहने से बंद किये देते हैं। आपकी समझ में खड़ी हिंदी मधुर कविता के उपयुक्त नहीं है। न सही। हमारी समझ में तो है। पर कोई यह न समझे कि सभा के प्रस्ताव से डर कर हम ऐसा कहते हैं। यह तो केवल प्रस्ताव पर हमने अपना मत प्रकाश कर दिया है।

ऋतुसंहार

संस्कृत से पं० श्रीधर पाठक द्वारा अनुवादित

ग्रीष्म वर्णन

वंशस्थ वृत्त

प्रचण्ड है सूर्य, सुहाय चंद्रमा, चुका रहै नीर सदा के नहान से।
भली लगें सांझ अनंग शान्तसा, अहो प्रिये आ पहुँचा निदाघ ये।
कभी निशा चन्द उजास से धुली, कभी अनूठे जल यंत्र के भवन।
कभी मणों चन्दन लेप ही कभी, करें प्रिये सेवन ग्रीष्म में सुजन।
सुगन्ध छिड़काव सुहावनी छतें, मिला जों प्यारी मुख श्वास से मधू।
अनंग उत्पादक राग बैन संग, रमे हैं कामी जन आधी रात पर।
नितम्ब के कूल दुकूल तागड़ी, कुचों पै चन्दन युत हार की लड़ी।
सुगन्ध धोई अलकावली बड़ी, इन्ही से हर्ती प्रिय ताप, नागरी।
पगों में अत्यंत महावरी रंगी, तिन्हों में नूपुर पहने नितम्बिनी।
करे हैं पद-पद पै मराल की सी धुन, मरे हैं लोगों के नये मदन से मन।
कुचों पै जो चन्दन पंक है लिपी, पड़े जो भारी हिम स्वेत हार है।
नितम्ब भागों पै सुबर्न कर्धनी, उछाह किसके मन में करें नहीं।

१—यहीं तक का लेख ता० ३री अप्रैल सन् १८८८ ई० के हिंदोस्थान में छपा था, इसके आगे का लेख ता० ४थी अप्रैल सन् १८८८ ई० के हिंदोस्थान में छपा था। —मु० मि०

पसीना आवे जब अंग में अधिक, धरे हैं भारी कपड़े उतार कर ।
कुचों पै ऊँचे कुचवाली कामनी, करे हैं धारन अब अल्प वस्त्र है ।
चले हैं चन्दन में भिगोइ पंखियां, कुचों के मडल पै मिली जो माल है ।
सुमन्द वीणा स्वर सूक्ष्म गान से, जगावे सोता नृप मानो काम है ।
सुपेद धामों पै निसा विषै खुली, मुखाली सोती सुमुखी जो सुन्दरी ।
बिलोकि उनके मुखचन्द्र चन्द्रमा, लजा के पीला पड़ता है प्रात की ।
असह्य आंधी उड़ धूल छार ही, कड़ी पड़ै धूप बड़ी तपै मही ।
उसे पियारी के बिछोह से जले, सकें प्रवासी जन देख भी नहीं ।
प्रचण्ड घामों से तपे हुये हिरन, तृषा से सूखे हैं जिन्हों के तालुए ।
निरख के काजल के समान ब्योम को, दिशा में उसको जलजान दौड़ते ।
रसीली मुस्कान हसन कटाक्ष से, प्रवासियों के मन में मनोज की ।
उमंग यों शीघ्र करें विलासिनी, सलोनी सांझै शशि शोभिनी यथा ।
सताया सूरज के कठोर तेज से, जला मरे है चलने से रेत में ।
फिरे है औंधे मुंह हाफता फणी, थमे है जा करके मयूर के तले ।
बड़ी तृषा से बलहीन केशरी, फटा हुआ मूं, छिन छिन पै हांफता ।
लटक रही जीभ, थरक रहीं जटा, निकट के गज पर भी चलावे हाथना ।
सुखाये कण्ठों से तुषार अम्बु पी, सताये सूरज की किरन से जब गये ।
बढ़ी पिपासा जल चाहने लगे, डरे है सिहों से मतंग भी न वे ।
जली हुई आग समान सूर्य की, मरीचियों से घबराये मोर जो ।
समीप बैठे को हने न सांप को, पंखों में जिनके है धसाया जिसने फन ।
जमा जो मोथा है सुखाने ताल में, विशाल डाढ़ों से उसे हैं खोदते ।
तपे हुए दारुण धूप से मनो, धसेंगे ये शूकर भूमि के तले ।
जलन से तीखी से प्रचण्ड भानु की, उछल के मेंड़क निकले हैं कीच से ।
भुजंग प्यासे के पहुँच समीप सो, धसे है उसके फन छत्र के तले ।
उखड़ गये जिनके मृणाल जाल हैं, तड़प रहीं मीन उड़े मराल हैं ।
भिड़े परस्पर गज जो विशाल है, इसी से कीचड़ से मलीन ताल है ।
गिराते जावें मुख में से झाग को, उठाये सिर जीभ निकाले लाल हैं ।
पिलासे भैंसों के समूह खोह से, निरखते पानी निकले बेहाल हैं ।

मालिनी वृत्त

जल जलतृण सूखे दाह दावा नली से ।
प्रबल पवन फूंके शुष्क पत्ते पड़े हैं ।
दिन कर जलने से क्षीण जल सब दिशा में ।
बन थल चढ़ ऊंचे देखते डर लगे हैं ॥१॥

सकल खग ससकते, शुष्क वृक्षों पै बैठे ।
मृग गण घुस जाते पर्वती कुञ्ज थल में ।
बिकल अति पिलासी नील गायें फिरे हैं ।
शरभ सरल पक्षी ले रहा जल कुयें से ॥२॥

खिलित नव कुसूमी रंग सिन्दूर का सा ।
अति पवन चले से वेग जिसका बढ़ा है ।
निज तट विटपों को चोटियों से लिपट के ।
विकट प्रबल ज्वाला दाह करती फिरै है ॥३॥

भभक भभक बलती पर्वतों की गुफों में ।
फट फट फट करती फोड़ती बांस सूखे ।
झटपट तिनकों में फैलती वृद्धि पाकर ।
मृग गण अकुलाती आग बन की लगे से ॥४॥

अधिक अति दिखाती सेमलों के बनों में ।
कनक सदृश गोरी पेड़ के खोखलों में ।
दल फल सब ऊंचे पादपों को गिराती ।
बिकल पवन प्रेरी आग सारे भ्रमे है ॥५॥

गज, मृगपति, नीली गाय, अग्नि से तप कर ।
सुहृद सम इकट्ठे छोड़ के बैर सारा ।
अधिक तच गई जो उन गुफों से निकल कर ।
सुबिपुल तटवाली शीघ्र नदियों को आते ॥६॥

सरसिज जल छाये गंध 'पाटल' की प्यारी ।
सुखद सलिल सेवन, हार, सुन्दर उज्यारी ।
सुललित पद गाते रात में साथ नारी ।
सुबिमल महलों पर ग्रीष्म बीतै सुखारी ॥७॥

इति ग्रीष्म वर्णन ।

सूचना

यह अनुवाद मेरे पत्र के संबंध में केवल उदाहरण के लिये दिया गया है और अधिकांश में शब्दानुसार Literal होने के कारण संभव है कि पाठकों को कहीं रूखा जान पड़ेगा और खड़ी हिंदी कविता के विरोधियों को दोष लिये हुए दृष्टि आवेगा पर यदि वे कृपा कर इसे मूल से मिला के पढ़ेंगे तो आशा है कि दोष निरीक्षण का अवसर न रहेगा। यह संस्कृत के छंदों में है अतएव इसमें 'तुक' का ध्यान छोड़ दिया गया है। —श्री० पा०

(१०)

हिन्दोस्थान ता० ११ अप्रैल सन् १८८८ ई०

सम्पादकीय टिप्पनी।

"खड़ी बोली की कविता।"

पंडित राधाचरण गोस्वामी जी लिखते हैं—

"१—खड़ी बोली की कविता के विचार के लिये जो मैंने एक सभा करने का प्रस्ताव किया था, वह किसी खड़ी बोली के पक्षपाती ने अनुमोदन नहीं किया।[१] इसके प्रधान उद्योगी बाबू अयोध्या प्रसाद जी कहते हैं कि अभी सभा नहीं हो सकी; मैं अपनी हजार पांच सौ पुस्तकें पहिले पश्चिमोत्तर देश में विद्वानों को बांट दूं, तब सभा हो; तब इसके सपक्ष होंगे। यह केवल बहाना मात्र है। विद्वानों को यह कुछ कठिन समस्या नहीं है, जो बिना पुस्तक के निर्णय न कर सकें।

२—बाबू अयोध्या प्रसाद जी को इस विषय की कई पुस्तकें मैंने बहुत ध्यान से देखीं। बाबू साहब का उद्देश्य और मत यह है कि गद्य भाषा तो ठीक काशी पत्रिका की सी उत्तम है, संस्कृती हिंदी हिंदी नहीं हो सक्ती—और पद्य भी ब्रजभाषा सदृश संस्कृत मिश्र उत्तम नहीं है, केवल 'हिन्दुस्थानी' पद्य उत्तम है। सारांश यह कि संस्कृत शब्द चाहे गद्य चाहे पद्य कहीं हिंदी में न रहें। इनकी यह चेष्टा हिंदी का सर्वनाश करने के लिये है। बाबू साहब अनभिज्ञ अंगरेज, और बंगालियों की पुस्तकें दे देकर चाहें जितने लम्बे लम्बे 'सर्टिफिकेट' ले लें, हिंदी के प्रकृत विद्वान इस बात का कभी अनुमोदन न करेंगे।

३—पंडित श्रीधर पाठक आदि दूसरा राग आलापते हैं। यह खड़ी बोली की कविता को हिंदी में प्रधान, और ब्रजभाषा का गौण क्या परदेसी भाषा समझकर निकालना चाहते हैं। इनको समझना चाहिये कि खड़ी बोली जिसपर आपको इतना अभिमान है, इसकी उत्पत्ति कहां से हुई? आगरा दिल्ली जो इसका मुख्य जन्म स्थान है, उसकी प्रकृत भाषा ब्रजभाषा ही है। उसमें जब तुर्की, अरब, मुगल आदि आकर बसे और उनको यहां की भाषा बोलना पड़ा तो कुछ स्वर भेद, और उच्चारण की अशुद्धता से उसका रूप बदला। समय के फेर फार और प्रचार से (बोलचाल की ब्रजभाषा का) यह रूप हो गया। पर कविता की भाषा नहीं बिगड़ी, एक रूप रही आई[२]। और अब हमारे मित्र उस

१—गोस्वामी जी के 'कविता विचारिणी सभा' संबंधीय प्रस्ताव के विषय में 'खड़ी बोली के पक्षपाती' पं० श्रीधर पाठक जी ने अपना मत ता० ४ अप्रैल के हिंदोस्थान में प्रकाशित किया था (खड़ी बोली आंदोलन पृ० ५५ पंक्ति ६ देखिए) उस लेख से गोस्वामी जी, न मालूम क्यों, अपनी अनभिज्ञता प्रगट करते हैं।

—मु० मि०

२—खड़ी बोली की उत्पत्ति और उसमें पद्य में ब्रजभाषा लिखे जाने के विषय में 'खड़ी बोली आंदोलन, की भूमिका देखिए। पाठकों को देखना चाहिये कि यहां गोस्वामी जी पद्य के ब्रजभाषा से और बोलचाल के ब्रजभाषा से अंतर बतलाते हैं और इसी सहारे दिल्ली आगरे की बोली को ब्रजभाषा कहते हैं। यदि दिल्ली आगरे की बोली को ब्रजभाषा कहने के लिए गोस्वामी जी ने कसम खाया हो तो इतना तो शायद उनको अवश्य कबूल करना पड़ेगा कि ब्रज की ब्रजभाषा से दिल्ली आगरे की ब्रजभाषा विलक्षण है। —मु० मि०

कविता की भाषा का भी रूप बदलना चाहते हैं। बिना विशेष आवश्यकता और बिना विशेष दोष के ऐसा करना परम अनुचित है। जैसा गद्य में आपका राज्य है वैसा ही पद्य में कवि लोगों का राज्य है। कम से कम इस समय दस पाँच हजार कवि इस भाषा के हैं।[१] आपका क्या ऐसा बड़ा प्रमाण है कि जिससे आप कविता की भाषा को हिंदी से बाहर करते हैं? आप दो चार पुरुषों के कहने से हमारी भाषा की कविता का राज्य नहीं बिलट सक्ता।[२] आप स्वतंत्र होकर नई भाषा, नये अक्षर बना लें, कौन निषेध करता है? आप खड़ी बोली में कविता करें कौन हाथ पकड़ता है? पर आप ब्रजभाषा की कविता को जो इसकी मूल भाषा है, उसे हिंदी के बाहर करना चाहते हैं परम अन्याय है। हम इस भाषा विषयक फूट को कभी अच्छी नहीं कहते, पर यह फूट डाली किसने है।[३]

४—जो हो, हम इस विषय में एक बात से बहुत डरते और क्षमा चाहते हैं कि हिंदी की उन्नति चाहनेवालों में परस्पर विरोध होना उचित नहीं। इस झगड़े का आगे बढ़ना हानिप्रद है। आशा है कि संपादक हिंदोस्थान इसका प्रबंध करेंगे।"

इस विवादित विषय में हम दूसरे दिन अपना मत प्रकाश करेंगे।

— सम्पादक हिंदोस्थान

(११)

हिंदोस्थान १२ अप्रैल सन् १८८८ ई०

प्रेरित पत्र।

"ब्रजभाषा और नया पद्य"।

खड़ी बोली ब्रजभाषा की बराबरी नहीं कर सकती यह स्वयंसिद्ध हो चुका है। इसमें किसी ज्यादा प्रमाण की आवश्यकता नहीं। इसका विषय वही अच्छे प्रकार समझ सकता है जो कवि हो अथवा कविता से कुछ रिश्ता रखता हो। ब्रजभाषा और खड़े पद्य के रूपों ही में भेद

१—गोस्वामी जी पाठक जी को तो कवि नहीं कहते, पर दस हजार ब्रजभाषा कवियों का वर्तमान रहना बताते हैं। दस हजार कवि केवल गोस्वामी जी के मस्तिष्क में बास करते हैं—हिंदुस्थान में तो इनको जगह नहीं हैं। —मु० मि०

२—यह साफ नहीं मालूम हुआ कि यहां गोस्वामी जी ने 'हमारी भाषा' में 'हमारी' शब्द किस हैसियत से लिखा है। यदि ब्रजवासी होने के कारण ब्रजभाषा को 'हमारी भाषा' कहते हैं तो वह भाषा उनको मुबारक हो। उनके यहां उस भाषा का राज अटल रहेगा, कोई बिलटा नहीं सकेगा। यदि हिंदी वेत्ता होने के कारण हिंदी को 'हमारी भाषा' कहते हैं तो हिंदी में भी कविता रहेगी, उसका राज्य नहीं बिलट सक्ता, पर हिंदी की कविता की भाषा ब्रज की भाषा नहीं रहेगी, हिंदी भाषा (खड़ी बोली) रहेगी। —मु० मि०

३—पं० श्रीधर पाठक जी ब्रजभाषा काव्य को हिंदी से निकालना नहीं चाहते हैं। उनका उद्देश्य ख० बो० आ० पृ० २३ पंक्ति ३ में देखिए। पाठक जी सांप भी मारा चाहते हैं और लाठी भी बचाया चाहते हैं। —मु० मि०

बाबू अयोध्या प्रसाद कहते हैं कि यह फूट डाली लल्लू लाल जी ने! खड़ी बोली पद्य भाग २ भूमिका पृ० ७ और ८ देखिए। —मु० मि०

नहीं है, बरन् शब्द माधुरी में जमीन आसमान का फर्क है। खड़ी बोली के काव्य के वकील चाहें जो कहें पर दो बातों के सिवा उनकी सब बेसिर पैर की है। एक तो उनका यह उज्र है—लोग व्रजभाषा को समझते नहीं ; दूसरे—वे वाङ्गभाषा के समान हिंदी का गद्य और पद्य समान भाषा में चाहते हैं।

समझने के लिये, सिवा इसके कि वे पढ़ें और समझने का उद्योग करें, अन्य कोई सुलभ पद्धति न हुई है न होगी। यदि इसके लिए खड़ी बोली की ट्रेनें चलाई जायंगी, तो निस्संदेह वे समझ तो लेंगे परंतु कविता निरी फीकी, और निरस हो जायगी क्योंकि जब हिंदी के रसिक उस अमृतमय स्वादु से वाकिफ बैठे हैं, जिसकी जड़ देव बानी से विकसित हुई है, और जो कवियों की सरसता से पूरित लहलहाती लता के समान आनंद वर्षा रही है[1] तब वे कैसे खड़ी बोली के खड़े....।[2]

(४) Original विषय लिखने की शक्ति मुझ में अत्यंत ही अल्प है। अतएव किसी अंगरेजी पुस्तक का अनुवाद करना हो तो मुझे Suggest कीजिये, मैं अनुवाद करूँ। किसी पुस्तक की समालोचना करानी हो तो वह भी मैं कर सकता हूँ।

पाठक जी ने जो Period स्थिर किये हैं, हमारे जानते भी वह ठीक नहीं मालूम होते। आपने Period जिस प्रकार का स्थिर किया है, उसमें एक Period मैं और जोड़ना चाहता हूँ। अर्थात् वह Period कि जब उत्तरी हिंदुस्तान की भाषाएं संस्कृत के संस्कार को त्याग कर प्राकृत रूप में आ गई। चंद की कविता में यद्यपि प्राकृत भाषा नहीं है, परंतु सांचा वही है। हमारे निर्दिष्ट उपरोक्त Period और आपके Hindu Period का पृथ्वीराज रायसा मानो Joining link है।

पाठक जी के मस्तिष्क में कविता की ज्योति है, अन्वेषण और अनुसंधान की खुजलाहट नहीं है। Period स्थिर करने को जो आपने उनको लिखा है उसके उत्तर में कुछ चिड़चिड़ाहट की झलक मिश्र जी ने ठीक लिखा है।[3] छोड़ दीजिए ; उन्हें कविता बनाने दीजिये। परंतु उन्हें चुप चाप बैठने न दीजिये, साहित्य भंडार में कुछ संचय करते जायें। खड़ी बोली के भला पचास साठ काव्य भी तो हो जायें। उनकी कविताओं का कोई work छपा है या नहीं। छपा हो तो उसका ठिकाना पता लिखियेगा।

मतभेद के लिए चिंता क्या है? पाठक जी के और आप के कालावधारण में भेद पड़ता है तो क्षति क्या है? संसार में किसी दो पदार्थों की एक सी आकृति नहीं देखी जाती।

१—इस वाक्य का अर्थ जब तक कोई ब्रजभाषा प्रेमी नहीं समझावेगा मेरे समझ में नहीं आवेगा। देव वाणी से जड़ के बिकसने और लहलही लता से वर्षा के होने का स्वादु केवल लेखक महाशय को मिला होगा। —भु० मि०

२—इसके आगे पुस्तक का पृष्ठ गायब है।

मुद्रित-पुस्तक की पृ० सं० १—६४ तक।—संपादक

३—यह इशारा पं० श्रीधर पाठक के ५-५-०१ के पत्र की ओर है जो इस पुस्तक के २१ पृष्ठ में छपा है और जिसके विषय में पं० भुवनेश्वर मिश्र दरभंगा निवासी ने यों लिखा था। This reply is evasive bordering on defiance.

इसी प्रकार मानसिक भाव के उदगार सब मनुष्यों के एक से नहीं हो सकते। मतभेद हो तो हो, मतान्तर नहीं हो। उन्होंने जैसा सोचा लिखा। आप जैसा सोचते हैं, आप लिखिये। विचार का भार सर्व साधारण पर रहा।

समालोचना उन्नति की पहली सीढ़ी है। जिस देश में लेखकों को समालोचकों का भय नहीं, वहाँ लेखक निरंकुश रहते हैं, अपने लेखों को सर्वांग सुंदर बनाने का पूरा उद्योग नहीं करते। संप्रति हिंदी में भी समालोचनायें होती हैं, परंतु अधिकतर इनमें से चाहे गाली गलोज की ओर झुकी रहती है, या निरी खुशामद की ओर। प्रकृत और वास्तविक समालोचना बिरल है। इस समय हिंदी में एक ऐसा पत्र अत्यावश्यक है, जिसमें हिंदी संबंधी सब विषयों की समालोचना रहा करे। हमारे जानते खड़ी बोली आन्दोलन इसी का एक अंग है। हिंदी का इतिहास भी उसी का अंग हो सकता है। "समालोचक" या और कोई अच्छा नाम रखकर मासिक या त्रैमासिक कोई पत्र निकाला जाये तो हिंदी का बड़ा उपकार हो सकता है। बिकरी भी इसकी अच्छी हो सकती है। अपनी अपनी रुचिवाली पुस्तकों की समालोचना पक्ष विपक्ष दोनों ओर के लोग देखना चाहेंगे। स्कूलों में और कचहरियों में प्रचलित हिंदी के लेख और वक्तृताओं की समालोचना भी उसमें हुआ करेगी तो यह पत्र वहाँ भी ग्राह्य होगा। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की 'हिन्दी'[१] नाम एक कागज की दो प्रतियाँ कल पहुँची। यह भी उपरोक्त पत्र के योग्य था।

"काला काला एक न छोड़ूँगा" वाला परिहास हिंदी की आधुनिक अवस्था के लिए बहुत ही उपयुक्त (मौजूं) है। मैं तो समझता हूँ कि नागरी में क्या वरण कैथी में भी लिखी कचहरी की भाषा को 'काला काला' समझ कर न छोड़ा जाय। उसको भी हमलोग हिंदी में लपेट लें, और उसमें फारसी, अरबी शब्दों की बहुतायत का दोष दूर करने का पूरा पूरा उद्योग करें। आप तो कचहरी में हैं, अंततः अपने जिले से इस दोष को दूर करने का बहुत कुछ अवसर आपको है।

और भी बहुत कुछ लिखना चाहता था, परंतु इस समय हड़बड़ी में हूँ, इसलिए भला बुरा उलटा पुलटा जैसे जैसे भाव उपस्थित हुए, लिख कर भेजता हूँ।

केशवराम

My dear B. A. P.

As regards your agitation for poetry in ख० हि० I was a boy in school in 1877 and knew nothing of what was being done in regard to हिंदी or खड़ी हिंदी. All credit however due to you for the agitation. I first read of ख० हि० question in भारतमित्र in 1880 or there about.

Yours sincerely
Sd. Sridhar Pathak

१—"नागरी प्रचारिणी सभा की हिंदी" शीर्षक लेख २१-५-१६०१ को छपा कर हिंदी के विद्वानों के पास भेज दिया गया था।

The Behar times April 23, 1901

Babu Ayodhya Prasad of Muzafferpur who was so very well known some ten years ago in connection with his "Kadi Boli Padya" which was published under the editorship of late Mr. Frederic Pincott in London, has again reappeared in his old age. He has handed over the complete file of Kadi Boli controversy to Pandit Bhuvaneshwar Misra of Darbhanga who has edited them and is about to publish them in monthly instalments. Some advance pages have reached me, and I am bound to say that the whole controversy when carefully published, as will appear to have begun in pages before me would indeed be an indispensible guide and materials to draw upon for the future historian of the Hindi literature. That Babu Ayodhya Prasad has rendered substantial services to the cause of Hindi reform especially in the domain of criticism there is no one to question but the fact that his personality has never been fully appreciated owing to the want of a better understanding of his merits and advanced ideas, and that his services are always ignored by those writers who ought to have known him sufficiently well are matters for regret.

(The Behar times, May 21-1901)

Literary notes and reviews

By G. P. Varma

Special for the Behar times

Khadi Boli Controversy

The Khadi Boli controversy is again looming in the eastern hemisphere with redoubled brilliance. The light bringer this time again is Babu Ayodhya Prasad, and the charioteer "Aruna" is Pandit Bhuvaneshwar Misra of Darbhanga. Neither the one, nor the other is unknown to the Hindi world, and regard being had to their devotion

to the work, it gives no room to doubt that their achievements would be indeed epoch making.

In the advanced sheets that have reached me, I find at one place the proposed classification of Hindi literature into different periods. This question is an important one ; and it is one which should engage the attention of all literary men interested in the development and culture of the Vernaculars of upper India. The classification or to speak more logically, the division of the Hindi literature into different periods must be based on a consistent and natural basis. Artificial, arbitrary and capricious division is always misleading and never correct. There must be nothing of the nature of dogmatism in division and classification. There are two proposals before us. One is tendered by Pandit Sridhar Pathak of Agra, and the other by Babu Ayodhya Prasad of Muzafferpur. Babu Ayodhya Prasad's idea of division is more natural, more significant and more comprehensive than that of the Pandit of Agra. Babu Ayodhya Prasad has divided Hindi into three natural periods when Hindu, Mohammedan and English sovereigns respectively occupied the throne of India, and commanded the current of language; again he has sub-divided each period into different sub-periods, and classified each period into different groups.

I am however not desirous to subscribe my humble weight of authority upon any proposal until the question is thoroughly discussed by the living men of letters is our land and I call upon my brother of Benares who leads the Nagri Sabha and edits that well known intelligent and undoubtedly useful magazine Saraswati of Allahabad to initiate this eventful discussion—a discussion destined to perpetuate both Babu Shyamsunder Dass and Pandit Bhuvanesh Misra, not to speak of Babu Ayodhya Parasad and Pandit Sridhar Pathak.

नोटिस

सप्तम एडवर्ड की जय !

"जो जीते सो खेले फाग,
जो मरे सो लेखा लाग[१] ॥ (ब्रजभाषा)

नये महाराज सप्तम एडवर्ड के राज्यारंभ से ही खड़ी बोली गद्य के साथ ब्रजभाषा कविता का पिंड छोड़ देना, खड़ी बोली के प्रेमियों का विचार है ।

नये विक्रमाब्द से 'खड़ी बोली' नाम का मासिक पत्र निकलेगा । पंडित श्रीधर पाठक और बाबू अयोध्याप्रसाद सर्कारी नौकर हैं इसलिये इस पत्र के संपादक नहीं हो सकते। पंडित भुवनेश्वर मिश्र (जो चंपारण चंद्रिका के संपादक थे) इस पत्र के एडिटर होंगे। जो गोल (लोग) इस पत्र की सहायता—लेख से वा द्रव्य से किया चाहें मुझ से पत्र व्यवहार करें !

सी. युद्ध बिक्रमराय
सेक्रेटरी
इंडियन वर्नाक्यूलर इंस्टीट्यूट
मोजफ्फरपुर

भारतमित्र

शनिवार ता० १६ मार्च १९०१ ई०

एक बहुत ही सड़े गुलाबी कागज पर अत्यंत निकम्मे टाइप और बड़ी भारी भद्दी भाषा में एक नोटिस निकला है। नोटिस का जन्मस्थान 'मोदफ्फरपुर' है। यह नोटिस हिंदी से ब्रजभाषा का पिंड छुड़ाने के लिये और खड़ी बोली बोलने के लिये निकला है। जिस काम के लिये ऐसा किमाकार नोटिस निकला है उसको सिद्धि में देरी ही क्या है ? अब ब्रजवासी भी ब्रजभाषा छोड़ देंगे। जिस दूकान में यह कागज मौजूद था और जिस छापे में यह छपा है वह दोनों सही सलामत रहे।

●

१—ब्रजभाषा कविता के पक्षपाती और खड़ी बोली पद्य के विरोधी पंडित प्रतापनारायण मिश्र अब नहीं हैं परंतु काशी में खड़ी बोली कविता के विरोधी वो सर्माय दोनों पक्ष के लोग हैं। पं० श्रीधर पाठक खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि (जिनसे पं० प्रतापनारायण मिश्र से विवाद हुआ था) सही सलामत हैं। ईश्वर उनको दीर्घायु करे हैं 'सरस्वती' के संपादक बाबू श्यामसुंदरदास बी. ए. चिरंजीव रहें।

खड़ी बोली का पद्य

१. मुन्शी-शैली
२. मौलवी-शैली
३. पण्डित-शैली
४. यूरेशियन शैली
५. यूरोपियन शैली



दो पैरों पर एक धड़, फिर सिर पाँच अनूप।
मुझ पँचरंगे पद्य का, देखो सुघर स्वरूप॥

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

[सरस्वती : सितम्बर, १९०२ ई०, पृ० २९२]

खड़ी बोली का पद्य[1]

Khari Boli Ka Padya

THE

POETICAL READER OF KHARI BOLI

Compiled by

AYODHYA PRASAD KHATRI

OF MUZUFFERPORE

Edited by

FREDERIC PINCOTT, M. R. A. S.

LONDON

W. H. ALLEN AND CO. 13 WATERLOO PLACE

1888

१—'खड़ी बोली का पद्य' नामक पुस्तक की दो प्रतियाँ हैं। सबसे प्राचीन मुजफ्फरपुर की प्रति है। लंदन की प्रति बाद की है। इस कारण मुजफ्फरपुर की प्रति से प्रतिलिपि की गई है। लंदन की प्रति में जहाँ-जहाँ मुजफ्फरपुर की प्रति से भेद है, उसे यथास्थान दर्शा दिया गया है।

—पुस्तकाध्यक्ष, आर्यभाषा-पुस्तकालय, काशी

खड़ी बोली का पद्य

Preface by the Editor

Among the events which signalized the year of the Queen's Jubilee, one, very remarkable, and far-reaching in its results, is the literary conception which gave rise to the present book. The tendency in all parts of the British Empire to draw together,—called into being by the outburst of loyalty which the Jubilee celebration evoked,—not unnaturally stimulated a spirit of union and goodwill among the inhabitants of the various provinces governed by Her Majesty the Queen. It was this spirit which urged the compiler of the present volume to indicate a most effective method by which the millions of Northern India might be brought into harmony, and unite their efforts for the spread of ennobling ideas, and for the purification of the mental and moral aspirations of Hindustan generally. The means proposed by the Compiler was the unification and modernization of the poetic medium of the country.

To the European mind there will, at the first blush, appear to be, in the means proposed, something singularly inadequate to the results anticipated; but a little explanation will show that the method was both reasonable and adequate. From Delhi to Benares, a distance of five hundred miles, and from the Himalaya mountains in the North to the Vindhya range towards the South, a vast population, numbering some sixty or seventy millions, speaking various dialects of the Hindi language, have been accustomed for generations to express their poetic conception in the dialect of Braj. This is a small district around Mathura, on the river Jamna,

famous as the birth-place of Krishna, the scene of his marvellous achievements, and the home of the Vaishnava faith. The sacred character of the spot caused the dialect of Braj to be employed in the literature of the North-West provinces; and nearly the whole of the literature formerly consisted of religious poems.

The extraordinary development which the Persianized form of Hindi (Known as Urdu or Hindustani) received by its adoption by the English as the official Language of India, caused a new style of literature to arise. This is in great part, of a practical and secular character ; and no inconsiderable portion of it has been in prose. The creation of what may be fairly called a new Language; for the natives of the North-West, of which it is supposed to be the vernacular, are compelled to learn it in school, like a foreign tongue.

Concurrently with the evolution of the Urdu Language, the non-Islamitic form of Hindi (which is technically known as Thenth Hindi, "pure Hindi", or Khari Boli "correct speech") has gradually developed into a flexible and expressive Language, the vesture of an extensive and scholarly Literature, now rapidly expanding. The progress of Khari-Boli has, hitherto, not been so marked as that of Urdu, because it has had to rely on its natural strength for any development it has attained. It has lacked the fostering hand of Government patronage, and has been generally neglected even by the natives themselves, as they esteem it the uncourtly idiom of the vulgar. During the last twenty years, however, it has steadily forced itself more and more into attention, as its flexibility, terseness, strength, vigour, and richness have become more clearly recognized by scholars.

While these two forms of the North-West Vernacular have been growing up for scholastic and practical purposes, the poetic form of speech, on the Urdu side, has approached closely to Persian models both in diction and structure, while, on the Indian side, it has been restricted to more indigenous

models, and to the dialect of Braj. It will be understood, from the fore-going remarks, that there are no less than five forms of language in the North-West of India :—

1. The cultivated Hindustani of Literature and of official life.

2. The poetic form of Urdu.
3. The cultivated Khari Boli Literature generally.
4. The poetic, or Braj, form of Hindi.
5. The colloquial forms of speech.

The peculiarity which emphasizes this diversity is the fact that forms Nos. 1 and 2 are generally written in Arabic characters ; forms Nos. 3 and 4 are written in Nagari characters and form No. 5, whenever consigned to writing at all, appears sometimes in Arabic letters, but generally in Nagari (or its derivative) characters.

These primary facts will enable the reader to realize the nature of the Literary revolution proposed by the compiler of the following work. His object is to induce his countrymen to abandon the use of the orchaic Braj dialect in their poetic effusions, and to persuade those who favour Urdu to use Nagari instead of Arabic letters for their verses. In fact, he proposes a compromise; one party is asked to abandon a cherished dialect of their language, and the other party to give up a customary method of writing it. By conforming to the compiler's suggestion, all parties meet on the common ground of the Khari Boli, or "correct speech", understood by all, and living, growing, and changing, with the daily requirements of advancing civilization. It is certainly a grand conception, worthy of the fullest realization; for it would unite the mental efforts of a great province, and remove the greatest obstacle to the intellectual development of Northern India.

It is gratifying to notice that the proposal has been favourably received, and although a considerable discussion

has been raised, and is still going on, between the more conservative leterati and the reformers, the absurdity of talking and writing prose in one language, and poetry in what is virtually another language, is beginning to make itself felt. The Khari Boli occupies the same position, with respect to its related dialects, which the London dialect occupies with respect to English provincial forms of speech; and a fair parallel to the practice now obtaining in India would be produced, if all our prose were as it now is, and all our verse were in, for instance, the Dorset dialect. The Dorset dialect is held, by some, to possess advantages over the Language which now predominates in England; and the Braj dialect is thought to be more musical than the Khari Boli. In England, where verse forms but a small proportion of the literature, the inconvenience of such an anomaly would be insignificant; compared with what it is in India, where the bulk of the Literature assumes a rythmical form. From such consideration, it becomes evident that Babu Ayodhya Prasad is endeavouring to confer a substantial boon on his countrymen, by inducing them to clothe all their ideas in one common form of speech, written in one common character.

In order to give his countrymen a clear idea of the object he is endeavouring to achieve, he has made a selection from the Khari Boli poems now in existence, from which the nature of such compositions can be fairly understood. The pieces selected are sufficiently good to establish the main contention of the compiler, viz., that Khari Boli is capable of the finest poetic effects, being equally adapted to didactic, pathetic, and other varieties of poetry. The pieces are, all of them, excellent in tone; and they manifest a love of nature, a reverence for sacred things and a desire for the best interests of humanity, the whole of which affords good evidence of the progress India is now making.

The specimens consist of poems by Raja Siva parsad, C. S. I., late member of the Legislative Council, a writer of acknowledged excellence and purity. These are in Thenth Hindi. The Munsi section contains verses of a patriotic character by Rai Mohanlal and by the famous Babu Harischandra. These are followed by a longer composition by Babu Mahesh Narayan, intitled "Sleep" the object of which is to awaken Indians from their torpor, and to induce them to engage in useful and patriotic undertakings; and this is succeeded by some flowing verses by a Mohammedan gentleman, Maulavi Iltaf Husain. The pandit-style of verse is exemplified in the compositions of Babu Lakshmi parsad, the second specimen of which is a translation of Goldsmith's "Hermit." This last is a very interesting production, and successfully Indianizes the story. Three hymns by Sri Satya Nand Agnihotri, and a few verses of the famous poet Chand Bardai, end the book.

The tone of all these compositions is unexceptionable; and this ground alone, the book deserves the hearty support of all those who desire to raise the character of Indian Literature. Another feature of interest in it lies in the fact that it is the first Hindi book ever printed in England for literary purposes. Grammars and Reading Books have been published on this side of the world for the sake of teaching the language; but this is the first time that a purely literary work in the Hindi Language has been brought out in this country. The object in view, in this incurring unusual expense and trouble, was to secure the beauty and accuracy of English printing in order that the Literary revolution proposed by the compiler should he presented to the public with becoming attractiveness. Messrs. W. H. Allen & Co., the printers, it will be seen, have done justice to this intention, and have executed the work in the most approved style.

In the hope that the book will prove useful, by improving the literature of Northern India, and by inclining its people to unite together in the prosecution of noble and patriotic enterprises. I have, as the Editor of this work, gladly seconded, to the best of my ability, its compiler's praise-worthy project.

—Frederic Pincott[1]

१—यह भूमिका लंदन की प्रति से ली गई है। —सं०

खड़ी बोली का पद्य

पहिला भाग

जिसको

अयोध्या प्रसाद खत्री

मुजफ्फरपुर निवासी ने संग्रह किया।

THE POETICAL READER
NO. 1
OF THE KHARI BOLI

Compiled by

AYODHYA PRASAD KHATRI

OF MUZAFFARPORE

Printed by Bishwa Nath Bhatt,

NARAYAN PRESS MOZUFFARPORE

१८८७ ई०

खड़ी बोली का पद्य

Introduction

In the year 1877 I had compiled a Hindi Grammar in the end of which I had given notice of writing a treatise on prosody in its 2nd volume. In my opinion the Verses in Bhasha and those in Hindi are not the same, and it was for this reason that before writing the above treatise, I publish a collection of the verses which I consider to have been written in Hindi.

Lallu Lal believed that he composed his Premsagar in Khari Boli and Raj Niti in Braj Bhasha. There is however no difference between the diction of the metrical compositions of *emsprargar* (Premsagar) and Rajnitis. Premsagar verses are decidedly in Braj Bhasha. I think the Hindi writers imitate the Language of Premsagar. Munshi Makhan Lal Khatri admits having written his Sukh Sagar in two different languages "Prose in Khari Boli and verses in Braj Bhasha.

To treat of Braj Bhasha verses in a Hindi Grammar and to introduce Bhasha words in Hindi as poetical Licence are to my thinking mistakes of the grammarians of the language. The single word "Bhasha" is also used to denote Braj Bhasha. It is wrong to consider the books written in Hindi as Bhasha composition and to designate Hindi grammars by such names as "Bhasha Chandroday", "Bhasha Tatwa Bodhni", "Bhasha Bhaskar", "Bhasha Prabhakar" &c.

Chand's Hindi I take to be the old Hindi and Khari Boli to be the Hindi of the modern time. In Chand's Hindi the word है is not traceable and the word हु तो has been made to do service for था .

I divide Khari Boli into five classes, namely, Theth Hindi, Pandit's Hindi, Munshi's Hindi, Moulvi's Hindi and Eurasian Hindi.

Theth Hindi is that which contains neither the words for (of) foreign origin nor the difficult Sanskrit words.

Pandit's Hindi remains interspersed with large Sanskrit words and few woru(d)s of foreign origin.

Munshi's Hindi is midway between the Pandits and Moulvi's Hindi and is styled by European Scholars as "Hindustani".

Popular Scientific terms, independent of Arabic, Sanskrit or any classic origin have also been coined in the Munshi's style by Rai Sohan Lall the late very able Head Master of Patana Normal School and now tanslator to the Government of Bengal, who may without opposition be styled as the father of the Munshi style. Thus the style is becoming complete Language in itself.

Maulvi's Hindi comprises a number of the Persian and Arabic words and its writers also call it by the name of Urdu.

In the Eurasian Hindi difficult English words are imported.

The Moulvies prefer the Persian Alphabets and the Europeans the English ones.

The Pandit's have not as yet attempted to write poetry in Khari Boli. Poets are to be met with only amongst the Moulvies. Its description of the several classes of verses in Moulvi's Hindi and of the Rhetoric will be found in a separate treatise.

The Munshies try to engraft English prosody into Hindi.

The word style has been used in this work for want of one of the same signification in Hindi. In Bengali it is called Dhara.

The Bengalies were also at their wits end as to what style to adopt in writing poetry. The Language of Kankan, Chandi, Vidyapati and other formative Bhashas. (?)[१]

The poetry of the Hindi Language should be remodelled in the same way as the Bengalee poetry.

Muzufferpore the 5th July 1887 } **Ayodhya Prasad**

OPINIONS OF HINDI SCHOLARS

Benares 1st Grade Normal School

15–7–87

My dear friend,

I beg to acknowledge the receipt of, with many thanks, your valuable Edition of the poetical reader. No. 1 and the Versification of the Moulvi Style in Hindi. I think your best series are well planned and well written and are very praise-worthy and successful attempt to supply our Normal Schools. Your poetical reader appears to me to be a nice little book of its kind, cleverly got up both as to accuracy of expression in pure Hindi and morals it conveys. It is in my humble opinion well calculated to benefit the pupil-teachers of the Normal School and for the advanced class boys of the Vernacular Schools of the Bihar Circle. I shall be happy to recommend it to the Inspector of Schools, Benares Division for the introduction of it in our Vernacular Schools of this province.

I have the honour to be
Sir
Your most obt. servant
Jay Narayan Mishra
Offg. Head Master
Normal School
Benares.

१—हिंदी-भूमिका से तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है। —सं०

Benares 22nd July 1887.

Sir,

Thanks for your Poetical Reader, No. 1. The book seems to be good in its own way.

Your faithfully
Lakshmi Sankar Misra
Inspector of School
Benares.

I have gone through the book "Khari Boli Ka Padd" compiled by Baboo Ayodhya Prasad resident of Mozuffe(r)pore. The book in my opinion is good of its kinds. The author's aim in compiling the book is to introduce a change in the Language of Hindi poetry.

Mozufferpore
the 30th July 1887

Ram Prakash Lal
Deputy Inspector of Schools
Mozufferpore.

Arrah the 19th July 1887.

My dear Baboo Ayodhya Prasad,

I thank you for a copy of the "Khari Boli Ka Padd" that you have kindly sent me. The book is well written and although it is only pure Khari Boli throughout, yet it contains all the beauties of a good high style.

Yours Truly
Parma Nand
Dy. Inspector of Schools

This book is sent to me by Baboo Ayodhya Prasad of Mozufferpore for opinion.

I have not met a book more useful for readers of Hindi than this, on a new, and improved model. The compilation will prove highly useful to all classes of our community that desire to be thoroughly acquainted with the spirit of ancient and modern Literature of our Language.

Mozufferpore
The 30th July, 1887

Saligram Tewari
4th Teacher Zillah School

श्री बाबू अयोध्या प्रसाद जी साहिब, नमस्कार

महाशय,

आपका अपूर्व संग्रह "खड़ी बोली का पद्य" अत्यन्त उपकारक होगा। बहुत दिन पीछे यह अभाव आपके परिश्रम से दूर हुआ है। हिन्दी के रसिक लोगों को चाहिये कि उत्साह से इस्के पढ़ने पढ़ाने में यत्न करें। और हिन्दी के कवि लोगों को भी चाहिये कि इस्के अनुकरण पर हिन्दी बोली में पद्य रचना करें। जनाब इन्सपेक्टर साहिब बहादुर बिहार सर्कल अनुग्रह करके इस संग्रह को स्कूलों में प्रचलित करें तो बहुत उपकार हो।

दर्भंगा
१६ जुलाई १८८७

आपका शुभ चिन्तक
गनेश प्रसाद
डिपुटी इन्सपेक्टर (स्कूल)
राज दर्भंगा

"खड़ी बोली का पद्य" इस पुस्तक को मोजफ्फरपुर निवासी बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने संग्रह की है यह हिन्दी रसिकों के हेतु बहुत उत्तम है, क्योंकि इस में जितने छंद हैं सब साधारण बोलचाल में रचे हैं। और इसमें एक विशेष गुण यह भी है कि बालक भी शीघ्र इसका शब्दार्थ समझ सकता है। मैं आशा करता हूँ कि ऐसी २ पुस्तक शिक्षा विभाग के नीच बर्गों के बालकों को बहुत उपयोगी होंगी। मैं इस पुस्तक के संग्रह करने से बाबू साहब को धन्यवाद देता हूँ कि इनका उत्साह ऐसी २ पुस्तकों के संग्रह करने में बढ़े।

पंडित गङ्गाधर शास्त्री
द्वितीय अध्यापक
जिला स्कूल मोजफ्फरपुर
३०–७–८७

[भारतमित्र, ७वीं जुलाई सन् १८८७ ईस्वी]

हम धन्यवाद पूर्वक निम्नलिखित पुस्तक की प्राप्ति स्वीकार करते हैं।

खड़ी बोली का पद्य—पहिला भाग श्रीयुत बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री रचित प्रकाश हुआ है, इस पुस्तक में मुंशी स्टाइल व पण्डित स्टाइल की पद्य फुटकर लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक अभीतक कोई नहीं छपी है जैसी कि यह है. पद्य रसिकों को एक २ प्रति अवश्य ग्रन्थकर्त्ता मोजफ्फरपुर से मंगाकर रखनी चाहिये।

समालोचना

"खड़ी बोली का पद्य।" इस नाम की एक पुस्तक मुजफ्फरपुर निवासी हमारे सुयोग्य बिहारी हिन्दी रसिक बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने आज दृष्टिगोचर कराई जिसके संग्रह में परिश्रम निमित्त हम बाबू साहब को अनेक धन्यवाद देते हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं कि यह "खड़ी बोली का पद्य" खड़ी बोली के गद्य का जोड़ा है। खड़ी बोली के गद्य के साथ

खड़ी बोली का ही पद्य शोभता है। जो साहब सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में एक प्रकार की हिन्दी और एक प्रकार का मत प्रचार करना चाहते हैं उन्हें यह पुस्तक कुछ सिखाती है।

मधुबनी
५वीं अगस्त १८८७

हरनाथ प्रसाद खत्री

"भूमिका"

सन् १८७७ ई० में मैंने "हिंदी व्याकरण" लिखा था कि जिसके अन्त में "छन्दविचार" के विषय में दूसरे भाग में लिखने की, मैंने सूचना दी थी। मैं भाषा-छन्द को हिन्दी-छन्द नहीं मानता हूँ, और इसी लिये छन्द-विचार लिखने के पहिले, हिन्दी-छन्द, जिसे मैं मानता हूँ, इस पुस्तक में दिखलाता हूँ।

लल्लू लाल ने, अपनी समझ में, "प्रेमसागर" खड़ी बोली में और "राजनीति" ब्रजभाषा में लिक्खीं। "राजनीति" के पद्य की भाषा और "प्रेमसागर" के पद्य की भाषा में कुछ अन्तर नहीं है। "प्रेमसागर" के पद्य की भाषा निसंदेह ब्रजभाषा है। हिन्दी के कुल लिखैये, मैं समझता हूँ, इन्ही का अनुकरण करते हैं। मुंशी मक्खन लाल खत्री ने अपने "सुखसागर" की भाषा का दो भाषाओं में लिक्खा जाना लिक्खा है :—गद्य "खड़ी बोली" में और पद्य "ब्रजभाषा" में।

खड़ी बोली के व्याकरण में ब्रजभाषा छन्द को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिन्दी में Poetical License समझना, हिन्दी वैयाकरण की, मेरी समझ में, भूल है।

"ब्रजभाषा" को केवल "भाषा" भी कहते हैं। हिन्दी किताबों की भाषा की किताबें समझना और "भाषा चन्द्रोदय", "भाषा तत्व बोधिनी", "भाषा भास्कर", "भाषा प्रभाकर" आदि, हिन्दी व्याकरणों का नाम रखना सोलह आने भूल है। चन्द की हिन्दी[१] को मैं "पुरानी हिन्दी" और आधुनिक हिन्दी (Modern Hindi) को "खड़ी बोली" कहता हूँ। चन्द की हिन्दी में "है" शब्द ("होना" के वर्तमान काल की क्रिया) नहीं आया "था" की जगह "हुतो" लिक्खा है।

१—उदयपुर के कविराज श्यामल दास ने "पृथ्वी राज रहस्य को नवीनता" में "पृथ्वी राज रायसो" के बनने का समय संवत् १६४० के पीछे और १६७० के पहिले लिक्खा है। "तुलसीदास का रामायण" और "राय मल्ल रासा" को "पृथ्वी राज रायसो" से प्राचीन मानते हैं। आप लिखते हैं कि चंद के कई सौ वर्ष पीछे जाली बनाया गया है। बनानेवाला राजपूताने का कोई भाट था, जिसने इस काव्य से अपनी जाति का बड़प्पन दिखलाना चाहा। ग्रंथ कर्ता ने चन्द बरदई के नाम से काव्य को प्रसिद्ध किया।

पण्डित श्री मोहन लाल ने "महा कवि चंद बरदई कृत पृथ्वी राज रासे की प्रथम साक्षा" नामक पुस्तक में "पृथ्वी राज रहस्य की नवीनता" का खंडन किया है।

जौन बीम्स साहब "पृथ्वी राज रायसा" को हिन्दी के काव्यों में सबसे प्राचीन मानते हैं, जैसा उन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल १८७३ हिस्सा १ नम्बर १ पृष्ट १६७ में लिखा है कि "चंद इस भाषा में सबसे पहिला कवि है।" "इनडियन ऐनटिक्वेरी" नामक मासिक पत्र की पहिली जिल्द में उन्होंने लिखा है कि यह काव्य सन् १२०० ईस्वी के लगभग लिखा गया है।

"खड़ी बोली" के मैंने पांच भेद माने हैं ; ठेठ हिन्दी, पण्डित जी की हिन्दी, मुंशी जी की हिन्दी, मोलवी साहिब की हिन्दी, और यूरेशियन हिन्दी।

१—ठेठ हिन्दी वह है कि जिस में न विदेशी शब्द हों और न संस्कृत के (कठिन)। इसमें तद्भव[1] और देशज[2] शब्द अधिक रहते हैं।

२—पण्डित जी की हिन्दी में संस्कृत के बड़े २ और कठिन शब्द रहते हैं, विदेशी शब्द प्राय: नहीं रहते हैं।

मुंशी जी की हिन्दी पण्डित जी और मोलवी साहब की हिन्दी के बीच को हिन्दी है और इसको यूरोपियन विद्वान् हिन्दुस्तानी कहते हैं।

मोलवी साहब की हिन्दी[3] फारसी अरबी (कठिन तत्सम)[4] संज्ञाओं से भरी रहती है। इसको मोलवी साहब उर्दू कहकर पुकारते हैं।

यूरेशियन हिन्दी में अंगरेजी के तत्सम संज्ञा शब्द आते हैं। मोलवी साहब फारसी और यूरोपियन अंगरेजी अक्षर पसंद करते हैं।

खड़ी बोली में, पण्डितजी ने पद्य लिखने की आज तक चेष्टा नहीं की है।[5] इसके कवि केवल मोलवी साहब हैं।

१—हिन्दी में तीन प्रकार के शब्द हैं--तत्सम, तद्भव और देशज। तत्सम शब्द वह है कि जो हिन्दी में व्यवहृत हो और अपभ्रंश न हो। Philology में केवल संस्कृत के शब्दों से तात्पर्य रक्खा है परन्तु मैं उन भाषाओं के शब्दों से अभिप्राय रखता हूं कि जिन २ से हिन्दी को सम्बन्ध है। हिंन्दी भाषा की Philology मैं अलग लिख रहा हूं। ईश्वर की दया होगी तो वह भी शीघ्र ही छपकर हिन्दी रसिकों की सेवा में उपस्थित होगी।

२—तद्भव शब्द का रूप कुछ बदल जाता है (अर्थात् अपभ्रंश) जैसा, अक्षि से आंख, Lantern से लालटेम।

३—देशज शब्द वह है कि जो हिन्दुस्तान की पुरानी जाति के हों अथवा संस्कृत के समय के बाद के आर्यों के निर्मित हों ; जैसा पगड़ी, डाब, डोंगा आदि।

४—राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द लिखते हैं कि "मौलवी साहिब इतने ऐन काफ काम में लाया चाहते हैं कि बेचारे लड़के बलबलाते ऊँट ही बन जाते हैं।

५—राजा शिवप्रसाद लिखते हैं कि दिल्ली बहुत दिन हिन्दुस्तान की राजधानी रहने के कारन वहां की दर्बारी और बाजारी बोली के आगे और सब जगह की ठेंठ बोलियां अब तक गंवारी समझी जाती हैं और सरकारी दफ्तरों में अब तक भी पारसी अक्षर जारी रहने के कारण वह पारसी पढ़े हुओं के बोलने बमूजिब सुधरने में आती हैं। ब्रज की बोली मीठी और प्यारी है इसी लिये यहाँ के कवियों ने अक्सर उसी में छन्द बनाये और अपने ग्रन्थ रचे। बाबा तुलसी दास राजापुर के रहनेवाले थे इससे उनके अद्भुत ग्रन्थ रामायण में बहुत से शब्द बुंदेल खण्डी आ गये।

बाबू हरिश्चंद्र लिखते हैं कि पश्चिमोत्तर देश के कविता की भाषा ब्रजभाषा है। प्राचीन काल में लोग इसी भाषा में कविता करते आते हैं, परन्तु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व नहीं था। क्योंकि मुहम्मद मलिक जाइसी और चंद की कविता विलक्षण है। मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी।

[बिहार-बन्धु २४वीं जून सन् १८८६ ई० से]

"इस देश में पण्डित किसे कहते हैं ? पंडित कहलाने के लिए इतने गुण अवश्य होनी चाहिये। सिर मुंडा हुआ होना, टीक बड़ी होना, पगड़ी पहनना, दो एक रुद्राक्ष की माला पहनना, तिलक लगाना, पैजामा

मोलवी साहब की हिन्दी का छन्दभेद और साहित्य मैंने अलग लिक्खे हैं। मुंशीजी अंगरेजी Prosody (पिंगल) भी हिन्दी में प्रयोग किया चाहते हैं।

स्टाइल (Style) शब्द इस पुस्तक में आया है। यह शब्द अंगरेजी है। बंगला में इसको धरन (धारा) कहते हैं। बंगाली महाशय भी पूर्व में इसी भाषा के फेर में पड़े हुए थे।

कवि कङ्कण, चण्डी, विद्यापति, गोबिंददास इत्यादि इनके प्राचीन कविगण की भाषा वर्तमान ब्रजभाषा और मैथिल भाषा से बिलकुल मिली हुई है। जैसे बंगला भाषा के पद्य की भाषा का संस्कार हुआ है वैसा ही हिन्दी भाषा का भी होना चाहिये।

मोजफ़फरपुर
५ जुलाई १८८७ ई० } अयोध्या प्रसाद वर्म्मा

कभी न पहनना, बोलचाल में तालव्य "श" का अधिक व्यवहार रखना, कोई सखुन तकिया भी लगा रखना जैसे कि कोई पण्डित "जो सो कि" और कोई "जे हैसे" कोई "गोविन्दाय नमो नमः", कोई "क्या नाम कि" कोई "अथवा" आदि हर बात के साथ बोलते हैं। आधुनिक पण्डितों के लिए संस्कृत का जानना बहुत अवश्य है और हिन्दी बोलने के समय भी कुढंगे कुढंगे संस्कृत शब्दों को मिलाकर बोलना भी अवश्य है। पंडितों के लिये ब्राह्मण होना भी सबसे अवश्यकीय है। इस देश के पंडितों में एक बात यह भी देखी जाती है कि गंवई के रहनेवाले होते हैं और जो शहर में भी रहते हैं उनका भी विवाह सम्बन्ध दिहात ही से रहता है और उनके अभ्यास की बोलचाल दिहाती ही बोली रहती है। लोग हिन्दी की खड़ी बोलचाल को जिसमें आजकल पुस्तकें और समाचार पत्र लिखे पढ़े जाते हैं, संस्कृत के आगे बहुत ही तुच्छ समझते हैं यहाँ तक तुच्छ समझते हैं कि हिन्दी की पुस्तकों को देखना पसन्द नहीं करते। इसी कारण से उन्हें इस बात की पर्वा नहीं रहती कि खड़ी बोली, जो कभी छठे छमासे बोलने का संयोग हुआ तो शुद्ध बोलते हैं या अशुद्ध।

पर अनजान विदेशी लोग अपने देश की तरह समझते हैं कि जो पण्डित के नाम से प्रसिद्ध है वह संस्कृत के अलावह हिन्दी में भी पूर्ण होगा। बंगाले में यही बात है। बंगालियों में जो पण्डित कहलाते हैं वह बंगला भाषा भी बहुत अच्छी लिखते हैं। अंगरेजों के यहां भी जो विद्वानों में गिने जाते हैं, शुद्ध अंगरेजी लिखते भी हैं और शुद्ध ही बोलते हैं। पर इस देश में यह बात नहीं है। पण्डित का नाम ही लेते यह खयाल जी में बंध जाता है कि हो न हो दिहाती होंगे, गवारी बोली बोलते होंगे, जो अगर शहर की बोली बोलने का उद्यम भी करते होंगे तो "आधी मुर्गी आधी बटेर" कर डालते होंगे।

अब देखना चाहिये कि इसका कारण क्या है। मुख्य कारण यही है कि और और देशों में सब किसी को पहले पहल अपनी देश की भाषा लिखाई पढ़ाई जाती है। पर इस देश में लिखाना पढ़ाना तो दूर रहे प्रथम ही से खड़ी बोली पर जिसे हिन्दू लोग मुसल्मानी भाषा समझते हैं, अभक्ति पैदा कराई जाती है। फिर उन्हें खड़ी बोलचाल आवे तो कहाँ से आवे ?

पर हमारे विदेशी राज पुरुष लोग इस भेद को नहीं जानते। "पण्डित" का शब्दार्थ विद्वान जान रक्खा है। पर "पण्डित" शब्द से आजकल लोग क्या समझते हैं, वह नहीं जानते। इसी कारण से हिन्दी के विषय में भी जब कभी कुछ पूछ मात करना होता है, तो वह पण्डितों ही की खोज करते हैं। इसी कारण से हमारे देश की आभ्यन्तरिक अवस्था के नहीं जानने वाले भोले अंगरेज हिन्दी पुस्तक लिखने वाले कायस्थ और खत्री और राजपूत आदि जाती को भी पण्डित की पदवी देते हैं"।

OPINIONS OF THE PRESS

[पीयूष प्रवाह २०वी जून सन् १८८७ ई० से]

खड़ी बोली का पद्य

इस नाम का ग्रन्थ मुजफ्फरपुर निवासी बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने बनाया है। ग्रन्थकार का प्रधान उद्देश्य इसके नाम ही से प्रगट होता है अर्थात् आज कल की प्रायः यह रीत ही पड़ गई है कि लोग यदि खड़ी बोली में भी कोई ग्रंथ लिखते हैं तो जब उसमें कोई छन्द लिखना होता है तो वृजभाषा में लिख मारते हैं। कितने ही ग्रन्थकार खड़ी बोली में यत्न ही नहीं करते और कितने कहते हैं कि इस भाषा में पद्य आज तक बना ही नहीं। बस यह ग्रंथ इसी अभाव के पूरे करने को है कि खड़ी बोली में भी पद्य होते हैं और बहुत बन चुके हैं। ग्रन्थकार ने इस में ठेठ हिन्दी आदि प्रकरण अलग अलग बांध दिये हैं यह और भी उत्तम हुआ है। इस ग्रन्थ में सब पद्य संग्रह किए हुए हैं। हम जहां तक देखते हैं ग्रन्थकार ने अपने उद्देश्य साधन में बड़ा ही परिश्रम किया है। इस भाषा में पद्य भी बनने लगें इसका उद्योग ब्राह्मण और हिन्दी प्रदीप के सम्पादक भी कुछ कर चुके हैं और इस ढंग की कविताओं के बिरोधी हम भी नहीं हैं। हम ग्रन्थकार को धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि उनकी लेखनी ऐसे ही उत्तम संग्रह किया करें।

खड़ी बोली का पद्य[1]

१ला परिच्छेद

ठेठ हिन्दी

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कृत[2]

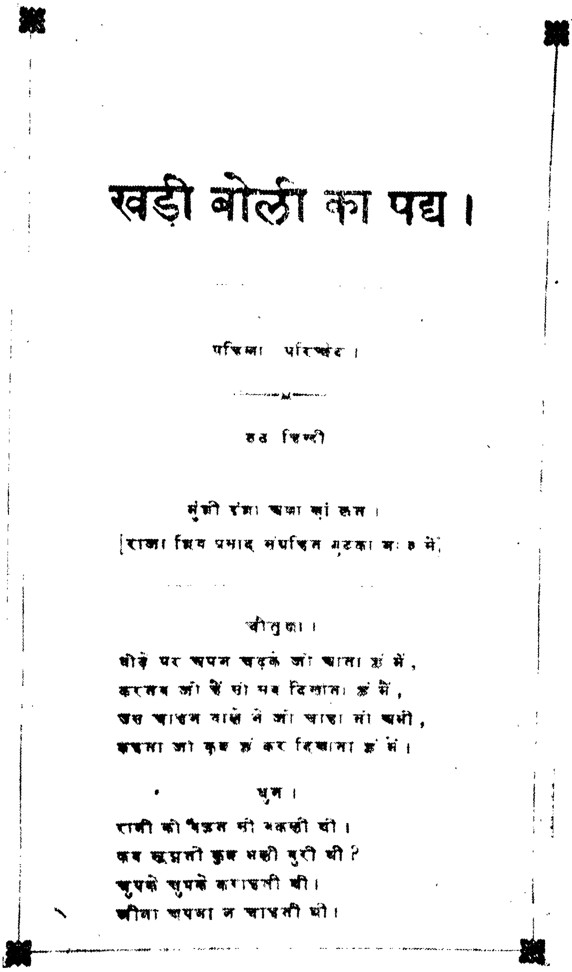
चौतुका

घोड़े पर अपने चढ़ के जो आता हूं मैं,
करतब जो हैं सो सब दिखाता हूं मैं,
उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी,
कहता जो कुछ हूं कर दिखाता हूं मैं।

धुन

रानी को बहुत सी बेकली थी।
कब सूझती कुछ भली बुरी थी?
चुपके चुपके कराहती थी।
जीना अपना न चाहती थी।
कहती थी कभी अरी मदनवान।
है आठ पहर मुझे वही ध्यान।
यहां प्यास किसे भला भूख?
देखूं हूं वही हरे हरे रूख।

१—मुद्रित पुस्तक का अविकल रूप इसी के पृष्ठक्रमानुसार यहाँ मुद्रित है।
२—लन्दन से छपी प्रति में निम्नलिखित लिखा है:—
मुंशी इंशा अल्ला खां कृत। [राजा शिवप्रसाद संग्रहित गुटका नं० ३ से]


खड़ी बोली का पद्य।

पहिला परिच्छेद।

ठेठ हिन्दी

मुंशी इंशा अल्ला खां कृत।
[राजा शिव प्रसाद संग्रहित गुटका भा: ३ में]

चौतुका।

घोड़े पर अपने चढ़के आता हूं मैं,
करतब जो हैं सो सब दिखाता हूं मैं,
उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी,
कहता जो कुछ हूं कर दिखाता हूं मैं।

धुन।

रानी को बहुत सी बेकली थी।
कब सूझती कुछ भली बुरी थी?
चुपके चुपके कराहती थी।
जीना अपना न चाहती थी।

फ्रेडरिक पिंकॉटवाले मुद्रित संस्करण का चित्र

टपके का डर है अब यह कहिये।
चाहत का घर है अब यह कहिये।
अमरइयों में उन का वह उतरना,
और रात का साईं साईं करना,
और चुपके से उठके मेरा जाना,
और तेरा वह चाह का जताना,
उनकी वह उतार अगूंठी लेनी,
और अपनी अगूंठी उनको देनी,
आंखों में मेरे वह फिर रही है।
जी का जो रूप था वही है।
क्यों कर उन्हें भुलूं क्या करूं मैं?
कब तक मा बाप से डरूं मैं?
अब मैंने सुना है ऐ मदन वान।
बन वन के हिरन हुए उदब भान।
चरते होंगे हरी हरी दूब।
कुछ तू भी पसीज सोच में डूब।
मैं अपनी गई हूं चौकड़ी भूल।
मत मुझको सुंघा यह डह डहे फूल।
फूलों को उठाके यहां से लेजा।
सौ टुकड़े हुआ मेरा कलेजा।
बिखरे जी को न कर इकट्ठा।
एक घास का लाके रखदे गट्ठा।
हरयाली उसी की देखलूं मैं।
कुछ और तो तुझ को क्या कहूं मैं?

इन आंखों में है भड़क हिरन की।
पलकें हु ँ जैसे घास बन की[१]।
जब देखिये डब डबा हुरी[२] हैं।
ओसें आंसू की छा रही हैं।
यह बात जो जी में गड़ गई है।
एक ओस सी मुझ पै पड़ गई है।

दोहा

छा गई ठंढि सांस झाड़ों में।
पड़ पई[३] कूक सी पहाड़ों में।

हम नहीं हंसने से रुकते जिसका जी चाहे हंसे।
है वही अपनी कहावत आप से जी आ फंसे।
अब तो सारा अपने पीछे झगड़ा झांटा लग गया।
पाव का क्या ढूंढ़ती है? जी में कांटा लग गया।

चौतुका

पौदों ने रंगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पांव में डालियों ने तोड़े पहने।
बूटे बूटे ने फूल फल के गहने,
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने।

दोहा[४]

यों[५] तु देखो, बाछड़े, जी वाछड़े, जी वाछड़े,
हम से अब आने लगी हैं आप यह मुहरे कड़े।
छान मारे बन के थे अपने जिन के लिये।
वह हिरन जोबन के मद में हैं बने दुलहा खड़े।

लन्दन प्रति :—१—का; २—रही; ३—गई; ४—हे; ५—यां।

तुम न जाओ देखने को जो उन्हें कुछ बात है,
झाँकने के ध्यान में हैं उनके सब छोटे बड़े।
है कहावत जी को भावे योंहि पर मुण्डिया हिलाय,
ले चलेंगे आपको हम हैं इसी धुन पर अड़े।
सांस ठण्ढी भर के रानी केतकी बोली य' सच,
सब तो अच्छा कुछ हुआ पर अब बखेड़े में पड़े।

दोहे

अब उदय भान औरं रानी केतनी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाये हुए थे फिर खिले।
चैन होता ही न था जिस एक आसन एक बिन।
रहने सहने से लगे आपुस[1] में अपने रात दिन।
ऐ खिलाड़ी, यह बहुत था कुछ नहीं थोड़ा हुआ।
आनकर आपुस[2] में जो दोनों के गठजोड़ा हुआ।
चाह के डूबे हुए, ऐ मेरे दाता, सब तिरें,
दिन फिरे जैसे इन्हों के वैसे अपने दिन फिरें।

दोहे

घर बसा जिस रात उनका तब मदन वान उस घड़ी,
कह गई दुलह दुलहिन को ऐसी सौं बातें कड़ी।
बास पाकर[3] केवड़े की केतकी का जी खुला।
सच है, इन दोनों जनों को अब किसकी क्या पड़ी?
क्या न आई लाज कुछ अपने पराये की? अजी?
थी अभी इस बात की ऐसी अभी क्या हड़बड़ी?

●

लन्दन प्रति :—१—और; २—आपस; ३—शुद्धिपत्र के अनुसार—पाकर।

२रा परिच्छेद

मुंशी-स्टाइल

राय सोहन लाल कृत

हिन्द में सतयुग समां

ऐ हिन्द ! तेरा वह रंग कहाँ है ?
पहला सा तेरा वह ढंग कहाँ है ?
करतार ने तुझ को था बनाया,
वह रंग वह रूप था दिखाया,
जो फूल सा आप ही खिले था,
उस से यह बनाव कब मिले था ?
वह सादी अदा निपट भली थी।
हाँ, सच के वह नूर में[१] खुली थी।
वह सच का समाँ वह सच ही की बातें,
वह चैन का दिन वह सुख की रातें,
मिलते थे जो जी से जी मिले था।
कुछ कहते तो मन से मन खुले था।
दो दिल मिले खुल के रस बरमता[२]।
इन्दर की सभा का रस दरमता[३]।
वह सोमलता के रस का पीना,
आनन्द का रूप हो के जीना।

लंदन प्रति :—१—से; २—बरसता; ३—दरसता।

कुछ लहर में आंख जो उठाई,
जंगल ने अदा अजब दिखाई।

वह ठंढी हवा, वह बर की छाया,
तन साफ व फूलसी थी काया।

वह सुथरी ज़मीन व निखरा पानी,
पेड़ों प लता के छवि सुहानी,

गंगा का वह लहर खाके जाना,
फूलों का चटक के खिल खिलाना,

चिड़ियों का वह डाल पर चहकना,
कोसों वह गुलाब का महकना।

बरकत थी वह सच को सब था भर पूर।
हर आन में सज का था भरा नूर।

●

पतङ्ग

जो उड़ता है वह नीचा देखता है।

थी एक पतङ्ग चांद वाली।
सज धज वह रखती थी बस निराली।

कुछ कन्नी झुकाके झोंक खाके
ऊपर को उठी वह सिर हिलाके।

ले ढील[1] बहुत सी शह जो पाई,
आकास चढ़ी वह सिर पै आई।

देख अपना उड़ना उठान भूली[2]।
उड़ने की जो डोर थी सो भूली

लन्दन प्रति :—१—ढोल; २—लन्दन प्रति के शुद्धिपत्र के अनुसार—भूली।

वह ऊँची जगह जो हाथ आई,
यह बात वह अपने मन में लाई।

है आज जहान में कौन ऐसा ?
ऊंचा जो चढ़ा हो मेरे जैसा।

जो कुछ है सो बस मेरे तले है।
आलम है कि मेरा मुंह तके है

यों कहती हुई वह सिर पै चढ़के,
औ, ऊंची उठी हवा में भरके।

टूटी जो कहीं वह डोर जाके,
नीचे को चली वह सिर झुकाके।

चकराती, तड़पती, फिर फिराती,
गैरत में चली वह गोते खाती।

पहुँची वह कहीं जमीन पै जाके।
ग़ारत हुई दम में लुट लुटाके।

पुरे हैं जो भारी हैं भरे हैं।
हिलते नहीं, एक जा खड़े हैं।

हलके को हवा लगी उड़ेगा।
उड़ता है सो जानिये गिरेगा।

सोने और ढोल की दो दो बातें

एक दिन बड़ा ढोल दन दना के,
कहने लगा सोने को सुना के।

दुनियाँ में बड़ा है मोल तेरा।
मर्दों में न निकले बोल तेरा ?

रहता है बहुत दबा छिपा तू।
डरता है किपिला बस पड़ा तू।

गढ़ गढ़ के बनायें खूब तुझको।
दें आग लगाएं खूब तुझको।

पर यार सदा मज़े उठाते।
गर्दन पै सवार दन्दनाते।

यों डंके की चोट मुंह जो खोला।
सिर चढ़के यह ढोल बोल बोला।

खाली था जो ढोल डींग मारी।
पर सोना भरा था और भारी।

सोने ने सुना अनसुना किया बस।
चुप का रहा आपे पै किया बस।

पर उसकी दम ने यह जताया।
उल्लू का ऐ ढोल मांस खाया ?

फिरता है हवा में भरके फूला।
भड़की जो हवा तो आपा भूला।

बक बक लगी एक बड़ जो छुटी।
क्या सूझे ? समझ की आंख फूटी।

आपे में कभी जो ढोल आता।
इस बात को आप ठीक पाता।

बस ढोल का बोल ही बड़ा है।
भीतर से जो देखिये तो क्या है ?

बे मग़ज़ हो चोप कुछ बनी है।
एक खाल मुई हुई तनी है।

बे वज़न मिले यह ग़ुल मचाया।
सिरपै चढ़ जगके सिर उठाया।

एक डंके के चोप सर जो टूटा,
सब भेद खुला वह पेट फूटा।

बस शोर था एक हवा बंधी थी।
बे जान था बात बस बनी थी।

भारी से कभी न खाई टक्कर।
कूदी किसी आग में न बढ़कर।

क्या जाने जहान में क्या है अच्छा ?
सोने से कौन है और सच्चा ?

जो रंग है बस कभी न छूटे।
नरमी से दबे कभी न टूटे।

जीवट का जो देखिए कड़ा है।
भारी है भरा है और खरा है।

सब की पड़े आग में उछल कर।
चक्कर बड़े खावे बस पिगल कर।

सौ आंच से बस निकल गया है।
हां, सच को जहां में आंच क्या है ?

सौ बार गले वो चोट उठाये,
जेवर वह जहां का तब कहाये।

●

चांदनी का समां और उसके नूर की झलक

वही चांद पेड़ों के पीछे उगा।
उठा लाल सा जगमगाता हुआ।

वह किरने जो फूटी अजब लाल लाल।
था पेड़ों में ऐक जग मगाहट का जाल।

उठा चांद कुछ एक अनोखा सा ढंग।
वह दम दम में उसका बदलता था रंग।

गुलाबी सा जाड़ा वह ठंढी हवा।
वह नीलम सा आकास निखरा हुआ।

वह चढ़ता था चांद और खिलता था नूर।
हुआ जग मगाहट के जोबन का चूर।

हर एक तरफ नूर एक बरसने लगा।
हर एक फूल पत्ता चमकने लगा।

कनी रत की वह दमकती हुई।
वह चांदी सी मट्टी चमकती हुई।

जमीं पर बिछी नूर की चांदनी।
अनोखी अदा एक जमीं की बनी।

घुले नूर से थे वह दीवारो दर।
खिला मोतिया साथ हर एक गुहर।

सपेदी पे नूर एक अनोखा पड़ा।
यह देखे कि चांदी का पानी फिरा।

कनी पै जो बिखरी कहीं चांदनी।
वह चमके थी हीरे की जैसी कनी।

खड़े नूर में पेड़ नहाये हुए।
समा नूर का एक देखाये हुए।

वह झोके में पत्ते जो झूमें जरा।
अजब नूर बिखरे झलकता हुआ।

वह पत्तो में छन छन गिरे चांदनी।
जमीं धूप छांह कीसी चादर बनी।

पड़े गंग पर नूर की एक भरन।
गिरे लहर में झिल मिलाती किरन।

थे लहरों में एक चांद के लाख चांद।
जिन्हे देख के धूप हो जाय मांद।

था लहरों में एक झिल मिलाहट का जाल।
बिछा दूर तक जग मगाहट का जाल।

जमीं नूर और आसमां नूर था।
समा एक अनोखा बना नूर का।

हुनर का जिसे देख उड़ जाय रंग।
समझ सामने जिसके हो जाय दंग।

यह करतार का देख करतब ज़रा।
उठी लहर बम दिल तड़पने लगा।

यह सूझी कि ये सब उसी का है काम।
लिखा चांद सूरज पै है जिसका नाम।

●

बाबू हरिश्चन्द्र कृत

[विद्या-विनोद—आसिन, सम्बत् १९३३ से]

दशरथ विलाप

कहां हो, ए हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़ मुझको सिधारे ?

बुढ़ापे में य दुख भी देखना था ?
इसी के देखने को मैं बचा था ?

छिपाई है कहां सुन्दर वह मूरत ?
दिखादो सांवली सी मुझको सूरत।

छिपे हो कौन से परदे में बेटा !
निकल आओ कि अब मरता है बुड्ढा ।

बुढ़ापे पर दया मेरे जो करते,
तो बन की ओर क्यों तुम पैर धरते ?

किधर वह बन है जिस में राम प्यारा,
अयुध्या छाड़[1] कर सूनी सिधारा ?

गई संग में जनक की जो लली है,
इसी से और मुझको बेकली है,

कहेंगे क्या जनक यह हाल सुनकर ?
कहां सीता, कहां वह बन भयङ्कर !

गया लछमन भी उनके साथ ही साथ,
तड़पता रह गया मलते ही में हाथ ।

मेरी आंखों को[2] वह पुतली कहां है ?
बुढापे की, मेरी, लकड़ी कहां है ?

कहां ढूंढूं, मुझे कोई बता दो ।
मेरे बच्चों को बस मुझसे मिला दो ।

लगी है आग छाती में हमारे,
बुझाओ कोई उनका हाल कह'के ।

मुझे सूना दिखाता है जमाना ।
कहीं भी अब नहीं मेरा ठिकाना ।

अंधेरा होगया घर हाय मेरा !
हुआ क्या मेरे हाथों का खिलौना ?

मेरा धन लूट करके कौन भागा ?
भरे घर का[3] किसने उजाड़ा ?

हमारा बोलता तोता कहां है ?
अरे ! वह रामसा बेटा कहां है !

लंदन प्रति :—१—छोड़; २—की; ३--को ।

कमर टूटी, न, बस अब उठ सकेंगें।
अरे बिन राम के रो रो मरेंगे।

कोई कुछ हाल तो आकर के कहता।
है किस बन में मेरा प्यारा कलेजा ?

हवा और धूप से कुम्हला के थक कर,
कहीं साये में बैठे होगे रघुवर।

जो डरती देखकर मिट्टी का चीता।
वह बन बन फिर रही है आज सीता।

कभी उतरी न सेजों से जमीं पर।
वह फिरती है पियादे आज दर दर।
कभी उतरी न सेजों से जमीं पर।

न निकली जान तक बे हया हूँ।
भला मैं राम बिन क्यों जी रहा हूँ ?

मेरा है बज्र का लोगो! कलेजा।
कि इस दुख पर नहीं अब भी य फटता!

मेरे जीने का दिन बस हाय बीता!
कहां है राम, लछमन और सीता ?

कहो, मुखड़ा तो दिखला जायें प्यारे!
न रह जायें हवस जी में हमारे।

हमारे राम, मेरे राम, ए राम!
मेरे प्यारे, मेरे बच्चे, मेरे श्याम!

मेरे जीवन मेरे सर्बस मेरे प्रान!
हुए क्या हाय, मेरे राम भगवान!

हमारे राम! हा प्रानों से प्यारे!"
यह कह दसरथ जी सुर पुर को सिधारे।

बसन्त

फागुन के दिन बीत चले अब ऋतु बसन्त आई,
बदला समा चली झोंके से झखी पुरवाई।

गर्मी के आगम दिखलाये रात लगी घटने,
कुहू कुहू कोइल पेडों पर बैठ लगी रटने।

पक चले धान, पान, पेंड़ पीले, आम भी बौराने,
हुई पतझार, लगे कोपल पत्ते फिर आने।

ठंढा पानी लगा सुहाने, आलस तन आई,
फूले सिरिस फूल की खुशबू कोसों तक छाई

बागों में कचनार बनों में टेसू हैं फूले,
मदमाते भौरे फूलों पर फिरते हैं भूले।

एक रंग पीली सरसों खेतो में लहराती,
बीच बीच में कली कुसुम की फूली छब पाती।

कहिं तीसी कहिं रहर, कहीं जौ, फूले मन भाये,
गेंदे बांध कतार बाग में नया रंग लाये।

फूले नारंगी, कोला[1], औ, मीठे नीबू की,
चारो तर्फ़ बाग में फैली लपट व खुशबू की।

●

बर्सात

सब को सुखदाई, अति मन भाई, सुन्दर वर्षा आई है,
दामिनि दमकती, चपल चमकती, नभ में अति छबि छाई है।

कासनी, चमेली, जूही, बेली, कदम बृक्ष में फूले हैं,
तितली संचारें, कर गुंजारें भौरे जिनपर भूले हैं।

लन्दन प्रति :—१—कौला।

बादल रंग रंगी, सैनी जंगी, बिजली तोप तुरंगी है,
बूदों की गोली, गर्जन बोली, बर्सा फ़ौज फिरंगी है।

धूए से बादल, जल ही का बल, अनल बीजुली झेली है,
सीठी दे चलती, बेग उबलती, पावस रेला रेली है।

गरजन के तबले, मोर सरंगी, भेकताल धुनि जाँची है,
बादल के कपड़े, वीजु रोसनी, वर्षा पातुर नाची है।

धर्म्मो को छोड़ो, गरज सुनाता, सुनता जो कि अधुरा है,
बपतिस्मा पानी दे क्रिस्तानी घन यह पादरी पूरा है।

बादल की पालें, धुएं की जालें छोड़े दौड़ा जाता है,
पावस नभ सागर, सब गुन आगर, जोर जहाज़ दिखाता है।

घन उक्ति सुहाई, कबिमन भाई, अर्थ बीजुली भाती है,
जल रस बर्साती, सदा सुहाती, वर्सा कविता आती है।

रंग रंग के बादल जोड़ जोड़ दल चले गरजते आते हैं,
नारंगी पीले लाल औ' नीले, सावन सांझ दिखाते हैं।

कहीं कोयल बोलें, करें कलोलें, कूकें मोर सुहाये हैं,
टर्राते दादुर, बाक बहादुर, झींगुर झनक लगाये हैं,

गिर रहे करारे, नदी किनारे, जल का शोर सुनाता है,
खंडहर पै ठनकत, साँप खन कते सुनकर जी डर जाता है।

हुई रात अंधेरी बदली घेरी, हाथ से हाथ न दिखलाता,
घर से न निकलता, राह न चलता, काई न मग आता जाता।

●

बाबू महेशनारायण पटना निवासी कृत

[बिहार बन्धु, १३वीं अक्टोबर, १८८१ से]

स्वप्न

१

थी अंधेरी रात, और सुन्सान था,
और फैला दूर तक मैदान था;
जंगल भी वहाँ था,
जनवर का गुमां था,
बादल था गरजता,
बिजली थी चमकती,
वो बिजली की चमक से रोशनी होती भयंकर-सी।
ईश्वर के जमाल का नमूना वां था,
ईश्वर के कमाल का ख़जाना वां था।
देरख़्तों[1] पर जो बिजली की चमक पड़ती, अंधेरे में,
डालों के तले,
पत्तों में भी होकर,
तो यह मालूम होता जैसे हो वह सख़्त[2] घेरे में।

२

पहाड़ी ऊंची एक दक्षिण दिशा में
खड़ी थी सर उठाये आस्मां में;
बलाग़त से हिमाक़त में खड़ी थी,
दरख़्तो[3] के गले में एक लड़ी थी।

लन्दन प्रति :—१— दरख़्तो ; २—सख़्त ; ३—दरख़्ती।

करुणामय परमेश्वर की वह पहाड़ी भी ज्योति प्रकाशक थी ,
अजीब, अनेत, अभाष्य अगर थी तो भी लखगुण गायक थी ।
नहीं वक्त, का डर, नहीं ख़ौफ़ अजल, वह पहाड़ी खड़ी की खड़ी ही रहेगी ,
हज़ारों मरे हैं, हज़ारों मरेंगे, पहाड़ी अड़ी की अड़ी ही रहेगी ।
इसलिये मौत का नहीं कोई डर ,
बैठ जाता है उन मनुष्यों पर
जाके पर्वत सी हर वी पहाड़ ही धाई बने हैं ।

३

और एक झरना बहुत शफ़्फ़ाफ़ था ,
बर्फ़ के मानिन्द पानी साफ़ था ,—
आरम्भ कहां है कैसे था वह मालूम नहीं हो ;
पर उसकी बहार ,
हीरे की हो धारा ,
मोती का हो गर खेत ,
कुन्दन की हो वर्षा ,
और विद्युत की छटा तिर्छी पड़े उन पै गर आकर ,
तो भी वह विचित्र चित्र सा माकूल न हो ।

४

ठनके की ठनक से ,
बिजली की चमक से ,
वायु की लपक सें ,
फूलों की महक से ,
वह बन में दीख पड़ता था अजाएब सा भयानक हुस्न ।

झरने की बड़ बड़ाहट,
पत्तों की शनशनाहट,
कड़के की कड़ कड़ाहट,
करती थी हड़ हड़ा हट,
लड़ती थी आपुस में ईश्वर की कीर्तियां सब।

थी उजाला जरी न उन बन में,
थी अंधेरी चमक वह कानन में,
थी जमीं मस्त काले जौबन में,
घोर रुपि निशा थी गुलशन में,
नहीं सूर्यदेव उस धुप को कभी चमका सक्ते चमका सक्ते[१],
दामिनि दमके, चपला चमके नहीं इन्द्र उसे चमका सक्ते,

महिमा ईश्वर की प्रगट इस से,
कहां पायेंगे हम, कहां पायेंगे हम।

५

वह राक्षसी उजाला
बहके हुए मनुष्य को करती है जो तबाह
मदान[२] पुर खतर में
वां भी चमक भुलावनी अपनी दिखाती थी।
जिन्दगी में बहुत ऐसी ही चमकती हुई चीज,
जीव अनमोल को करती है हक़ीर वो नाचीज।

जुगनूं थे चमकते डालों पर,
जस मोती काले बालों पर,
जस चन्दन बिन्दु दीख पड़ें
श्यामा अबला के गालों पर।

लन्दन प्रति :—१ सक्त; २—लन्दन प्रति के शुद्धि पत्र के अनुसार—मैदान।

भौतिक सी कीर्ति
आती थी नज़र
व्यापार अचम्भा
देखो तो बराबर।
अजायब !
अपार !!

६

रात अंधेरी में पहाड़ी की डरौनी मूर्ति
कैफियत एक मनोहर थी वह पैदा करती—

एक कैफ़ियत मनोहर
देखें तो होवे शशदर
सुन्दर भयंकर।

दरख्तों की हू हू, पवन की लपट,
निश मय प्रकृति वो कर्कश समय
घना घोर घुप में दमक दामिनि की
स्वरूपीय भय के समागत थे सेना,
महादेव यम राज्य स्वाधीन करते

७

पहाड़ी पै पत्थर के चट्टां बड़े,
समय की सृष्टि से वां थे खड़े,
अजब एक सनत से खड़े थे वह सारे,
ज़री सो ज़मीं पर बहुत ही किनारे;
अगर लोग देखें तो होवे यक़ीं,
कि गिर जाना उनका है मुश्किल नहीं,

वो लेकिन अगर भीम भी आनकर,
हिलावें तो टसके न एक बाल भर,
अगर नीचे जाकर कभी इनको देखें
तो मालूम होवे कि सब यह ख़फ़े हैं

भक्ति-रस उत्पन्न न हो जिस मन में यहां वह मन ही नहीं,
कीच बराबर जीव वह है जो मन में बिराजित यह धन ही नहीं।

८

एक कुंज,
वह गुंज,
पेड़ों से घिरा था
झरने के बग़ल में
बिजली की चमक भी न पचहुंती थी वहां तक
ऐसा वह घिरा था
जस दीप हो जल में
पानी की टपक राह भला पावे कहां तक।

९

सब्जे का बना था शामियाना
और सब्ज ही मख्मली बिछौना;
फूलों से बसा हवा[१] वह था कुंज
था प्रीत मिलन के योग्य वह कुंज;
परपोश हवा के रहने वाले
दिल कुश[२] वह समाज गाने वाले
रहते थे अमन से उस चमन में
आदम को मिले न जो अमन अदन में,—

लन्दन प्रति :—१—हुवा: २—लन्दन प्रति के शुद्धि पत्र के अनुसार—दिलकश।

आती थी उस जगह से स्वाधीनता की खुशबू;
स्वाधीन थे दरख्त वो स्वाधीन थी लतें
स्वाधीन सुरथे चिड़ियों के, स्वाधीन थी गतें।
थी ग़रज़ वहै[1] जगह फ़र्हत अफ्जा।
ताज़गी जी को बख्शे वां की हवा।
साया पड़ा था लेकिन सब हुस्न पर वहाँ के
रजनी ने काली चादर सब को उढ़ाई थी।

१०

पानी पड़ने लगा वह मूसल धार
मानो इन्द्र की द्वार खुली हो।
वादल की गरज से जी दहलता
वजली की चमक से आंखें झिपतीं
वायू की लपट से दिल था हिलता
आंधी से अधिक अंधारी बढ़ती।

११

रोने की आवाज आती है ? कहाँ ? वह
उफ़ नहीं। हां, अहा। वहां वह !
है तो कोई अबला की ध्वनि और प्रीत के रस की है माती हुई।

अवला का वहां;
भला क्यों हो गुमां ?

न मनुष्य का वां था कहीं भी निशां।
तो क्या स्वर्ग को फाड़ परी वरसी है ?

१—लन्दन प्रति के शुद्धि पत्र अनुसार —वह।

उस कोलाहल में ध्वनि उसकी
दबती दबती आती थी
दया, प्रेम भक्ति और हित की
ठुनुक ठुनुक के बुलाती थी—
अरे नयनों के सितारे !
"मेरे प्यारे !
अरे आरे !"—
आवाज़ यही एक निकट कुंज से मधुर स्वर में आति थी।

१३

विजली की चमक में
रौशन[1] हुआ चिहरा
देखा तो परी है
नाज़ो से भरी है,
घुंघर वाले बाल
मख़्मल के दो गाल,
तवा नाज़ुक प उस के कुछ था मलाल
वाल बिखरे थे वस्त्र का न ख़्याल;
लाव रायता गुलाबी
सूखी थी एक ज़रीसो[2]।
सुन्दर कोमलता उसकी
जस तीक्ष्ण हवा उसमें हो लगी—
मानो पद्म को तोड़ पहाड़ प' लाये हों।

लन्दन प्रति :—१—रोशन ; २—ज़रीसी।

१४

मुख मलीन मृग लोचक शुष्क
शशि की कला में वहार नहीं थी;
लब दबे यौबन उभरे
रति को छटा रलार नही थी,
गरभ, हवस, अफ़सोस, उम्मीद,
प्रेम-प्रकाश, भय चंचल चित्त
थे यह सब रुख़ प नुमायां उसके,
कभी यह कभी वह,
कभी वह कभी यह,
मुख चन्द्र निहार हो यह विचार कि प्रेम करू' दया दिखलाऊं।

१५

कभी मुंह गुस्से से होता लाल,
कभी सर को झुकाये वह करती मलाल,
कभी वरहम शौक़ से होता[1] था,
कभी पेहम मोती पिरोती थी,
कभी आशा से थी ललचती वह,
कभी डर से फिर थी हिचकती वह,
गर्भ से नैन कड़ी करती थी
पर प्रीत की वानी कहां छिपती थी?
अन्त में आंसू गिर ही पड़ते थे
शब्द यह खुद निकल ही पड़ते थे:—
"अरे आरे
मरे प्यारे"

लन्दन प्रति :—१—होती थी।

शब्द कि सुन के कठोर भी रोयें,
और शब्द कि चित मे प्रीत वोयें।

१६

दिल में उसके थी एक अजब हलचल
आत्मा थी फड़कती औ बेकल
धीरता भी बनाती थी चंचल,
व्यग्रता आंख में थी लाती जल
प्रीत जब रोते रोते थक जाती,
बालों को वह खसोट झुंझलाती,
तब घृना से वदन को वह लखती
तब जनूं सी वह दस्त को सलती,
आख़िरश होके सबसे वह मग़लूब
खोल देती वह द्वार दिल को ख़ूब :—
"मेरे प्यारे
अरे आरे।"

१७

मिलते थे जवाब दिल में उसके
नेचर की वह कुल लड़ाइयों के
बिज्ली जो कहीं चमकती आसमां में शायद
घबड़ाहट अधिक थी उस से उसकी जां में शायद
दिल में थी अंधियारी सारी
रजनी की नहीं वैसी अंधियारी
अन्तर अन्धड़ चलता था—
जी का कमल तक हिलता था

मुख चन्द्र प' मेह थे छाये हुए
पर ज्योति नहीं उस की छिपती,
जस भेष मलीन में बुद्धि तीक्षण
नहीं छिपती पै नहीं छिपती—
जस लाख बरस को ग़ुलामी से
स्वाधीन ज़मीन नहीं छिपती,
अस सोग के में से सुन्दरता
उस कामिनी को[1] थी नहीं छिपती

१८

एक ज़ानू उठाये एक गिराये
एक हाथ को गाल पर लगाये,
आते जो थे बाल उसके मुँह पर
सरकाती थी हाथ दूसरे से "अह" कर
आंखें—न खुली थीं और न थीं बन्द
बे अक्ल हों देखें गर अक़्लमन्द।

एक सादी साड़ी
पर काली किनारी
पानी से तराबोर

लहरी हुई इसनाज से लिपटी थी बदन में
लिपटी न कभी जैसे की ख़ुशबु भी पवन में,
सीने का उसके वह ईश्वर दातव्य जमाल

छिपता नहीं इस से

फड़के था वह क़ैद से औ करता था कमाल

छिपने का वह किस सें ?

स्वर्गीय सरलता थी उस प छाई उस वक़्त।

लन्दन प्रति :—१—की।

१९

सीने की धड़क से
थर्राता बदन
बालों की फड़क से
उभरता वह जोबन,
आँखों की मटक से
थी प्रीत नुमायां,
हाथों की झटक से
करती थी वह कुर्बां—

नार अलबेली-सी बैठी थी वह जांल[१] की शोभा दिखाती हुई
ओ डराती हुई ओ लुभाती हुई और पेड़ों की ललचाती हुई

पर हुस्न का जिल्वा
उस बन में भला क्या ?

अनेक हैं फूल कि जन्म लिये पर्ती में और कुम्हलाये वहीं हैं।
खिल खिलकर वह सुगन्ध सुन्दर को धीरे २ मिटाये वहीं हैं।
अनेक हैं मोती समुद्र के गर्भ में मर्म न जिनका जान पड़ेगा।
निर्मल, नविन, गोल, सुडौल अनेक हैं लेक पटाये वहीं है।

२०

थी वह अबला अकेली उस बन में,
थी अकेली ?
लाखों चिन्ता थीं जमा उस मन में,
वह छबीली
क़ाफ़ला सोग रखती थी तन में
बढ़के जब प्रीत सींच थी करती

लन्दन प्रांत :—१—जंगल।

चंचला हो[1] बेचारी रो देती
मेरे नयनों के सितारे
अरे प्यारे
मेरे आरे"

उस अंधियारी में थी वह झलकती किरखा हो जस एक स्वेत खिलौना
धर्म निराश में ईश्वर आश की थी अचरज औ चमकती नमूना।

नहीं सत्य प्रीत कभी बड़बड़ाती
नहीं गुढ़ विद्या कभी फड़फड़ाती
अवश्य फंक[2] ही चीज हड़हड़ाती,
नहीं इसलिये वह बहुत बड़बड़ाती
प्रेम की भाषा आंखों में है
नहीं गठते हुए शब्दों में है
सेकडों[3] मत्लब निकले थे
इन के शब्दों में अबला के
अरे नयनों के सितारे
"अरे आरे
मेरे प्यारे"
शब्द न सोचे न छाने हुए
औ न तौले हुए औ न ठाने हुए।

२१

घन्टों रही बैठी इस तरह वह
ग़फ़्लत में पडी हो जिस तरह वह,
रह रह के वह सांस देर गह लेना,
कह कह के यह जान फिर भी खोना

लन्दन प्रति :—१—ही; २—फोंक।
३—लन्दन प्रति के शुद्धिपत्र के अनुसार—सैकड़ों।

अरे नयनों के सितारे
"मेरे प्यारे
अरे आरे"

रोती थी कभी कभी वह हंसती,
रोती थी हंसी हंसी पइस की,

चिहरे प' कभी कमल था खिलता
अन्तर में कभी था जी मचलता,

वारिश जो वह जार से थी पड़ती,
कांटो की तरह था बूंद गिरती,

जल से तन में ठन्ढक पहुंची,
पर अन्तरिक अग्नि उड़ भड़की।

पानी से धुआ गया वह चिहरे का गुलाब
और आंसू से भी,
पर सुर्खी नहीं गई कि थी सुर्खीए शबाब
क्यों कर कि वह मिटती ?

खिल खिलाती थी विजली हंसने पर
वायू चलती थी "आह" करने पर

स्वर्ग के मेह प्रेम थे करते
मान्सिक मेंह मुंह पर ज्यों आते

बस पानी में होके विलकुल तर
सट गया धीरे धीरे कुलतन पर

भींगा जोबन ओ कुछ निराला सा
एक अजब ढब से देख में आता,

जब मचकर वह खोलती आंखे
शून्य मय देख मूंदती आंखे।

अंधकारी से आंखे भिपती थीं,
खोलने से नहीं वह खुलती थीं।

मेह विजली, हवा व अंधियारी,
वारिश, और वां की कतियां[1] सारी।

थी समझती उसे तमाशा सी,
देख पड़ती थी गो वह अबला सी।

बस तमाशा ही थी समझती उसे
भक्ति अबला की थीं न करती उसे।

थी वह बे उनसों में वहां, ऐसे
प्रीत पत्थर हृदय में हो जैसे।

देर तक बस यही समा ही रहा,
परन उसकी जबां से कुछ निकला।

न वह बाप न मां,
न राजभवन न सहेलिन गए,
न प्यारी सखियां कोई,
दिग धारन के बुझावन हारे,
जी थक जांय न थे पर कोई।

थी तो अबला कहां तलक रोके?
ताकने वह कभी जो रो रों के।

ख़ाब ग़फ़्लत की नींद टूट गई।
धीरे धीरे वह खुद को कहने लगी:—

२२

"क्या है यह अहा हिन्द की जमीन?
होगी तो जरूर यह स्वाधीन,

लंदन प्रति :—

१—कर्सियां; शुद्धिपत्र के अनुसार :—कौर्सियां।

चन्द्र लोक से आई हूँ में जहाँ धीनता की है बड़ी ही बड़ाई

राजा तो यहाँ यहीं के होंगे,
वां तो हैं बिदेसी राज करते,

सब कार्य्य विदेशि ही करते हैं वां ओ विदेशियों की है बड़ी प्रघटाई ।

सन्तोष वहाँ भी है आशा देती
सीखो तो करोगे राज तुम भी,

सीखें जरूर सिखावें जो कोई पर द्रव्य कहाँ कि जो देवें सिखाई

वह लोग तो हैं नहीं सिखाने के
कहते है करोगे तुम यह मिहनत काहे

कुछ और जो बोले तो कूद़ पड़े और कहने लगे कि है कैसी ढिठाई ।

अच्छा है यही, हमेशा सिर का झुकाना[1],
बे[2] काम का काम मोल लेना,—

होंगे फंसे यह जंजाल में यां सब, स्वाधीनता में है कौन मिठाई ?

रुपये तो यहाँ के यांही रहते होंगे ?
और यां के भले में सर्फ़ होते होंगे ?

वां तो जमा भी नहीं होते, कि हैं कर लेते वह अगोड़[3] बटाई

हम लोग हमेशा चुप ही रहते है वहाँ,
और शाज जो पूछा रुपये सब यह जाते हैं कहाँ ?

तो कहते हैं वह क़समें खा खा कि हैं करते हम इस्से तुम्हारी भलाई ।

२३

यां तो बे वजह लड़ाई नहीं होती होगी ?
हाथा पाई तो हवा पर नहीं होती होगी ?

लन्दन प्रति :—
१—झुकाना; २—व; ३—लन्दन प्रति के शुद्धि पत्र के अनुसार :—अगोढ़ ।

रऐयत आनन्द में, हमसाए अमन में होंगे?
वां तो कहते हैं कि मंगल के बड़े जुल्म होंगे,

ऐसे अनेक कारण बतला वह मचाते हैं बस घोर लड़ाई

राज भक्ति तो यहां खूब ही होती होगी?
राज भक्त वां भी है पर उन पं है तुहमत यह पड़ी—

अति भक्ति है चोरों का लक्षण, गूढ़ता काली है भक्ति में समाई

समाचार पत्र यां के होंगे स्वाधीन?
जबां उनकी काहे गई होगी छीन?

देशी समाचर पत्र हैं वां भी पर बंद है इनकी स्वाधीन छपाई

रऐयत तो यहां रहती होगी अपना हथियार
हमलोगों के पास वां नहीं है एक तलवार

है हमलोगों को उन की यह भक्ति, कि दे के सब अस्त्र स्वाधीनता ही गवाई

आशा हैं बहुत वह हम को देते
आशाओं प हमसे काम लेते

वादा जो खिलाफ़ हो कहें वह
"आया है नहीं अभी समय वह,

धीर धरो फल पाओगे तुम, क्या है अभी उम्र तुम्हारी गंवाई"

२४

"सच है यह, प—ऐ मैं बकती क्या हूँ?—
यह कहके वह कामिनी हुई फिर बेचूं,

तकने लगी डर से फिर वह वृक्षों को,
हटने लगी फिर समझ मनुष्य इन को,

थर्राती थी भय से वह न जाने क्यों ?—
डरते हैं सन्मुख में दुष्ट मुन्सिफ़ के ज्यों,
डरती थी वह पेंड़ों की भी हू हू से,
लड़ती थी न जाने वह हवा में किससे,
झूड़ों में कभी थी जाके छिपती,
पेंड़ों में कभी थी जाके अड़ती,
लेती कभी पत्थरों को वह उठाकर,
फेंके थी हवा में फिर घुमाकर,
गिरती जो थी जाके यह जमीं पर
आवाज जो होती थी कहीं पर
"कैसा[१] लगी ? बस वहीं वहीं तक,
बढ़ना नहीं वर्ना फोड़ूं सरतक"
चिहरे सें थी लापरवाही एक नुमायाँ
"लोगे तो बला से लोगे तुम मेरी जाँ,
प्यारे ही से हुई हूं जब जुदा मैं
फिटकार यह जान ताफ़[२] यह जिन्दगी में,
जाती तो कभी नहीं मैं जाने की हूं,
बिहतर हो कि काराबास मरकर जाऊं,
तो लोग भी चन्द्रलोक के यह देखें,
अब तक वहां इस तरह की औरतें हैं—
फिर रोके लगी पुकारने बह,—
"इमदाद को मेरी आब लोगी ।"—
"अरे प्यारे
मेरे आरे"
"यह कहकर जमीं पर वह ग़श कर गई ।
कहे तू कि जीते ही जो मर गई"

लन्दन प्रति :—१—कैसी; २—तुःफ़ ।

२५

देर[1] तक वह पड़ी रही यों हीं,
हिलने की शक्ति तक उसे थी नहीं,
सांस चलती थी जान थी लेकिन,
था अस्थिर बेतरह उसका तन।
थी पड़ी वह बेचारी पत्थर पर,
सोती थी जो कि फूल सेज्यापर।
पत्थर ही वां था जिसका तकिया बना,
प्रीत के गोद का यह रक्खा हुआ;
सर पड़ा था वह सर्द पत्थर पर,
थी पड़ी धर्ती के गले लग कर।
आग़ोश में सर्द वह पड़ी थी
जो हार गले की थी किसी को[2]।
आये थी वहां वह सारी जोबन,
जोबन कि किसी की होगो जीवन।
वह बाल जो थे समान काले,
वां थे न कोई डसाने वाले।
पत्थर वो पहाड़ वो दरख्त थी,
दिल में न किसी के प्रीत कुछ थी।

मूर्छा नहीं जाती
जीवन उसकी देखकर।
दया नहीं आती?
अवस्था उन की नज़र कर।

लन्दन प्रति :—१—दर; २—की।

२६

जिन्दा मुर्दा की तरह पड़ी थी,
मुर्दा जिन्दा की शकल बनी थी।

"कारावास" और "चन्द्रलोक" और वां के सारे लोग बेचारे।

हाय ! ओफ़ ! अह ! छी !
अरे आरे
मेरे प्यारे !"

यह सब शब्द उस कामिनी के मूर्छित लब से निकलते थे।

कह कर वह कभी
"अरे आरे
मेरे प्यारे !"

निद्रा ही में हंसती।

इन शब्दों के सोंच से
मिलती थी खुशी
होश नहीं गो क़रार थी
आती थी हंसी।

तसवीर सी थी पड़ी वहां वह,
सांसों की भरी पड़ी थी वां वह,

पानी जा पड़ा तो होश आया।
मूर्छा गई टूट जोश आया।

पर एक तरह की अजब घबड़ाहट थी।
जैसे स्वप्न भयानक देखा हो,

जैसे स्वप्न का चित्र अभी जागी जबीं से मिटा न गया हो।

सोते हुए वह होश
आखिर हुए जमा सब।
पहिले की भूली बातें
आने लगीं याद सब सब।

२७

"अवश्य नयन स्वप्न ही में थी टेढ़ी"
वह कामिनि धीर सें कहने लगी
"बेशक यह तो है हिन्द की धरती।
अत्याचार की यां है नहीं बढ़ती।
सुध में वक्तृता यां पकड़ाती नहीं किसी को।
डर है नहीं किसी का जी चाहे जो सो बोले।[१]
तोबाह कहां है राजा के सिपाही?
आते थे मुझे पकड़ने को कहां जी?
जाती थी मैं काराबास क्यों कर?
मरती थी कहा में किस से लड़कर?
चन्द्र लोक की हूँ मैं निकाली
है अत्याचार जहां भारी।
यह कह कर लेक ख्याल आई जो दिल में,
भींगी थीं उसकी नयन वां जल में।
रोलाइ में बाल को र्मातो[२] थी वह।
उदासी सदा से बोलाने लगी वह:—
"अरे प्यारे
मेरे प्यारे"।

लंदन प्रति के शुद्धिपत्र के अनुसार :—१—बोलो ; लन्दन प्रति :—२—शर्माती।

२८

दरख्तों को फिर वह सुनाने लगी
बहुत रोके यह अपनी जीवन कहानी।
"चन्द्र लोक है देस मेरा वी[१] एक अमीर की कन्या हूं कुमारी
कुमारी नहीं कुमारी, हां कुमारी ही हूं मैं"।
सांस एक लेके "ओह क्या कहूँ मैं,
समझो तुम्हें जो बूझ पड़े, पर मैं एक विधवा हूँ कुमारी।
माता नहीं हमे हैं।
जीते मेरे पिता हैं।
जौं आंख खुली मेरी उस भूमि में तौही वह बेचारी जहान से सिधारी
एक दूसरी माता शीघ्र आईं,
पर मेरे लिये न प्रीत लाईं।
सच हैं मैं प्रीत के योग नहीं, आशा इसकी है यह भूल हमारी।
यां' तो लड़की कभी ऐसी नहीं होती होंगी ?
प्रीत के योग बे माता के यह होती होंगी।
सोलह वर्ष तक यों ही रही और प्रीत के बिन रही जीवन अंधिआरी
एक दिन शुभ अशुभ मुहूर्त में बैठी मैं थी,
कोठे प झुकाए सिर को झंकती मै थी।
दैबात उधर से एक युवा आ निकला
और देख दया से चाहने मुझको लगा।

२९

उस दिन से हुई गले की उसकी मैं हार,
और खूब ही मैं भी उसको करती थी प्यार।

लन्दन प्रति :—१—वो।

मिलती थी मैं रोज़ उससे जा एक बन में,
फिरती थी मैं साथ उसके उस कानन में।
थे बीतते दिन इसी तरह से,
वह प्यार के दिन, अहा ! इसी तरह से।
दुनियाँ से हमें नहीं था कुछ सरोकार,
हम उसके हमारा था वह संसार।
बेलों के वह झूड़ों में देखा के छिपना,
मुख चुम्बन बाद फिर बन से निकलना,
नयनों की चमक को देख उसकी जीती मैं थी,
आगोश में उसके जाके फिर भी जीती मैं थी।

वह था हम से खुश,
हम थे उस से प्रसन्न,
दिन थे मेरे खुश,
मन थे मेरे प्रसन्न।

बड़े बहार के दिन थे वह, हाय बीत गये !
वह दिन कि शौक़ से कटते थे, हाय बीत गये !

मेरे प्यारे कहाँ ?
वह सिधारे कहाँ ?
वह दिन है कहाँ ?
वह बन है कहाँ ?
प्रति ध्वनि ने जवाब दिया "कहाँ" ?

३०[१]

रोने लगी कहके यह वह अबला।
हिलने लगा गुप्त तार दिल का।

लन्दन प्रति :—१—संख्या नही है।

याद आये जो प्रीत के वह दिन थे,
चिल्लाती थी कहके "अरे प्यारे"
उस बन में ख़्याल उस की भरते
फिरती थी जहाँ कभी ख़ुशी से।
उस यार के साथ जो था छूटा,
था नाता प्रीत का यह जिससे टूटा।
एक बोझ बहुत गिरा थी जी पर यों
पत्थर हो चर्खा कपास पर ज्यों।
जब ढेर से चिन्ता के कहती थी कुछ तब होती थी हल्की बोझावट भारी

३१

फिर कहने लगी सुनो दरख़्तो !
रोओ यदि रो सको दरख़्तो !
याँ की दरख़्त रोयगी काहे को ? अबला की यहाँ नहीं ऐसी ख़राबी
पुष्प बृष्टि होती है यहाँ, और प्रीत की राह चिकनी है सारी।
हम लोगों की प्रीत स्वप्न[१] एक थी,
नींद अथवा भूल या हेमाक़त एक थी।
थी कैसे मज़े की हाय वह नींद !
टूटी प बहुत ही जला टूटी हाय वह नींद।
एक रोज पिता ने हमको देखा,
उस प्यार के साथ बन में तनहा।
भूलूंगी नहीं उस दृष्टि को हर्गिज़ छाई जिससे जीवन पर अंधियारी।

लन्दन प्रति :—१—स्वप्न।

प्यारा मेरा जिस घड़ी हुआ मुझसे जुदा
समझा कि कुमारी ही हुई मैं विधवा

कहते हुए बाप ने मुझे पकडा
"तू बेहया है घर को जा अभी जा।"

और दातों प दांत मसमसा के बोले
"कुछ तू भी जहेज में अबे ले"।

कह कर यह लगाई ऐसी चपत
धड़ वह गिर सा[१] बेहोश चम्पत।

मैं भी हुई शन से मूर्छावत।
लाय मुझे वह उठा मकां पर।
छोड़े उसे मुर्दासा वहां पर।

जब होश हुआ माता ने कहा अब होगी एक असमी बरस वाले की प्यारी।

३२

दिनों तीन चार पाई पड़ी।
फिर बहुत दिन जनूं सो रही।

शक्ति चिन्तना की भी न थी बाक़ी।
याद पहिले की वार्दात न थी

ख़ाब गफ़लत में चैन से सोती
लोग कहते कभी पुकार उठती
(पर मुझे याद है नहीं कुछ भी)

अरे प्यारे
मेरे प्यारे

इसके परे जब होश हुआ तो दिमाग़ में थी गोरख धंधारी।

लन्दन प्रति के शुद्धिपत्र के अनुसार :—१--गिरा हो।

सोई थी जबतब थी में कुमारी और उठी तो हो गई शादी हमारी।

हाय शादी हुई थी
बेहोश में जब थी
मैं सोलह बरस की
वह अस्सी बरस के
देख इनको मैं रोती
देख हमको वह हंसते

क्या करो मुझे प्यार करो माता ने बनाया है तुमको हमारी
मैं हूँ अमीर मर जाऊंगा जब तब दौलत होगी हमारी तुम्हारी,

मर ही गये वह बिचारे उसी दिन हो गई में विधवा पर कुमारी
माता मेरी संतुष्ट हुईं और घर लाई वह दौलत सारी

बाद इसके वह जिन्दगी मेरी
ग़म गीर दिल प' एक पहाड़ हुई
पास मेरे नहीं थी मौत आती
वह बेचारी थी हम से शर्माती
एक बरस ग़म का योंहीं बीत गया
पर नहीं दिल हुआ ज़रा हल्का
एक दिन बैठ यह ख़्याल आया
ख़्याल क्या आया एक ज़वाल आया

कि योगिन बन के बिभूत रमा और कहके मैं "हा"! पितृगृहि से सिधारी

वां से निकली तो फिर गई बन
वही बन जो कि फिरता था मन मन
घूमने में लगी इधर वो उधर
कि एकाएक पड़ी नज़र-किस पर?
ज्यों ही बिछुड़ी सी थी, मिली जाके
नोच डाला पिता ने फिर आके

जोर से और घुमा के दे चक्कर
शून्य में फेंका यां गिरी आकर।
"हाय वह देश चन्द्र लोक मेरा !
हाय प्यारा मेरा कहां है पड़ा !
हाय जब वां से में निकाली गई !
हाय तब बिजली मुझ प' क्यों न गिरी ?"
ज्योंही यह कलाम निकला था कि शन से
बिजली त्यों ही गिरी प' हम चौंक उठे
कहानी मेरा, प्यारे पढ़ने वाले
सब स्वप्न ही था जो देखते थे।

●

मौलवी इल्ताफ़ हुसेन दिल्ली निवासी कृत

["एक बेवे की मुनाजात" से]

ऐ अच्छे और बुरे के भेदी !
खोट[१] के और खरे के भेदी !
छिपी ढकी के खोलने वाले।
बुरी भली के तौलने वाले !
भेद दिलों के जानने वाले !
पाप और पुण्य के छानने वाले
ऐब और गुण सब तुझ प' हैं रोशन।
पाप और पुण्य सब तुझ प' हैं रोशन।
ऐब न अपना तुझको जताना,
है दाई से पेट छिपाना।

लन्दन प्रति :—१—खोटे।

मैं नहीं आख़िर पाक बदी से।
बनी हूं पानी और मिट्टी से।

तूने बनाया था मुझे जैसा,
चाहिये था होना मुझे वैसा।

बस हमें जितना तूने दिया है,
उस से सिवा ताक़त हमें क्या है?

कान, और आंखे, हाथ, और बाज़ू,
जिन जिन पर था यहां मुझे क़ाबू,

सब को बदी से मैंने बचाया।
सब को ख़ुदी से मैंने हटया[१]।

उठते बैठते रोका सबको
सोते जागते टोका सबको।

हाथ को हिलने दिया न बेजा
पांव को चलने दिया न टेढ़ा।

आंख को उठने दिया न इतना,
जिससे कि पैदा हो कोई फ़िला।

कान को रखा दूर बला से,
उपरी आवाज़ों की हवा से।

रोक के और यों थाम के आपा।
मैंने यह काटा अपना रंडापा।

एक न संभला मेरा संभाला,
था बेताब जो अंदर वाला।

हाल करूं मैं दिल का ब्यां क्या?
हाल है दिल का तुझसे निहां क्या?

लंदन प्रति :—१—हटाया।

धूप थी तेज़ और रेत थी तसी,
मछली थी एक उस में तड़पती।

जान न मछली की थी निकलती,
और न सरसे धूप थी टलती।

गो दम भर इस दिल की लगी ने,
ठंढा पानी दिया न पीने।

तू है मगर इस बात का दाना।
मैं ने कहा दिल का नहीं माना।

जोर था मेरा दिल प' जहाँ तक,
मैंने संभाला दिल को वहां तक।

थामना दिल का काम था मेरा,
और थमाना काम था तेरा।

पकड़े अगर तू दिल की ख़ता पर,
मैं राजी हूँ तेरी रजा पर।

रख तकलीफ़ में या राहत में,
डाल जहन्नुम या जिन्नत में।

अब न मुझे जिन्नत की तमन्ना,
और न ख़तरा कुछ दोज़ख़ का।

आयागी जिन्नत रास[1] कब उस्की ?
जलने में जिस्की उम्र कटी हो।

डर दोज़ख़[2] का फिर उसे क्या है ?
जिसने रंडापा झेल लिया है।

पर तुझसे एक अर्ज़ है मेरी।
रद न हो दर्गाह में तेरी।

लन्दन प्रति :—१—राम; २—दोज़क्।

जो क़िस्मत ने मुझ को दिखाया।
ख़ुश नाख़ुश सब मैंने उठाया।

मुझ नाचीज़ को[1] है क्या ताक़त?
जो मुंह पर कुछ लाऊं शिकायत।

उम्र बहुत सी काट चुकी हूं[2]।
यह दिन भी कट जायंगे जौं तौं।

अपने लिये कुछ कह नहीं सक्ती[3]।
पर यह कहे बिन रह नहीं सक्ती[4]।

मैं ही अकेली नहीं हूं दुखिया।
पड़ी हैं लाखों पर यही बिपता।

बस के बहुत यहां उजड़ गये हैं।
बन के सहस्रों बिगड़ गये हैं।

जलें करोड़ों इसी लपट में।
पदमों फुंकी इसी मर घट में।

बालियां एक एक जाति की लाखों,
व्याहियां एक एक रात को[5] लाखों,

हो गईं आख़िर इसी अलम में,
काट गईं उमरें इसी ग़म में।

सैकड़ों बेचारी मज़ल[6] में,
भूली नादानें मासूमें,

व्याह से अनजान और मंगनी से,
बनी से वाक़िफ़ और बंनी से,

माओं से जो मुंह धुलवाती थीं,
रोरो मांग के जो खाती थीं,

लन्दन प्रति :—१—की; २—हूं; ३-४—सकती; ५—की; ६—मजलूमें।

थपक थपक थे जिनको सुलाते,
घुड़क घुड़क थे जिनका[1] खिलाते,

जिनको न शादी की थी तमन्ना,
और न मंगनी का था तक़ाज़ा,

जिन को न आपे की थी सुध कुछ,
और न रड़ापे की थी सुध कुछ,

भली से वाक़िफ़ नहीं बुरी से,
बिदा से मतलब था न बरी से,

रुख़सत चाले और चौथी को,
खेल तमाशा जानती थीं जो,

होश जिन्हें था रात न दिन का,
गुड़ियों का सा व्याह था जिनका,

दो दो दिन रह रहके सुहागिन,
जन्म जन्म को हुईं बिरोगिन।

दुलहा ने जाना न दुलहिन को।
दुलहिन ने पहचाना न सजन को।

दिल न तबियत शौक न चाहत,
मुफ्त[2] लगाली व्याह की तोहमत।

शर्त से पहिले बाज़ी हारी?
व्याह हुआ और रहीं कुवारी?

शैलानी जब बाग़ में आए,
फूल अभीं थे खिलने न पाए।

फूल खिले जिस वक़्त चमन में,
जा सोए सनानी[3] बन में।

लन्दन प्रति :—१—जिनको; २—मुफ़त; ३—सैलानी।

पीत न थी जब पाया पीतम,
जब हुई पीत गंवाया पीतम।

होश से पहिले हुई हैं बेवा,
कब पहुँचेगा पार प' खेवा?

खैर से बचपन का है रंडापा,
दूर पड़ा है अभी बुढ़ापा।

उम्र है मंजिल तक पहुँचानी,
काटनी है भरपूर जवानी।

शाम के मुर्दे का है य' रोना,
सारी रात नहीं अब सोना।

आई नहीं दुनिया में एलाही।
ऐसी किसी बेड़े प' तबाही।

आई बिलकती गईं सिसकती!
रहीं तरसती और फड़कती!

कोई नहीं जो ग़ौर करे अब?
नब्ज़ प'[१] उनकी हाथ धरे अब?

दुःख उनका आए और पूछे?
रोग उनका समझे और बूझे?

चोट न जिनके दिल प' लगी हो,
वह क्या जानें दिल की लगी को?

बदर्दों से पड़ा है पाला।
तू ही अब उनका है रखवाला।

अपनी बीती है यह कहानी।
अब यह धान रहे बिन पानी।

●

लन्दन प्रति :—१—क।

३रा परिच्छेद

पण्डित-स्टाइल[1]

बाबू लक्ष्मी प्रसाद मौजे मान पुरा जिला मोजफ़्फ़रपुर निवासी कृत

[विहार-बन्धु ६ दिसम्बर, १८७६ ई० से]

हाय ! पीड़ित न रहे, जी मेरा किस भांत निदान
हृदया जाय ददर क्यो न निकलने प', हो प्रान।
शोक-सागर में भला डूब न क्यों लुप्त हो ज्ञान।
मित्र बैरी पड़े बूझ, अपना पराया, अनजान।
देश को हो य' दशा, और य' गत लोगों[2] की।
बिना संदेह, है, मारी गई मत लोगों की।

२

हाय छन न विसरता है तेरा दुख मन से,
ले गया कौन बदल सोने के घर को बन से।
किस लुटेरे को हुआ राज तेरे अन धन से।
कौन सा रोग गया, तुझ में समां, यों सन से।

१—लीके लीक गाड़ी चले, लीके चलें कपूत।
बिना लीक तीनों चलें शायर शूर सपूत।

२—लागों।

आर्य्यावर्त ! तू, क्यों करती है, दिन रात विलाप ,
कौन से क्रूर हृदय ने, य' दिया है सन्ताप।

३

दुर्दशा, तेरी है, जब ध्यान में आती इकबार ,
आंसु, आंखों में उमड़ आता है, बंध जाता है तार।
सोंच यों व्यग्र, है करता, कि न रहता है विचार ,
सर्वथा जी से, विसर[1] जाता है जग का व्यवहार।
सोना स्वप्न होता है, अच्छा नहिं अन लगता है ,
शोक की आग से भस्म होने, बदन लगता है।

४

एक दिन वो थे कि था नाम तेरा ही निकला।
तेरिही जीत की हर देश में, फिरती थी धजा।
थी न अन धन कि कमी[2], सब हि सब था पूरा।
आंख, जिस ओर को उठती थी, उधर सब कुछ था।
यां, जो शोभा थी, कहीं देख नहीं पड़ती थी।
अप्सरा स्वर्ग से आने के लिए मरती थी।

५

है कहीं नाच, कहीं गान का बंधता है समा ,
कहिं है, व्याह की हलचल, कहिं जग है ठनता।
कहिं मुनड़[3] का है, उत्साह, कहीं है अर्चा ,
जौन दिस देखो, वहीं हर्ष का, है रंग जमा।
शोक को, ठांव न मिलती थी कहीं रहने की ,
शोक का, कान तलक, नाम न आता था कभी।

लन्दन प्रति :—१—विमर; २—कभी; ३—मुण्ड।

एक मन्दिर है, कि, है जिस प' कलस[१] सोने का,
सर्वथा रत्न जड़ित दूसरा आलय, है, खड़ा।
एक से एक सरस, एक से एक, है अच्छा
किस को मुंह है कि जो, वर्णन करे उनकी सभा।
बुद्धि की लीक अटक जाय, उन्हें देखे से,
विश्वकर्मा कि भी आंखों को[२] चका चोंध लगे।

७

हाय ! वह राज हुआ क्या, नहीं मिलता है, पता,
कहां वह लोग हैं, जिनको न कभी थी चिन्ता,
वा दिवस क्या हुए, जिनमें कि, सदा उत्सव था।
बुलबुला सा, कहां, वह घर गये, एक बार, बिला।
स्मरन, जी में जब इन सभ का, कभू आता है,
बदले, आंसू के, इन आंखों से लहू आता है।

८

उठ गई सम्मति आपस में न कुछ मेल रहा
जी में, लोगों के, लिया, द्रोह ने घर अपना बना।
एक से एक को निर्मूल, गया हो खटका,
भाई बेटे का, न विश्वास, कोई करता था।
शस्त्र चलने लगा, बातों प' ठिकाना न रहा।
एक दो खोये बिना, कोई घराना न रहा।

९

थे, अहंकार के मद से, यहां उन्मत, सभी,
शत्रुओं की, हुई, मनकामना बस वां पूरी।

लन्दन प्रति :—१—कलश; २—की।

अकस्मात, ऐसे उमड़ आये, कि सावन कि नदी,
काल प्रेरित, जो, भिड़े उन से गई, जान, उनकी।
लुट गया देश, हुआ नास, धन और सरबस का,
राजा और रंक में, अन्तर, नहिं तिल मात्र, रहा।

१०

जहां मन्दिर, थे, खड़े वां' प, हैं कांटे उपजे,
बस्तियां, बस गईं शृगाल, खर और सूकर से।
यां' कि लोगों कि दशा, कैसी थी, क्या कोई, कहे,
लेखनी का हिया, फट जाय, जो लिखने बैठ।
आठ पख उनका असह दुख देख घटा रोती है,
सूर्य को ताप - ग्रसित छिन्न छटा होती है।

—ल० प्र०

योगी[1]

"बन है सुन सान देखिये क्या हो,
पथ का मिलता नहीं पता मुझको।

सूर्य भी अस्त होने वाला है,
थोड़ी ही देर तक उंजाला है।

बदि है रात होगी अंधियाली,
काश में छाइ है घटा काली।

वायु भी वेग युक्त चलता है,
त्रास के मारे जी दहलता है।

ऐं! भला कौन है वहां प' खड़ा,
जाउं देखें[2] तो है वोह[3] क्या करता।

मिले पथ का कदापि उससे पता,
दे निकलने की राह कुछ बतला।"

इतना कहकर पथिक वहां प' चला,
था जहां एक मनुष्य शान्त खड़ा।

जा निकट, जान योग का साधक,
पूछा सनमान युत झुका मसतक[4]।

"आप हैं कौन, यां' प' करते हैं क्या?
इस समय बन में यों बिचरते हैं क्या?

किस लिये बन गये जटा-धारी?
क्यों भभूत अंग अंग में सारी?

किसके मिलने का योग साधा है?
आप के सुख का कौन बाधा है?

१—यह आदि का पत्र पहिले नहीं मिला था। लन्दन प्रति :—२—देखूं; ३—वो; ४—मस्तक।

रहता है किसका ध्यान नित मन में
कौन सा नाम जपते हैं बन में ?

किस लिये नाम ग्राम त्याग किया ?
हो गया क्या है, क्यों बिराग किया ?

किस की, जी में, छटा समाई है ?
किसलिये यह दशा बनाई है ?

रात दिन किस का साग[१] रहता है ?
क्यों इन आंखो सें नीर बहता है ?

कुछ पथिक पर कीजियेगा दया ?
सूनते कुछ आप हैं, मैं कहता हुं क्या ?

मार्ग मिलता नहीं है कानन में,
क्या करूं जी पड़ा है उलझन में।

जाउं किस ओर कौन ठांव रहूं,
यदि अपनी कहूं तो किससे कहूं।

आप पर कुछ है यां' का भेद खुला ?
कौन पथ है सुगम बताइयेगा ?—

है "कठिन पथ, निशा है अंधियाली,
पड़ी[२] नभ पर घटा की है जाली।

शब्द घन का गगन में होता है,
त्रास सुन सुन के मन में होता है।

दिमिनी जब-न तब दमकती है,
नेत्र में तिरमिरी सी[३] लगती है।

बन सिवा कुछ न है कहीं यां पर,
नाम बस्ती का है नहीं यां पर।

लन्दन प्रति :—१—सोग; २—पडि; ३—सि।

योजनों तक न है सदन कोई,
पांव रखता है यां न जन कोई।

बिधि प्रेरित कोई जो आता है,
काल के मुंह में त्रान पाता है।

होता है बाघ सिंह का पकवान,
फंसता है राक्षसों के[1] पास[2], में आन।

दला जाता है गज के पांव तले,
मारा जाता है भालु शूकर से।

कुछ करे पर न जान है बचती,
ग्राम का मुंह न देखता है कभी।

वोह[3] दहन है अभी जो देख पड़ा,
है छली राक्षसों के मुंह की प्रभा।

दिन को आठों दिशा बिचरते हैं,
माया रातों को नित्त करते हैं।

पर कुटी मेरी[4] है निकट यां से,
चलो रह जाओ आज साथ मेरे।

चैन से रात भर करो विश्राम,
प्रात पश्चात खोजना घर ग्राम।

●

लन्दन प्रति :—१—कि; २—पाश; ३—वो; ४—मेरि।

योगी[१]

इतना कह, कर में ले कमंडल को,
चला चुप चाप ताल तट जल को।[२]
नीर ले तीर पर उपस्थित हो,
कह उठा "मेरे साथ साथ चलो"।
अब जो बृक्षों के[३] ओट से होकर,
कोई देखे तड़ाग के तट पर,
दृष्टि आवेंगे, रात के पट से,
वेग संयुक्त, दो मनुष्य चलते।
आगे योगी था बाट बतलाता,
था बटोही परे परे जाता।[४]
जब कुटी के निकट, वो' आ पहुंचे,
कहा योगी ने यों बटोही से।
"यही आश्रम है मेरे रहने का।
यहीं करता हूं, योग, जप, पूजा।
यहीं रहता हूं, ध्यान में तत्पर,
यहीं करता व्यतीत हूं, अवसर।
यहीं करता हूं, अन्न औ जलपान,
यहीं होता है, मुझको सांझ विहान।
यहीं धन, धाम, है, मेरा यां पर,
सेवता हूं इसी को, आठ पहर।
अब यहां तुम खड़े रहो, छन मात्र,
जब तलक आउं मठ में रख जल पात्र"।[५]
इतना कह, खोल द्वार मंदिर का,
हाथ में जल लिये, प्रवेश किया।

१—इसके आदि का पत्र नहीं मिला।

लन्दन प्रति :—२—चला योगी तड़ाग तट को; ३—कि; ४—पीछे से था पथिक चला जाता; ५—अब तक आऊं मैं मठ मे रख जलपात्र।

रख के जल-पात्र, आग को सुलगा,
दीप को बाल कर,[1] धुनी को जगा,

पुनि आया जहां खड़ा था पथिक,
चाल रोके हुए अड़ा था पथिक।

कहा—"बस तात! अब चलो भीतर,
खाओ फल, सो बिताओ चार पहर।

रात सिर पर है, घोर है कानन,
घात में फिर रहे हैं, राक्षस गरग।

यदि कोई यहाँ प' आन पड़ा।
होगा निश्चय, बिनाश हम सब का।

दिन निकलने प' हो जहां जाना
देखते भालते वहां जाना।

मुझ से भी जो सहायता होगी,
दूंगा, मोड़ूंगा मुंह न तुम से कभी।

अब है कारण बिलम्ब का, फिर क्या?
किस विषय का है मन में सोंच बंधा?

क्यों हिचकते हो, यां' के रहने से?
कुछ कहो भी तो, मेरे कहने से?

ऐं! सुसकते हो क्यों हुआ है क्या?
स्मरण चित्त में आगया किसका?[2]

जी में है कौन दुख किये डेरा?
कौन से व्याध ने है आघेरा?

किस का है त्रास यों किये जर जर?
कौन सा गाढ़ आपड़ा, सिर पर?

लन्दन प्रति :—१—औ; २—स्मरण तुमको आगया किस का?

अपना ब्योरा तो कुछ कहो चल के,
मठ में इस काल तो रहो चलके"

इतना कह हाथ को पथिक के पकड़,[1]
चला आश्रम में, साथ ले, सादर।

"आह ! क्या स्वप्न देखता हूं मैं ?
नहीं सचमुच है यह, जगा हूं मैं ?
आयगी बन मे किन्तु क्यों नारी ?
कल्पना मेरी[2] झूठ है सारी।

इतना फिर नर के कर में कोमलता ?
ऊंगलियां[3] ऐसी पतली, मानो लता ?[4]

हो न हो, है अवश्य कर[5] अबला !
अभी जाता है जी से मिट दुबधा"[6]

येही[7] बातें थी[8] जी में योगी के,
उमर[9] आईं, पथिक का कर गहते।

अति चिन्तन का पर, न था अवसर,
इतने में जा पड़ा कुटी भीतर।[10]

दे धुनी के समीप, एक आसन,
यों सुधा सम, सुधारा मुख से बचन।

"अब सुचित हो, कहो तो कुछ अपनी
क्यों हो रोते, है आपदा कैसी ?

घर के छुटने कि, जी में है चिन्ता ?
सम्पदा हो गई है हान, अथवा ?
या किसी मित्र से बिगड़ बैठे ?
जो न करना उचित था कर बैठे ?

लन्दन प्रति :—१—इतना कह औ" पथिक के हाथ को धर; २—मेरि; ३—उगलियां; ४—बात है क्या ? ५—यह; ६—किन्तु जाता है मिट अभी दुबधा"; ७—येहि; ८—थिं; ९—उमड़; १०—इतने में पहुंचा जा कुटी भीतर।

हो किसी कामिनी प' या मरते ?
है कलेजा छिदा नयन सरसे[१] ?

किस का घर आज तक हुआ संसार ?
लक्ष्मी किस की[२] है ? करो तो बिचार।

मित्र है धन के पद्म के मधुकर।
श्री गई उड़ गये कपूर हो कर

फेर[३] कोई दम भरे, तो क्यों उनका ?
मित्रता तो है नाम एक बाँका।

प्रीत क्या हैं ? समूह संकट का।
प्रीत क्या है ? प्रहार औ झटका।

प्रीत लाती सवांग नट का।
प्रीत से क्यों न जी को हो खटका।

प्रीत घुन हो कलेजा खाती है,
प्रीत बन चोर, मन चुराती है,

प्रीत हो मित्र भेद है लेती,
प्रीत कर द्रोह, कष्ट है देती।

प्रीत तरुणी हो, जी लोभाती[४] है,
प्रीत बन डाकिनि डराती है।

प्रीत खिलती है हो कली, बन में,
प्रीत काँटा हो चुभती[५] है तन में।

प्रीत का रूप किस को लख आया ?
प्रीत का अंग किसने है पाया ?

प्रीत की रीत है सभी, न्यारी,
प्रीत की चाल भिन्न है सारी।

प्रीत डसती है, हो कभी अजगर,
प्रीत हो प्रेत, चढ़ती[६] है सिर पर।

लन्दन प्रति :—१—सरसे; २—कि; ३—फिर; ४—लुभाती; ५—चुभति; ६—चढ़ति।

प्रीत का घाव है नहीं भरता,
प्रीत के रोग की न कुछ है दवा।

प्रीत के विष का है उतार नहीं।
प्रीत के डंक का है, झार[1] नहीं।

प्रीत कब कब हुई है सुखदाई ?
प्रीत कर किसने श्रेष्टता पाई ?

प्रीत कब किसके काम है आई ?
प्रीत की टेव किस को है भाई ?

(प्रीत के हाथ, क्या मिला नल को ?
कौन सरबस भला मिला नल को ?

प्रीत करने से क्या दमन को हुआ ?
कौन उत्साह उस के मन को हुआ ?)[2]

प्रीत के पेड़ का बुरा फल है,
प्रीत अमृत नहीं हलाहल है"

वाक्य यां' रुक गया तपस्वी का,
जो उमड़ आया, आगे बढ़ न सका

चेष्टा बस उतर गई मुंह की,
आंख[3] भर आई[4], अपनी[5] सुध न रही

रोंगटे हो गये खड़े तन पर।
चौंक उठा बैठे बैठे आसन पर।

पुनि पूछा पथिक से, ढारस धर,
"हां ! तो फिर मेरी[6] बात का उत्तर ?"

यां' से उत्तर[7] दिशा, है एक बस्ती,
जान्हवी तीर पर, विचित्र रची।

लन्दन प्रति :—१—झाड़ ; २—ये चार पक्तियाँ लन्दन प्रति में नहीं हैं; ३—आखे; ४—आइ ; ५—अपनि ; ६—मेरि ; ७—पूरब ।

छबि, किस मुंह से, उस कि हो वर्णन,
स्वर्ग है उसके सामने, कानन।

परमोदार वां' का, है राजा,
तनया उस कि हूं में चन्द्र-कला।

एक ही अपने बाप की हूं में।
लाड़ औ' प्यार की पली हूं में।

राज मंदिर में, राजती नित थी,
सभी कुछ प्राप्त था, सुखी-चित थी।

घर के बाहर न, पांव थी रखती,
सदा रहती थी[१] हर्ष रस में पगी।

मुंह प' दुख का न नाम आता था,
शोक द्रोही नहीं दबाता था।

जी में, चिन्ता जगह न पाती थी,
कभि तन पर, न आंच आती थी।

मोदक इत्यादि, भोज्य था मेरा,
पान करने को जान्हवी-जल था।

पुष्प शय्या[२] प' कर बदलती थी,
थक गई, दस क़दम जो चलती थी।

बैठे बैठे जो जी था घबड़ाता,
स्मरण बाटिका का था आता।

वहां जाकर कलोल करती थी
छन यहां छन वहां, विचरती थी

कभि छिपती थी कुंज में जाकर
कभि करती भ्रमण थी[३] आ बाहर।

कभि तालाब में नहाती थी,
कभि बेड़ बना बहाती थी।

लन्दन प्रति :—१—थि ; २—सज्या ; ३—थि।

कभि भौंरो का गूंज थी सुनती।
कान्ति पद्मों कि देखती थी[1] कभी,
धज्जियां फूल[2] की, उड़ाती थी।
देख कलिका[3] को, मुंह चिढ़ाती थी,
मोर को सैन से बोलाती थी।
बुलबुलों की सी[4], चह चहाती थी,
सर निकट जाके, सिर नवाती।
छाया देख अपनी[5] मुस कुराती थी।
ताल देती थी, गान करती थी।
नाच के नाम पर मुकरती थी।
मेल संयुक्त थी, बिगड़ती थी।
यों ही क्रीड़ा अनेक करती थी।
सूर्य्य छिपने प' घर थी[6] करती[7] पयान,
पथ में, सखियों से[8] छेड़ती हर आन!
चुटकियां लेती,[9] फबतियां कहती,
सुख परस्पर के हास्य से लहती।
जा भवन, भूषण और बस्त्र उतार,
पुनि कर सिर से पांव तक सिंगार।—
(पुनि मिस्सी जमा, लगा अंजन,
पुनि अंगों में डाल आभूषण।)[10]
पुनि सौरभ-शरीर में मल के,
पुनि जोड़े बदन प' सज धज के।
सखियों की मण्डली में जाती थी,
ताल सुर का समा जमाती थी।

लन्दन प्रति :—१—थि; २—फूलों; ३—कलियों; ४—सि; ५—अपनि; ६—थि; ७—करति; ८—को; ९—लेति।

१०—पुनि जोड़े बदन प' सज धज के
पुनि मिस्सी जमा, लगा अंजन।

बाजे बजते थे, गान होता था।
बैठे बैठे बिहान होता था।[१]
फिर वही दिन था, फिर वही थि निशा,
फिर वही वाटिका, वही घर था।
वहि फल, फूल, पेड़ पात लता,
वहि चिड़ियों का बोल मधु सींचा।
वहि गाना, बजाना, हास्य, विलास,
वहि सुख, चैन, वही हर्ष, हुलास।
हाय! वह दिन" बस इतना था कहना,
आंखें भर आईं, रुक गई जिह्वा,
रंग मुंह का बदल गया छन में,
आ गया कुछ मसोस सा मन में।
दस निमिष तक न कह सकी कुछ भी,
पुनि छाती प' हाथ रख बोली।
"एक दिन थी खड़ी अटारी पर,
छबि पुर कि बिलोकती सुन्दर।
उत्तम उत्तम सुवर्ण के आलय,
देख कर जिनको इन्द्र को बिस्मय;
अति रंजन तड़ाग निर्जन में,
चर्चित होते बरुण विलोक जिन्हें;
वाटिका दिव्य, फूल की क्यारी,
कुंज गुंजान, बन सघन झाड़ी;
पालकी, रथ, मतङ्ग मतवाले,
अस्व जिनके चरण पवन चुमे;
स्त्रियां कामिनी, पुरुष सुन्दर,
आते, जाते, खड़े, भरे घर घर;

१—लन्दन प्रति पृष्ठ ५७ :—[१८८७ की प्रति में नहीं है]

लन्दन में छपी प्रति से :—[पृष्ठ ५८]

जात्री दूर दूर देशों के,
करते अन जल विशाल वृक्ष तले;
बहुरि थे जिनके घर निकट वां' से;
चले जाते बिना बिलम्ब किये;
देखती देखती गिरी होकर
मूर्च्छित, प्रीत, फांस में फंसकर।
एक पुरुष, जिसके अङ्ग की शोभा
देख मन में मदन के हो लज्जा,
था खड़ा एक विटप कि छांव तले,
देखता मुझ, प' टकटकी बांधे।
मोरि आंखे जो जा लड़ीं एक बार,
गिरा मस्तक प' प्रीत का अङ्गार।
लूक बरसा शरीर के बन में।
राख जलभुन के होगई छन में।
छन गई प्रीत बाण से छाती;
गिरि पृथ्वी प' चक्करें खाती।
कौन हूं, कर रही हुं क्या यां' पर,
क्यों व्यथित हूं, न सुध रही तिलभर।
पुनि जब सावधानता आई,
पड़ी शय्या प' देख घबड़ाई।
आंखें खोलीं, पलक उठा देखा,
हाय! क्या देखती थि क्या देखा,
एक सखी फूट फूटकर रोती,
एक हो व्यस्त प्रान को खोती,
एक चुपचाप सिर झुकाये हुई,
एक अंचल से मुंह छिपाये हुई,
एक पत्थर प' सिर को टकराती,
एक मुंह देख देख बिलखाती,

लन्दन में छपी प्रति से :—[पृष्ठ ५६]

एक विस्मित ही ताकती ऊपर,
एक, भयभीत, कांपती थरथर,
एक नख से कुरेदती धरती,
ठढि सांस एक सखी खड़ी भरती,
एक उदासीन बैठि कोने में,
एक प्रवृत्त रोने धोने में।
एक दासी जो थी समीप खड़ी,
प्रश्नोत्तर में मुझसे यों बोली।
'थी अभी राज-मार्ग से आती,
चारों दिश अपना नेत्र दौड़ाती।
देखती क्या हूँ, वृक्ष से छिप कर,
राज-मंत्री का पुत्र मुरली धर,
एक टक है तुम्हें विलोक रहा।
मुझ को पहचान किन्तु भाग चला,
लाख कहती रही, न कान दिया,
जिसतरफ़ पाया मार्ग, तान दिया।
यहि ब्योरा सुनाने थी आई,
यां' का पर डौल देख घबड़ाई।
सिर को दे पटकि द्वार के पट से,
तलमलाई, संभल के फिर झट से,
तुमको पृथ्वी से सेज पर लाई,
पुनि जा द्वार पास' चिल्लाई।
सखियां भी मेरि हांक की सुनकर,
आईं धारा सी बस उमड़ यां' पर।
इसके पश्चात जो वृत्तान्त हुआ,
जानती ही हो, कहना है फिर क्या।
जो बिगड़ने का हेतु जब पूछा,
कह दिया कुछ जो शीघ्र सूझ पड़ा।

लन्दन में छपी प्रति से :—[पृष्ठ ६०]

भेद जी का न होंठ पर आया,
अन्त मेरा न एक ने पाया।

पुनि उठ सेज से उतर बैंठी,
सखियां भी समीप आ बैंठी,

छिटकि थी, मण्डली बना बैठीं।

पहले की भांत सब लगा होना,
फिर वही दिन, वही निशा होने।

पर मेरे जी को चैन था न कभी,
सोच मुझसे अलग हुआ न कभी।

थक गई, किन्तु मन नहीं बहला,
प्रीत का बोझ कांध से न टला।

शोक की सांग से हुई झंझर,
मुह देखना बस होगया दुस्तर।

बदले आंसू के लहु रोने लगी,
विरहा नल से दग्ध होने लगी।

हो गया अंग सूख कर कांटा,
चलने फिरने का कुछ प्रभव न रहा।

योंहि कुछ काल जब व्यतीत हुआ,
एक दिन आ किसी सखी ने कहा।

१८८७ ई० की प्रति से :—["बैठे बैठे बिहान होता था" के आगे पृष्ठ ५९]

मन्त्री-सुत ने रम दिया घर से,
विन कहे एक नार या नर से।

कौन सी बात ठन गई जी में,
कौन सा दोष पाया मंत्री मे,

और जितने भवन में हैं परिवार,
किन के हाथों से, क्या हुआ अबिचार,

रूप पर किसके होगया मोहित,
कुछ न खुलता है, हैं सभी बिस्मित।

बाप मा की बिपद को कौन कहे,
ग्राम-बासी हैं सबके सब रोते।

हाय ! ऐसा सुशील औ' सुन्दर !
पुरुषों में, था एक मुरली धर।

इतना कह, ठंढी[1] सांस लेती[2] हुई,
कमला चलती[3] फिरती[4] देख पड़ी।

सुन, गई हो मैं, कथा सुन के,
गिरी[5] व्याकुल धरा प', सिर धुन के।

पुनि जब मुझ में बोध प्राप्त हुआ।
(मन में कुछ सोच सांच ठान लिया,

कहिं बालम का जा लगाऊं पता,
घर करूं त्याग, बाट लूं बन का,)[6]

लन्दन प्रति :—१—ठंढि; २—लेति; ३—चलति; ४—फिरति; ५—गिरि।
६—जी में कुछ सोच मात ठान लिया।
कहिं प्यारे का जा लगाउं पता,
योग लूं, बन में जा करूं डेरा।

मेरे लो[१] हेतु, उसने घर छोड़ा,
मुझ को धिक्कार है, जो मुंह मोड़ा।
राज मंदिर से, रात होने पर,
छाया की भांत, चुपके, आ बाहर,
चल चली राह जिस तरफ़ पाई,
जी में चिन्ता तनक नहीं लाई।
सूर्य ने मुंह जब अपना दिखलाया,
रात गत हो गई, दिबस आया।
जौन दिश[२] देखा बन ही[३] बन देखा।
नाम को भी न एक जन[४] देखा।
सारा दिन चलते चलते बीत गया,
मार्ग का किन्तु कुछ पता न मिला।
(सांझ को दर्शन आप का पाकर,
कामना सर्व हो गई निर्भर।)[५]
इतना सुन सिर से झट उतार जटा,
राज कन्या से योगी[६] जा लिपटा।
"इस कमल रूप का तेरे मधुकर,
मन्त्री-सुत हुं मैं ही[७] मुरली धर"।

—ल० प्र०

श्री सत्यानन्द अग्न होत्री कृत

(संगीत पुष्पावली से)

भजन

मुक्ति दाता हे, देव मुक्त जीवन।
यही एक प्रार्थना, काटो भव बन्धन;

लन्दन प्रति :—१—ही ; २—निश ; ३—हि ; ४—तन ;
५—सांझ को आपका हुआ दर्शन,
चाहिये अब हो कामाना पूरण"।
६—योगि ; ७—हिं।

पिंजरे में पक्षी जैसे, करे पथ अन्वेषण,
वैसे ही मम आत्म पक्षी, चाहे तुम्हें प्राणधन।
मन के बन कर अधीन, पाप से होकर मलीन;
मुक्ति चाहे दीन हो न[१], हे जग बन्दन।

भजन

आव, आव, प्राण सखा, दीन जन शरन;
करें मन, प्राण हृदय, तुम्हारे समर्पन।
त्यज अनित्य कामना, छोड़ विषय बासना;
हो के अनुगत एक तेरे, रहें नाथ चिर दिन।
सदा तुम्हारे संग रहें, प्रेम से नित नेत्र बहें;
भक्ति पुष्पांजलि दिए, पूजें तुम्हें निश दिन।

भजन

तू बिधाता, तू बिधाता, तू बिधाता, मेरा;
मैं हूं बन्दा, मैं हूं बन्दा, मैं हूं बन्दा तेरा।
एक रोटी और धोती, द्वार तेरे पाऊं;
भक्ति और प्रेम सहित, नाम तेरा गाऊं।
बाहर अन्तर देख तुझको, सत्य नित्य जानूं;
तब आदेश सुखी मन से, सार करके मानूं।
सत्य शिव सुन्दर हि मेरा, परम लक्ष्य होवे;
जग के उपकार हि में, जीवन यह जावे।

●

पण्डित जी "भाषा" में काव्य करते हैं। गद्य "खड़ी बोली" में लिखते है परन्तु पद्य नहीं।

पृथी राज के समय की हिन्दी में पद्य।

लन्दन प्रति :—१—हीन।

चंद[१] कबि प्राचीन कृत

["पृथ्वी राज रायसा, पद्मावती खंड" से]

छप्पय

पिय पृथि राज नरेश योग लिखि कागद दिन्नेव
लगन बार गुर चौथि चैत बदि दरस सुतिम्नेव
हरि हंसै दश बीस साखि सम्बत्, प्रमानह
जो क्षत्री कुल शुद्ध बरनि बर राखेहु प्रानह
देखत दिखिवत धरि चपल छनकत बेल बन करिय
पल गारि रैंनि दिन पंच मह ज्यों रुकुमिनि कन्हर बखि।

दोहा

ग्यारह सै चालीस एक युद्ध अतुल भरि रोह
कातिक सुदि बुध त्रयोदशि समर सामिली लोह।

["आल्ह खंड" से]

छप्पय

हां कि पील पृथि राज चलेव चंदेल सनम्मुख
ईश मंत्र उच्चारि बीर बर धारि यंत्र रुख
नर पति आपु संभारि बान सधानि पानि किय
खैंचि राज की दण्ड कान लगि बान पिण्ड दिय
बेधत ही कछे देत तन फूटि सनाह है बर मिलेव
सायक बाहि सँभारि धनी खग्ग खोलि डीलन पिलेब।

मौलवी स्टाइल, यूरेशियन स्टाइल और यूरोपियन स्टाइल दूसरे भाग में लिखा गया है।

●

१—यह चंद कवि महाराजे भीसल देव (लन्दन प्रति :—तीसलदेव) चौहान रण थभोर वाले के प्राचीन कबिश्वर की औलाद में थे। सम्बत् ११२० में राजा पृथ्वी राज चौहान के पास आये। मंत्री और कबीश्वर दोनों पद को प्राप्त हुए। "पृथ्वी राज रायसा" नामक ग्रंथ ६६ खंडों में, पुरानी हिन्दी में रचा। इस ग्रन्थ में सम्बत् १११० से सम्बत् ११४६ तक पृथी राज का जीवन चरित्र बड़ी कविताई के साथ बर्णन किया है। छप्पय छंद मानो इसी कबि के भाग में थे। सम्बत् ११४६ में पृथीराज के साथ यह भी मारे गये।

OPINIONS

The bearer of this Ayodhea Prasada has shown me a Hindi Grammar Vol. I which appears to me to be a good practical work, and might I think he usefully introduced into our primary Schools. He has also shown me in that of his Hindi Grammar (Vol. 2 prosody) in comprising which he appears to have taken a great deal of trouble. There is one peculiarity in the poetry embodied in this part viz., that it is written in the Khari-boli and not in the Braj Bhasha or dialect of Mathura. This is I think as it should be because the Braj Bhasha is not the dialect of principal parts of Behar. His Grammar also contains a chapter on punctuation which I believe has not been treated of by other Grammarians. If punctuation were more attended to less difficulty would be experienced in reading Kaithi documents. Ayodhea Prasada certainly deserves encouragement in the work he has undertaken, in which his heart evidently is.

Sd. H. W. Gorden
offg. District and Session Judge,
Mozufferpore 26–7–1881

Baboo Ayodhea Prasad has shown me a little Hindi Grammar written by him. It contains a number of points which I have not seen dealt with in any other Hindi Grammar written in the Vernacular. So far as I have inspected the book it seems to me to be written in intelligible language and well adopted for school purposes.

He has now written a scond part treating of prosody, in which he maintains with considerable show of reason, that if Hindi prose is written in the so called Khari boli, Hindi poetry should also be written in the same dialect, and not in Braj Bhasha. He gives several examples to show that his proposition is not only advisible but possible. I recommend his views for consideration without venturing to give myself at present any decided opinion on the Question.

Sd. G. A. Grierson
C. S.

Bankipore 21–9–1881

सूचना

"मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्द भेद" और "मोलवी साहब का साहित्य" छप कर तैयार है और परिडत जी का साहित्य और "परिडत जी की भाषा का छन्द भेद" अब छपेगा।

अयोध्या प्रसाद खत्री
मोजफ़्फ़रपुर

समालोचक और पत्र संपादक

समालोचक का पहला अंक पाकर अनेक संपादकों ने उसकी समालोचना करने की कृपा की है। उनमें से हिंदोस्थान, अवध समाचार, भारत जीवन और प्रयाग समाचार की समालोचना हमको देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। खुशी की बात यह है कि जो दो-चार लाइन में कागज़ और छपाई अच्छी है, कटाई मँटाई अच्छी है। अमुक मूल्य पर अमुक स्थान से मिलती है पुस्तक के वास्ते इतना ही लिखकर समालोचना पूरी करते थे उन्होंने भी समालोचना के लिए कई कालम लिख डाले हैं। और किसी ने एक बार अपने पत्र में जगह न पाकर वारान्तर में और लिखने की प्रतिज्ञा की है। इसी तरह जब संपादकगण समालोचना को खोगीर की भरती न समझ कर उसे अपने कर्तव्य कर्मों में समझने लगेंगे तब भरोसा है समालोचना का एक दिन हिंदी की दुनिया में अवश्य आदर होगा जो भाषा की उन्नति के लिए पहली सीढ़ी है।

हिन्दोस्थान ने तीन चार कालम लिखा है लेकिन दुःख की बात इतनी कि उतना लिखने का कष्ट स्वीकार करने पर भी सहयोगी जी कुछ युक्ति संगत बात नहीं लिख सके हैं।

संपादक महाशय समालोचक के लेखों से सहमत हैं उद्देश्य भी उत्तम बतलाते हैं किंतु भाषा में मुहावरे और व्याकरण का दोष लगाते हैं। कुछ वाक्य संपादक महाशय ने समालोचक से उद्धृत किये हैं लेकिन उनमें कोई मुहावरे का दोष नहीं दीख पड़ा। उनकी एक एक बात का उत्तर देने की तो इच्छा नहीं थी क्योंकि विद्वान लोग समालोचक का अंक और हिंदोस्थान पत्र में छपी हुई समालोचना जब सामने रखकर पढ़ेंगे तब समझ जायगे कि हिंदोस्थान के संपादक महाशय का दोषारोपण कहाँ तक ठीक है। तो भी हम एक विद्वान की लिखी हुई हिंदोस्थान की समालोचना समीक्षा अन्यत्र प्रकाशित करते हैं जिससे संपादक हिंदोस्थान का समालोचक पर जो भाव है वह प्रगट हो जायगा। इसके सिवाय श्रीमान् संपादक प्रवर भारतजीवन के सभ्यता पूरित आक्रमण का उत्तर भी हमारे पास आया है लेकिन समालोचक को ऐसे लोगों से सवाल जवाब और वाद विवाद करने का समय और स्थान दोनों नहीं है जो बिना समझे-बूझे झगड़ते और कुवाक्य प्रहार करके अपनी लेखनी का बड़प्पन प्रगट करते हैं।

सहयोगी अवध समाचार ने हिंदोस्थान की समालोचना को पुष्ट किया है और हमारी एक भूल पर हमको बहुत कुछ कहा है वह भूल यही थी कि फैक्ट (Fact) शब्द का हमने हिंदी अनुवाद नहीं किया था। इसलिये की हिंदोस्थान पत्र की शंकाओं का जवाब एक जगह छापा गया है और अवध समाचार उसकी हाँ में हाँ मिलाता है अलग उसी की बातों का उत्तर लिखना अनावश्यक समझा गया।

●

खड़ी बोली का अनुकूल समय

मेरी डायरी के पृष्ठ ३३–३४ में पं० केशवराम की एक चिट्ठी छपी है जिसमें उन्होंने लिखा था :—

(१) पं० श्रीधर पाठक को चुपचाप बैठने न दीजिये। साहित्य भंडार में वह कुछ संचय करते जायं।

(२) समालोचना उन्नति की पहली सीढ़ी है। जिस देश में लेखकों को समालोचकों का भय नहीं, लेखक निरंकुश रहते हैं। लेखों को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का उद्योग नहीं करते······

इस समय हिंदी में एक ऐसा पत्र अत्यावश्यक है, जिसमें हिंदी संबंधी सब विषयों की समालोचना रहा करें। हमारे जानते खडी बोली आंदोलन इसी का एक अंग है। हिंदी का इतिहास भी इसी का अंग हो सकता है। "समालोचक" या और कोई अच्छा नाम रखकर मासिक या त्रयमासिक कोई पत्र निकाला जाय तो हिंदी का बड़ा उपकार हो।

पं० श्रीधर पाठक ने २३ मार्च १६०१ के बाद Goldsmith के Traveller का अनुवाद "भारतमित्र" में ३० अगस्त १६०२ के अंक से फिर छपवाना शुरू कर दिया है। अगस्त १६०२ की 'सरस्वती' में भी पं० वागीश्वर मिश्र की एक खडी बोली कविता ('आकाशमंडल' शीर्षक) छपी है।

जयपुर से 'समालोचक' नामक मासिक पत्र अगस्त १६०२ से बाबू गोपाल राम गहमर निवासी द्वारा निकला है। इसमें भी एक लेख खड़ी बोली के पक्ष में 'पद्य की भाषा' शीर्षक छपा है।

"समालोचक" के संपादक को मैं सम्मति देता हूँ कि पं० केशवराम भट्ट भी समालोचक समिति के एक सभ्य बनाये जायं।

मुजफ्फरपुर
१२-६-०२

अयोध्या प्रसाद
समालोचक १ सितम्बर
१६०२ ई० पृ० १६–२१

मुहावरा

मुहावरा शब्द अरबी है। अंगरेजी में इसको Idiom कहते हैं। बामुहावरा Idiomatic। बेमुहावरा unidiomatic। अंग्रेजी में Idiom दो प्रकार का होता है; Grammatical Idiom और Phraseological Idiom। हिंदी में भी मुहावरा दो प्रकार का है; (१) भाषा संबंधी नियम और (२) योग रूढ़ि पद।

(१) भाषा संबंधी नियम प्रत्येक भाषा का स्वतंत्र होता है; जैसे अंगरेजी में shall come वा will come अर्थात् "गा आवे" और हिंदी में "आवेगा" होता है। अंगरेजी में कर्त्ता के बाद क्रिया तब कर्म आता है। हिंदी में कर्त्ता के बाद कर्म तब क्रिया आती है। अंगरेजी में क्रिया और विशेषण में लिंग नहीं होता परंतु हिंदी में होता है।

(२) योगरूढ़ि पद अर्थात् दो वा अधिक शब्दों का विशेष अर्थ-सूचक पद। अँगरेजी में Phraseological Idioms व्याकरण के नियमों के बहिर्गत होते हैं, परंतु हिंदी में नहीं। दृष्टांत के लिये 'लगना' शब्द का अर्थ।

(१) स्पर्श करना, निकट मिल जाना To touch; come in contact with "लग लग कहूँ तो ना लगे, मत लग कहूँ लग जाय।" (होंठ)

(२) मारना, निशाना मारना—To strike, hit.

(१) गेंद लग गई।

(२) लग गई जूती, उड़ गई खे(ह), फूल पानी सी हो गई देह।

(३) आग लगे तो बूझे जल से, जल में लगे तो बुझे कहो कैसे?

(३) To stick or adhere to. चिपक जाना।

(४) To be attached, joined, united. शामिल होना, संयुक्त होना।

(५) To be appended, to (be) filed with. जोड़ दिया जाना।

(६) To be fixed. Planted set. कायम होना।

(७) To be Plastered. applied प्लासटर होना, ऊपर लगाना।

(८) To fit with suit (फबना)

(९) To be arranged; Put in order. क्रम से जमाना, तरतीबवार रखना जैसे असबाब लग जाय।

(१०) To be related to; have relation with. संबंध रखना, वह तुम्हारा कौन लगता है?

(११) To give one's mind to; Pay attention. ध्यान देना, दिल लगाना।

(१२) To be attached to; fall in love with. प्रीति हो जाना।

(१) आठ पकाऊं, सोलह खाए, ले टिकया दर्जन को।
जाए, दर्जन के यार, नयना लग गये दर्जन सू।

(२) जी कहीं लगता नहीं, जब दिल कहीं लग जाय है।

(१३) To be entangled with; to form a liaison. बर्जित प्रेम रखना, लौंडी से लगा हुआ है।

(१४) To feel; Percei(v)e मालूम करना, सर्दी लगती है।

(१५) To be burnt, scorched. जल जाना, खिचड़ी लग गई।

(१६) To taste; relish स्वाद देना, यह अनार खट्टा लगता है।

(१७) To be galled chaffied, sore. ददोडा हो जाना, जखम होना, कमर लग गई।

(१८) To affect, Produce an affect प्रभाव डालना, नतीजा निकालना, आग लगाना।

(१९) To have sexual Intercourse with. विषय करना।

(२०) To be employed, engaged. काम में प्रवृत्त होना, अपने काम सिर लगो।

(२१) To be operative; to have effect, to influence. प्रयोजक अथवा फलदायक होना, दवा या बात लग गई।

(२२) To move; melt touch. प्रभाव डालना, छूना (१) दिल में लगी (२) लगी में और लगती है।

(२३) To be set (on fire) अग्नि लगाना, लगे पर पानी कहाँ ?

(२४) To be cut, wounded. कट जाना या जखमी होना, चाकू लग गया।

(२५) To burn; smart. जलन पैदा करना व तेजी करना, मर्हम लगती है।

(२६) To visit; haunt. आना जाना, यहाँ शेर लगता है।

(२७) To reach. Come up to. पहुँचना, लंगर डालना।

(२८) To be moved or at another. जहाज लगना।

(२९) To be posted (a letter) चिट्ठी डालनी।

(३०) To lie in ambush; to way lay. छुप के किसी की घात में रहना, घात में लगा हुआ है।

(३१) To hunt down. रगेदना। बरस बरस दिन दुख लग रहा था।

(३२) To attack; Injure; harm. आक्रमण करना, हानि पहुँचाना, घुन लग गया है।

(३३) To be bent upon; resolved. किसी बात को दिल से चाहना, इन्हें तो घर जाने की लग रही है।

(३४) To take root, to be rooted, fixed. जड़ पकड़ना, पौदा लग गया।

(३५) To shoot; sprout; germinate. फूट निकलना, फल-फूल लगना।

(३६) To seem, appear. दिखलाई देना, तुम्हारा भाई सा लगता है।

(३७) To be imposed lired, कर वसूल किया जाना; सब पर टिकस लगेगा।

(३८) To cost, to be spent. कुछ व्यय होना।

(१) राम कहे कुछ न लगे, दुख दरिद्र भग जाय।

(२) नये यार बिंदनी ले दे, नये यार बिंदनी ले दे।
पांच रुपैया तो दिये बालम ने, और लगे सो तू दे ले।

(३९) To be staked. दांव पै लगना।

(४०) To be valued, to fetch a price. किसी कीमत का होना, क्या दाम लगाए? क्या तुम लगाते हो, मैं दो तीन से ज्यादा न लगाऊंगा।

(४१) To be invested, laid out at interest. बिक्री होना, ब्याज पर लगी है।

(४२) To be sold, disposed of. सौ जिल्दें सर्कार में लग गईं।

(४३) To be shut, closed. बंद होना, किवाड़ या आंख लग गई।

(४४) To be displayed, exposed, on view. चौड़े खुला हुआ होना, बाजार लग रहा है।

(४५) To commence. शुरू होना।

(१) वह कुछ कहने लगा मैं चल दिया।
(२) लगा सो भगा।
(३) सातवाँ महीना लगा, सो बालक डोले पेट।
अजी जिठानी ! कहो तो रहूं पलंग पर लेट॥
रहूं पलंग पर लेट, काम न मुझसे होता।
मेरे दिल को झाड़ लगा है, यह बैरी ना होता ?

(४६) To be trained, accustomed, or used to. नित्यप्रति कार्य में आया हुआ। यह रास्ता तो पांव लगा हुआ है।

(४७) To be used, made use of, to come into use. स्वार्थ लगना, काम में आना।

(४८) To shrink, to be shrivelled, sunk, to draw in, go down. सुकड़ जाना, मारे भूख के पेट लग गया।

(४९) To be spoilt to rot (fruit). लगा हुआ फल, खराब होना, गल जाना।

(५०) To be accused falsely. मिथ्या दूषित होना, काम करे नथ वाली, और लागे चीर कुटी के।

(५१) To grow familiar, intimate. विशेष जानकार होना, कल लगे चले जो हम दम हम यार से ज्यादा। दुश्नाम दे के भिड़का है बार से ज्यादा।

'समालोचक' दिसम्बर १९०४
पृ० १३३-१३७ तक

अयोध्या प्रसाद खत्री
मुजफ्फरपुर

खंड २

स्व० अयोध्या प्रसाद खत्री

स्मृति-तर्पण

हिन्दी भाषा और उसका साहित्य

"........कुछ दिनों से हिन्दी के लेखकों का ध्यान पद्य की भाषा की ओर गया है। अब तक हिन्दी का पद्य व्रजभाषा में ही था। अब बोलचाल की भाषा में भी कविता होने लगी है। इस विषय की ओर पहले-पहल बाबू अयोध्या प्रसाद जी का ध्यान गया। बोलचाल की भाषा में कविता अवश्य होनी चाहिये। कोई कारण नहीं देख पड़ता कि हमलोग बोलें तो एक भाषा और कविता करें दूसरी भाषा में......"

सम्पादकीय, 'सरस्वती'—फरवरी-मार्च, १९०३

(सम्पा० म० प्र० द्विवेदी)

हिन्दी भाषा और उसका साहित्य

[बाबू अयोध्या प्रसाद जी ने पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी का कथन, फेब्रुअरी-मार्च १९०३ की 'सरस्वती' में प्रकाशित लेख से उद्धृत कर, उत्तर में 'मेरा कथन' शीर्षक अपना वक्तव्य समालोचक (मासिक पत्र, जयपुर वर्ष १ला, जून-जुलाई १९०३, अङ्क ११, १२; ३९ से ४८ तक के पृष्ठों से उद्धृत) में प्रकाशित कराया था। दोनों यहाँ प्रस्तुत हैं।]

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन

"सरस्वती" में हिन्दी भाषा विषयक कोई लेख, आज तक, प्रकाशित नहीं हुआ।

जान पड़ता है "हिन्द" ही से अंग्रेजी "इण्डिया" शब्द की उत्पत्ति हुई है।

यूरोप से पहले पहल पोर्तगीज लोग आए। उन्होंने भी कुछ शब्द हिन्दी में प्रविष्ट कर दिए। उनके द्वारा प्रयोग किए गए 'केमरा' (Camera) का 'कमरा' हो गया और 'आक्शन' (auction) से 'नीलाम'।

हिन्दी साहित्य का काल निर्णय करने के विषय में हिन्दी लेखकों में कई बार वाद-विवाद हुआ है। इस प्रकार के वाद विवाद में हम कोई विशेष लाभ नहीं देखते। यह एक अत्यन्त गौण विषय है।

मुख्य विषय साहित्य की उन्नति करना है। हिन्दी का साहित्य बड़ी ही दुरवस्था को प्राप्त हो रहा है। उसकी अभिवृद्धि करने की इच्छा से अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखना इस समय अत्यावश्यक है। हिन्दी बोलनेवालों का यह परम धर्म्म है। काव्य निर्णय के सम्बन्ध में

मेरा कथन

प्रकाशित हुआ—जनवरी और जून १९०१ और सितम्बर १९०२ की "सरस्वती" देखिये। 'सिन्ध' से 'हिन्द' और Indus से India।

"कैमरा" और "ऑक्शन" दोनों अंग्रेजी हैं, लैटिन से बने हैं। बेब्स्टर की डिक्शनरी देखिये। 'लीलाम' (Leilam) शब्द पोर्तगीज से नीलाम हुआ है। मेरे हिन्दी व्याकरण (बिहार-बन्धु प्रेस का छपा हुआ) का पृ० ४८ देखिये। मेरी डायरी के पृष्ठ २१ में पण्डित श्रीधर पाठक की चिट्ठी छपी है। उसमें उन्होंने मुझे लिखा था कि "हमारे निकट काल-निर्णय गौण विषय है। उसमें हम अधिक चित्त नहीं लगाते।" उसी डायरी के पृष्ठ ३३ में पण्डित केशव राम भट्ट की भी चीठी छपी है। भट्ट जी लिखते है "पाठक जी के मस्तिष्क में कविता की ज्योति है, अन्वेषण और अनुसन्धान की खुजलाहट नहीं है। Period स्थिर करने को जो आपने उनको

शुष्क विवाद करते बैठना व्यर्थ कालक्षेप करना है ("सरस्वती" फेब्रुअरी मार्च सन् १९०३)। जिस समय ब्रजभाषा के रूप में हिन्दी अपना आधिपत्य जमा रही थी, उसी समय उसकी एक दूसरी शाखा उससे पृथक हो गई। इस शाखा का नाम उर्दू है। **उर्दू कोई भिन्न भाषा नहीं है। वह भी हिन्दी है।** उसमें चाहे कोई जितने फ़ारसी, अरबी और तुर्की के शब्द भर दे, उसकी क्रियायें हिन्दी ही की बनी रहती हैं, उसकी रचना हिंदी ही के व्याकरण का अनुसरण करती है।

× ×

फ़ारसी और अरबी शब्दों से मिली हुई उर्दू नामधारिणी हिन्दी अभी कल उत्पन्न हुई है। उर्दू नामधारिणी हिन्दी में फ़ारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता होने और देवनागरी अक्षरों को छोड़कर फ़ारसी अक्षरों में उसके लिखे जाने से जो लोग उसे एक भिन्न भाषा समझते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। वह कदापि भिन्न भाषा नहीं है। वह भी सर्वथा हिन्दी ही है। संस्कृत शब्दों की प्रचुरता होने से जैसे हमारी विशुद्ध हिन्दी कोई भिन्न भाषा नहीं हो सकती, वैसे ही फ़ारसी अधिक विदेशी शब्दों की प्रचुरता होने से उर्दू नामधारिणी हिन्दी भी कोई भिन्न भाषा नहीं हो सकती।

(सरस्वती, फेब्रुअरी—मार्च १९०३)

पण्डित श्रीधर पाठक के मतानुसार तीन काल प्राचीन, माध्यमिक और आधुनिक। परन्तु पण्डित श्रीधर पाठक का नाम नहीं है।

पण्डित श्रीधर पाठक का कथन

["खड़ी बोली आन्दोलन" पृष्ठ १९]

अङ्गरेजी की भांति हिन्दी हमारी समझ में कालानुक्रम से तीन भागों में विभक्त हो सकी है।

लिखा था उसके उत्तर में कुछ चिड़चिड़ाहट की झलक है।" इतिहास लिखना और कविता करना दो भिन्न डिपार्टमेन्ट के काम हैं। इतिहास लिखनेवालों के लिये काल निर्णय बहुत ही आवश्यक विषय है। कवियों के लिये गौण और शुष्क हो सकता है। उसी डायरी के पृष्ठ ३७, ३८ और ३९ में Behar Times नामक पत्र से उद्धृत Literary note बाँचिये।

"In the advanced sheets that have reached me, I find at one place the proposed classification of Hindi literature into different periods. This Question in an important one; and it is one which should engage the attention of all literary men interested in the development and culture of the Vernacular of upper India. The classification or to speak more logically, the division of the Hindi literature into different periods must be based on a consistent and natural basis. Artificial arbitrary, and Capricious division is always misleading and never correct. There must be nothing of the nature of dogmatism in division and classification. There are two proposals before us. One is tendered by Pandit Sridhar Pathak of

(१) **प्रथम**—प्राचीन। चन्द के समय से मलिक मुहम्मद जाइसी तक अथवा कहिये पृथ्वीराज से हुमायूं तक।

(२) **द्वितीय**—मध्यकालीन वा ब्रजभाषा। इसका सूरदास अर्थात् अकबर के समय से आरम्भ है और कविता में यह अभीतक जीवित है यद्यपि हरिश्चन्द्र के साथ इसकी समाप्ति कही जा सकती है।

(३) **तृतीय**—नवीन वा खड़ी हिन्दी। यह हिन्दी यद्यपि बोलचाल में न्यूनाधिक तब से व्यवहृत है जब से दिल्ली आगरे में उदूं बोली जाने लगी परन्तु लेख के रूप में लल्लूजी के प्रेमसागर ही में पहले देखने में आई। इसलिये तभी से इसका जन्म समझना चाहिये।

Agra and the other by Babu Ayodhya Prasad of Muzaffarpur. Babu Ayodhya prasad's idea of division is more natural, more significant and more comprehensive than that of the Pandit of Agra.

Baboo Ayodhya prasad has divided Hindi into three natural periods–Periods when Hindu, Mahomedan and English Sovereigns respectively occupied the throne of India, and commanded the current of language, again he has subdivided each into different sub-periods, and classified each period into different groups.

I call upon my brother of BENARES who leads the Nagri Sabha and edits that well known intelligent and undoubtedly useful Magazine, Saraswati of Allahabad to initiate this eventful discussion."

मैं अपनी पुस्तक "खड़ी बोली का पद्य" में हिन्दी के पाँच स्टाइल लिख चुका हूँ—(१) ठेठ हिन्दी, (२) पण्डितजी की हिन्दी, (३) मुंशीजी की हिन्दी, (४) मौलवी साहिब की हिन्दी और (५) यूरेशियन हिन्दी।

(१) ठेठ हिन्दी वह है जिसमें न विदेशी शब्द हों और न संस्कृत के कठिन। इसमें तद्भव और देशज शब्द अधिक रहते हैं।

(२) पण्डितजी की हिन्दी में संस्कृत के बड़े बड़े और कठिन शब्द रहते हैं, विदेशी शब्द प्रायः नहीं रहते हैं।

(३) मुंशीजी की हिन्दी पण्डितजी की और मौलवी साहिब की हिन्दी के बीच की हिन्दी है।

(४) मौलवी साहिब की हिन्दी फारसी अरबी (कठिन तत्सम) संज्ञाओं से भरी रहती है।

(५) यूरेशियन हिन्दी में अंग्रेजी के तत्सम संज्ञा शब्द आते हैं।

(अपनी डायरी पृष्ठ १८, १९, २०, और २१ से)

मुजफ्फरपुर ३०-४-१९०१

मेरे पूज्यवाद पाठकजी, प्रणाम

"खड़ी बोली आन्दोलन" पृष्ठ १९, २० और २१ में हिन्दी के Period लिखे गये हैं। Period के मानने में मेरे आपके बीच में भेद पड़ता है। इसलिये मैंने आप से प्रार्थना की कि हिन्दी के Period को Settle कर दीजिये। उत्तर में आपने लिखा—"I think the Question of Hindi has already been settled by several writers. Let the first number of your paper issue, if necessary the Question can be again delt with in future issues." खड़ी बोली आन्दोलन के पृष्ठ ३२ की टिप्पणी में एडिटर ने लिखा है "हिन्दी की उत्पत्ति के विषय में इस पुस्तक की भूमिका देखिये।" इसकी भूमिका में हिन्दी का इतिहास लिखा जायगा। हिन्दी के Periods लिखे जायेंगे। इसीलिये हिन्दी के Periods का Settle हो जाना अत्यावश्यक है।

"खड़ी बोली आन्दोलन" पृष्ठ १६ में आप लिखते हैं। [प्रथम स्तम्भ में छपे हुए भाग को बाचियें]

(१) चन्द की हिन्दी से मुहम्मद मलिक जाइसी की हिन्दी तक एक काल नहीं माना जा सका है क्योंकि "रायसा" की हिन्दी से "पद्मावत" की हिन्दी में अन्तर है।

(१) चन्द की हिन्दी (२) मुहम्मद मलिक जाइसी की हिन्दी (३) उर्दू (मौलवी साहब की हिन्दी) (४) उर्दू का ब्राह्मणकृत संस्कार, अर्थात् पण्डित लल्लू लाल कवि की हिन्दी।

आप का माना हुआ द्वितीय काल ठीक नहीं है। लल्लू लाल यदि खड़ी बोली गद्य के साथ खड़ी बोली पद्य भी लिखे होते तो ब्रजभाषा कविता को आप खड़ी बोली का अंग कभी न मानते। लल्लू लाल ने ऐसी भूल की है कि लोग अभी तक भ्रम में पड़े हुए हैं। आपका वाक्य "यह हिन्दी यद्यपि बोलचाल में न्यूनाधिक तब से व्यवहृत समझनी चाहिये जब से दिल्ली आगरे में उर्दू बोली जाने लगी परन्तु लेख के रूप में यह लल्लूजी के प्रेमसागर ही में पहले देखने में आती है इसीलिये तभी से इसका जन्म समझना चाहिये" यों होना चाहिये "यह हिन्दी बोलचाल में तब से व्यवहृत है जब से दिल्ली आगरे में मुसलमानों का राज्य हुआ और इसका नाम उर्दू पड़ा। परन्तु नागरी अक्षरों में लल्लूजी के प्रेमसागर में देखने आती है। इसलिये आधुनिक हिन्दी का जन्म तभी से समझना चाहिये।"

ब्रजभाषा कविता सम्वत् सात सौ सत्तर में राजा मान अवन्तीपुरी के राजा (भोज के पिता) के समय में प्रारम्भ हुई। शिवसिंह सरोज देखिये।

दिल्ली आगरे की बोली (खड़ी बोली) का इतिहास आप लिखते हैं, इसमें मथुरा

वा ब्रज की भाषा कैसे Period मानी जायगी ?

मैं गवर्नमेन्ट भेद से हिन्दी के तीन काल मानता हूँ। Hindu Period, Mohamedan Period और English Period अर्थात् (१) चन्द की हिन्दी, (२) उर्दू (मौलवी साहब की हिन्दी), (३) पण्डित जी की हिन्दी व प्रेमसागर की हिन्दी।

फिर English Period में कई काल माने जायेंगे।

(१) लल्लूलाल की हिन्दी पण्डित स्टाइल।	गद्य खड़ी बोली
(२) राजशिवप्रसाद की हिन्दी मुन्शी स्टाइल।	पद्य ब्रजभाषा
(३) पण्डित श्रीधर पाठक, पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू हरसहाय लाल की हिन्दी।	अयोध्या प्रसाद के आन्दोलन से सुधरी हुई हिन्दी।

आप मेरे माने हुए Period को approve करें अथवा Difference का Reason दें। आपस में मतभेद रहना ठीक नहीं।

—अयोध्या प्रसाद

हिन्दी साहित्य के इतिहास और अयोध्याप्रसाद खत्री

[१]

...खड़ी बोली के लिए एक आन्दोलन ही खड़ा हुआ। मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री खड़ी बोली का झंडा लेकर उठे। संवत् १९४५ में उन्होंने 'खड़ी बोली आन्दोलन' की एक पुस्तक छपाई, जिसमें उन्होंने बड़े जोर-शोर से यह राय जाहिर की कि अबतक जो कविता हुई, वह तो व्रजभाषा की थी, हिन्दी की नहीं; हिन्दी में भी कविता हो सकती है। वे भाषातत्त्व के जानकार न थे। उनकी समझ में खड़ी बोली ही हिन्दी थी। अपनी पुस्तक में उन्होंने खड़ी बोली-पद्य की पाँच स्टाइलें कायम की थीं—जैसे, मौलवी स्टाइल, मुंशी स्टाइल, पंडित स्टाइल, मास्टर स्टाइल आदि। उनकी पोथी में और पद्यों के साथ पाठक जी का 'एकान्तवासी योगी' भी दर्ज हुआ! और कई लोगों से भी अनुरोध करके उन्होंने खड़ी बोली की कविताएँ लिखाईं। चम्पारन के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् और वैद्य पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र, जो भारतेन्दुजी के मित्रों में थे, संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी में भी बड़ी सुन्दर और आशु कविता करते हैं। मैं समझता हूँ कि हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल में संस्कृत-वृत्तों में खड़ी बोली के कुछ पद्य पहले-पहल मिश्रजी ने ही लिखे। बाबू अयोध्याप्रसादजी उनके पास भी पहुँचे, और कहने लगे—"लोग कहते हैं कि खड़ी बोली में अच्छी कविता नहीं हो सकती। क्या आप भी यही कहते हैं? यदि नहीं, तो मेरी सहायता कीजिए।" उक्त पंडितजी ने कुछ कविता लिखकर उन्हें दी, जिसे उन्होंने अपनी पोथी में शामिल किया। इसी प्रकार, खड़ी बोली के पक्ष में जो राय मिलती, वह भी उसी पोथी में दर्ज होती जाती थी। धीरे-धीरे एक बड़ा पोथा हो गया, जिसे बगल में दबाए वे जहाँ कहीं हिन्दी के सम्बन्ध में सभा होती, जा पहुँचते। यदि बोलने का अवसर न मिलता या कम मिलता तो वे बिगड़कर चल देते थे।[१]

[२]

...संस्कृत-मिश्रित हिन्दी को ही उर्दू-फारसीवाले 'भाखा' कहा करते थे। ...जिस प्रकार वे अपनी अरबी-फारसी मिली हिन्दी को 'उर्दू' कहते थे उसी प्रकार संस्कृत

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण, १९४२, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ० ७२२-२३।

मिली हिन्दी को 'भाखा'। भाषा का शास्त्रीय दृष्टि से विचार न करनेवाले या उर्दू की ही तालीम खास तौर पर पानेवाले कई नये-पुराने हिन्दी लेखक इस 'भाखा' शब्द के चक्कर में पड़कर व्रजभाषा को हिन्दी कहने में संकोच करते हैं। 'खड़ी बोली-पद्य' का झण्डा लेकर घूमनेवाले स्वर्गीय बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री चारों ओर घूम-घूमकर कहा करते थे कि अभी हिन्दी में कविता हुई कहाँ, "सूर, तुलसी, बिहारी आदि ने जिसमें कविता की है, वह तो 'भाखा' है, हिन्दी नहीं।" सम्भव है, इस सड़े-गले खयाल को लिये अब भी कुछ लोग पड़े हों।[1]

[३]

अब भारत की देशभाषाओं के अध्ययन की ओर इंगलैंड के लोगों का भी ध्यान अच्छी तरह जा चुका था। उनमें जो अध्ययनशील और विवेकी थे, जो अखण्ड भारतीय साहित्य-परम्परा और भाषा-परम्परा से अभिज्ञ हो गये थे, उन पर अच्छी तरह प्रकट हो गया था कि उत्तरीय भारत की असली स्वाभाविक भाषा का स्वरूप क्या है। ऐसे अँगरेज विद्वानों में फ्रेडरिक पिन्काट का स्मरण हिन्दी-प्रेमियों को सदा बनाये रखना चाहिए। ...भारत का हित वे सच्चे हृदय से चाहते थे। हिन्दी-लेखकों से उनका बराबर हिन्दी में पत्र-व्यवहार रहता था। उस समय के प्रत्येक हिन्दी-लेखक के घर में पिन्काट साहब के दो-चार पत्र मिलेंगे। ...लखनऊ में उनका देहांत (७ फरवरी, १८९६) हो गया। ...उनका शरीर भारत की मिट्टी में ही मिला। संवत् १९१९ में जब राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुन्तला नाटक' लिखा तब उसकी भाषा देख वे बहुत ही प्रसन्न हुए और उसका एक बहुत सुन्दर परिचय उन्होंने लिखा। बात यह थी कि यहाँ के निवासियों पर विदेशी प्रकृति और रूपरङ्ग की भाषा का लादा जाना वे बहुत अनुचित समझते थे। अपना यह विचार उन्होंने अपने उस अँगरेजी लेख में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है जो उन्होंने बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली का पद्य' की भूमिका के रूप में लिखा था।[2]

[४]

मुझको स्मरण है कि इस आन्दोलन को लेकर उस समय के दैनिक 'हिन्दुस्थान' तथा अन्य पत्रों में उभय पक्ष के लोगों में बड़ा द्वन्द्व हुआ था। बिहार प्रान्त के बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री के हाथ में इस आन्दोलन का झण्डा था।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास
पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय
१९४०, पृ० ५२७

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, वही, पृपृ० ४९५-९६।
२. वही, पृपृ० ५२५-२६-२७।

[५]

यद्यपि भारतेन्दुजी के काल ही में यह प्रश्न उठा था कि गद्य तथा पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिए। पर उस समय के प्रमुख साहित्यकारों ने यही निश्चय किया कि पद्य में खड़ी बोली के उपयोग से सरसता नहीं आती और उर्दू शब्दों की भरमार हो जाने से हिन्दी पद का अभाव-सा हो जाता है। भारतेन्दु-काल के अनन्तर खड़ी बोली का आन्दोलन ही उठ खड़ा हुआ, जिसमें बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने विशेष भाग लिया।

—ब्रजरत्नदास
खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास
हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस
१९५२ (द्वि० सं०), पृ० १८०

[६]

...खड़ी बोली आन्दोलन के अगुआ थे बिहारनिवासी बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री। खड़ी बोली के पद्य के प्रचार हो जाने ही को वे अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य समझते थे। इसी के लिए वे सदा व्यस्त रहे। वे सदैव अपने पास एक बही रखते थे और विद्वानों से मिलने पर खड़ीबोली में कविता करने के अनुमोदन-स्वरूप उसमें उनके हस्ताक्षर ले लिया करते थे।

—(डॉ०) कपिलदेवसिंह
ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
१९५६, पृ० ७३-७४

[७]

विभिन्न भाषा-भाषियों की सुविधा तथा एकता की भावना से प्रेरित होकर मुजफ्फरपुर-निवासी अयोध्याप्रसाद खत्री ने पद्य की भाषा को खड़ी बोली करने का आन्दोलन आरम्भ किया।

—शितिकण्ठ मिश्र
खड़ी बोली का आन्दोलन
नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
१९५६, पृ० १५७

[८]

With poetry still being written in Vrajabhasha and prose adopting 'Khari-Boli' as its vehicle, Hindi literature progressed on lame legs. This literary dichotomy had to be removed. What Bharatendu had failed to achieve was made possible mainly by the efforts of Ayodhya Prasad Khatri of Muzaffarpur, who in spite of the fierce opposition of the traditionalists, had the times and the new generation on his side. Ayodhya Prasad Khatri was an indefatigable missionary in the cause of 'Khari-Boli'. ...The subsequent period of Hindi literature in which Vrajabhasha was gradually replaced by 'Khari-Boli' in Hindi poetry, is deeply indebted to the pioneering done in Bihar.

—नलिनविलोचन शर्मा
Bihar Through the Ages
सं० आर० आर० दिवाकर
ओरिएण्ट लौंगमैन्स
१९५८, पृ. ७४८

युग-प्रवर्त्तक खत्रीजी

[१]

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री युगप्रवर्त्तक थे, इसलिए जैसे अन्य युगप्रवर्त्तकों का संसार के व्यावहारिक मनुष्यों ने उपहास किया, मजाक उड़ाया, वैसा ही उस समय के लोगों ने ही नहीं, इतिहास-लेखक ने भी किया। परन्तु अन्त में उनकी विजय हुई और उन्हें हँसनेवाले जहाँ थे, वहीं पड़े रह गये।

अयोध्याप्रसादजी की यह बात निःसार नहीं थी कि हिन्दी में उस समय तक कविता नहीं हुई थी। हिन्दी का प्रयोग आज व्यापक अर्थ में होता है, उस समय नहीं होता था। उस समय उसे खड़ी बोली नाम से ही लोग जानते थे। आज उस समय की खड़ी बोली ही मुख्य भाषा हिन्दी है। भाषा से खड़ी बोली में अन्तर है और था भी। उस समय कविता भाषा में ही होती थी। खत्रीजी ने हिन्दी में कविता के लिए आन्दोलन किया और इसमें उन्हें यश मिला। आज हिन्दी कविता हिन्दी में ही अधिक होती है, भाषा में कम। इसका श्रेय उन्हीं को है।

अपने प्रमुख पुरुषों का हमें आदरपूर्वक स्मरण करना चाहिए। इसलिए जिन्होंने बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री के स्मारक ग्रन्थ-प्रकाशन का प्रबन्ध किया है, वे हमारी बधाई और धन्यवाद के पात्र हैं।

लखनऊ
चैत्र शु० ५, सं० २०१७ } —अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

[२]

श्रीअयोध्याप्रसाद खत्री हमारी राष्ट्रभाषा के वर्त्तमान स्वरूप के, जिसे कभी खड़ी बोली कहा जाता था, ऋषि थे। जिसे दर्शन हो, वह ऋषि कहा जाता है—ऋषिर्दर्शनात्। आज से लगभग पौन शती पूर्व उन्हें यह निश्चित हो गया था कि भावी भारत की काव्यभाषा खड़ी बोली ही होकर रहेगी। उस समय तो उनकी यह धुन विचित्र-सी लगती थी, कभी-कभी जब वह यह कहते कि तुलसी-सूर की कविता भाषा की कविता है, हिन्दी की नहीं, तो उनके उस स्वर में प्रलाप की झंकार सुनाई पड़ती थी, पर उनकी रट में भारत की भावी

भाषा का स्वास्थ्य कूटकूटकर भरा था। आज उस साहित्य की रश्मियों का आलोक स्वयं सिद्ध है। संवत् १९४५ में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'खड़ी बोली आन्दोलन' आज बहुतों को दर्शन के लिए भी उपलब्ध नहीं, पर वह हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की उदयभूमि की खाद बनकर अपना जीवन सफल कर गई। उसे उनकी जन्मशती के इस पुण्य अवसर पर हम प्रणाम करते हैं। हमारी आज की समष्टि का यह प्रणाम-भाव ही उनका सर्वश्रेष्ठ अभिनंदन है। कालचक्र के दुर्धर्ष प्रवाह में जो द्रष्टा बनकर सेवा कर जाते हैं वे अमर हैं, भले ही मर्त्य मानवों की सीमित दृष्टि से वे ओझल हों। श्रीअयोध्याप्रसादजी की यह प्रतिज्ञा कि खड़ी बोली में श्रेष्ठतम काव्यरचना हो सकती है, हिन्दी के लिए फलीभूत आशीर्वाद सिद्ध हुई। आज हिन्दी कविता अपने श्रेष्ठ उत्कर्ष से विश्व की काव्यमयी अभिव्यक्ति में भागधेय प्राप्त कर रही है। श्रीअयोध्याप्रसादजी ने जिस वेदि में अग्नि प्रज्वलित की थी, उसका सहस्र संवत्सरात्मक सत्र कभी पूरा होगा, ऐसी आशा है।

काशी-विश्वविद्यालय
२८।५।५९

—वासुदेवशरण अग्रवाल

समालोचक

बाबू अयोध्या प्रसाद के संस्मरण

कष्टो जनः कुलधनैरनुरञ्जनीय-
स्तन्मे यदुक्तमशिवं नहि तत् क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥

—भवभूतेः

काशी नागरी प्रचारिणी सभा का गृहप्रवेशोत्सव मङ्गलपूर्वक हो चुका था। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी ने "धनि भाग आजु या भवन में नाथ तिहारे पग पड़े"—कहकर सर डिग्गस लाटूश का स्वागत किया था, और माननीय पण्डित मालवीय ने चमकती अङ्गरेजी की छोटी सी स्पीच में उन्हें "गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ" कह दिया था। दूसरे दिन प्रातःकाल का समय है। मि० जैन वैद्य और हम सिद्धेश्वर प्रेस से, कपड़े पहनकर, बाहर निकलने को तैयार हैं। इतने में एक सज्जन "जैन वैद्यजी हैं क्या?"—इस प्रश्न के पीछे आ खड़े हुए। हमने देखा, उनके शरीर पर मोटे बनारस सिल्क का चपकन और चोला है, पजामा है, बादामी बूट है। सिर पर उस ढंग का बङ्गाली शमला है जिस ढंग का महामहोपाध्याय पदवी पानेवालों को सरकार से खिलत में मिला करता है। पूछने पर उनने परिचय दिया कि "मैं मुजफ्फरपुर से आता हूं।" इसपर हम अपनी मुस्कुराहट को न रोक सके, क्योंकि काशी में दो दिन से ही "खड़ी बोलीवाला आता है, खड़ी बोलीवाला आता है" की धूम मच रही थी। जिस मूर्त्ति के लेख, नाम और वर्णन पत्रों में पढ़े जाया करते थे, उसे यों अचानक सामने देखकर एक विलक्षण भाव उत्पन्न हुआ। अस्तु, परस्पर के परिचय के पीछे हमलोग एक गाड़ी पर सवार होकर चले। पहले मैंने प्रश्न किया कि आप कल के उत्सव में आ पहुँचे थे या नहीं? उनने उत्तर में 'हां' कहकर कहा कि एड्रेस गँवारी बोली में क्यों दिया गया, यदि वह खड़ी बोली में होता तो हम मुसलमानों को भी अनुकूल कर सकते। "गंवारी बोली"—यह बाबू अयोध्या प्रसाद का व्रजभाषा के लिए प्यारा नाम था। एक आध बार उनने उस दिन भी कहा—"जब तक यह गंवारी हमारे सभ्य साहित्य का पल्ला न छोड़ेगी तब तक इसकी उन्नति न होगी," हमने भी कहा—"आप तलाक दिलाकर मानियेगा।" अस्तु, बाबू साहब को उन कठिनाइयों का ज्ञान न था जो खड़ी बोली में ऐड्रेस देने पर सभा को पड़तीं, क्योंकि सबके सामने पालिसी में "सरल भाषा के पक्षपाती" बननेवालों को खालिस उर्दू शब्द काम में लेना पड़ते और काशी में नाम को कुछ गौरव से रहित करना पड़ता।

हमने ध्यान से देखा बाबू अयोध्या प्रसाद के नेत्र बिलकुल श्वेत थे। उनके बाल कहीं कहीं सफेद थे, इसलिए इस अवस्था में भी आंखों में लाल डोरों के अभाव का हमपर असर पड़ा। हम ज्यों ज्यों ध्यान से पथराई हुई "धौली आंख धर्णी" को देखते थे, त्यों त्यों उनकी भावशून्यता और नीरसता मालूम होती जाती थी, जो मनुष्यों में अधिकांश के साथ विरोध रखने का फल और लक्षण है। वे कुछ ठहर ठहर कर श्वास लेते थे और चकित होकर इधर उधर तकते थे, मानों किसी भय में हैं। उनके अधरोष्ठ पर दो दांत निकले हुए थे और उनके ओष्ठ कुछ खुले हुए ही रहते थे। मालूम होता है, यह gape करने की आदत उन्हें अधिक विरोध की शङ्का से हो गई थी। पं० नारायण पाण्डे के कालनिर्णय की बात चली तो उनने कहा कि मुझे कलेक्टर साहब के मुकद्दमे में रजामन्दी करने को बाधित किया था। उनने कहा था This case must be compromised out of court. पीछे जब उन्हें मालूम हुआ कि हम सारस्वत ब्राह्मण हैं तो वे बोले "हम खत्री हैं, आपके यजमान हैं, आपको तो हमारा पक्ष लेना चाहिए न कि पं० नारायण पाण्डे का जो आपसे भिन्न ब्राह्मण हैं।" हमारे भिन्न ब्राह्मण का अर्थ पूछने पर उनने कहा कि ब्रजभाषा के पक्षपाती हरिश्चन्द्र अ(ग)रवाले थे और हम खड़ी बोली के रिफार्मर खत्री हैं, इससे भी आपको हमारी ही तरफ होना चाहिए। इस तर्क से हम दंग आ गए। सभावाले हिन्दी साहित्य का एक इतिहास लिखनेवाले हैं, इस प्रसङ्ग में आपने कहा "चाहे ये लोग कुछ करें इनके ब्रेन नहीं है; हमें चार घन्टे किसी लाइब्रेरी में बिठा दीजिए, झटपट इतिहास लिख डालें, ये लोग ऐसा ब्रेन कहां से लावेंगे?" फिर उनके खड़ी बोली आन्दोलन की वर्त्तमान अवस्था और सभा में उनके प्रस्ताव की बात चली। उनने कहा—"प्रभुदयाल पाण्डे पं० प्रताप नारायण मिश्र का शिष्य था, उसने प्रताप नारायण मिश्र को खड़ी बोली का आदि पक्षपाती लिखा है। इस पर हमने लिखा कि जैसे परशुराम ने जमदग्नि के वास्ते कार्तवीर्य को बलि दे दिया उसी तरह से आप हमें भी अपने गुरु के लिए बलि दे दीजिए। अब हम बनारस में आए हैं, आपलोग सब मिलकर हमें मार डालिए—मार डालिए, हां साहब, मार डालिए।" इतने में चौंकते हुए हम चौक पहुँचे, और वहां माननीय पण्डित मालवीय जी की गाड़ी सामने से आ गई। वहां उनने हमें अपने साथ क्वीन्स कालेज ले जाने का आग्रह किया। लाचार हमें बाबू अयोध्या प्रसाद की मनोरंजक बातों से विदा लेनी पड़ी। हमने उन्हें अपने साथ जाने को तैयार न पाकर पूछा कि, आप कहां ठहरे हैं? उत्तर मिला—"गाय घाट पर, वहां मेरी लड़की का सुसराल है। वे भी बनारसिए हैं, दो तीन साल से उसे मेरे घर नहीं भेजते। इन बनारसियों के एक समूह ने तो मेरी खड़ी बोली को दुःख दे रक्खा है और दूसरा मेरी पुत्री को मेरे से मिलने के लिए नहीं भेजता।" इस पर हमने हँसकर कहा कि, बेटियां अपने ही घर शोभा पाती हैं, पिता के घर नहीं। आप दोनों को अच्छी तरह इन्हीं बनारसियों के हवाले कर दीजिए।" इस पर हंसकर हाथ मिलाकर बाबू साहब चले गये।

उस ही दिन सायङ्काल को फिर बाबू अयोध्या प्रसाद के दर्शन हुए। सभा के पुस्तकालय में बाबू साहब बैठे थे। वहीं पर उनने हमको पण्डित केशवराम भट्ट का हिन्दी व्याकरण दिखाया, और शिवहर स्कूल के हेडमास्टर रामदास राय का बनाया खड़ी बोली

कविता में मिल्टन के पैरेडाइज लास्ट की द्वितीय पुस्तक का अनुवाद मि० जैन वैद्य को और उनके द्वारा हमको, दिया। पीछे उनने अपना वह लेख भी हमें दिखाया, जिसे वे कल की सभा में पढ़ा जाने के लिये लाये थे। इसके पीछे एक ऐसी शोचनीय घटना हुई, जिसका उल्लेख हम नहीं करना चाहते, परन्तु बाबू साहब की स्वर्गीय आत्मा के अनुरोध से हमें उसे कहना ही पड़ता है। उस समय सभा के सभी उपस्थित मेम्बरों का फोटो लिया जानेवाला था।

"विमल बी० ए० पास, बाबू श्यामसुन्दर दास" हमें तो हाथ पकड़ कर तीन तीन दफ़ा फोटो के लिए ले चले, परन्तु बाबू साहब से उनने आंख तक न मिलाई। यही नहीं, यदि हम बाबू साहब को पकड़ कर न ले जाते, तो शायद मेरे पास की कुर्सी पर बैठे रहने और मुझसे बातचीत करते रहने पर भी उन्हें कोई फोटो के लिये न ले जाता। फोटो में भी मि० वैद्य उन्हें अपने साथ लेकर खड़े हुए, नहीं तो बिचारे पाँचवी छठी पंक्ति से भी बाहर धकेले गए थे। खैर, फोटो उतरा, मालवीयजी की सभा हुई। दूसरे दिन प्रात:काल हम गङ्गा-स्नान से लौट रहे थे। राह में बाबू श्यामसुन्दर दास के मकान में पहुँचे। देखा कि खासी मण्डली जमी है। रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्ज़ हैं, जो पूछ रहे हैं कि लोटा मांजने से क्यों पवित्र हो जाता है। बाबू गोपालदास हैं। शायद पण्डित गणपति जानकीराम दुबे भी हैं। और हैं जमीन छीलते हुए बाबू अयोध्या प्रसाद। प्राय: आध घण्टा हम बैठे रहे, परन्तु बाबू अयोध्या प्रसाद से कोई न बोला। उनकी "खड़ी बोली डायरी" के पृष्ठ पण्डित गणपति दुबे के हाथ में थे। आखिर बाबू साहब चले गए। तब बाबू श्यामसुन्दर दास ने कहा कि "ये मुझ से यह कहने आए थे कि आज की सभा में मेरा प्रस्ताव बिना विरोध पास करा दो तो मैं सभा में आऊं। तुमलोगों ने बिहारी डेलिगेटों के न आने देने के लिए आजकल उत्सव किया है। इसके उत्तर में मैंने कहा कि मैं यह गारण्टी नहीं दे सकता कि आपका प्रस्ताव बिना विरोध के पास हो ही जायगा।" हम भी चले आये। सायङ्काल की सभा में बाबू साहब नहीं आए। बड़े झगड़े के बाद उनका प्रबन्ध पण्डित गणपति जानकीराम दुबे ने पढ़ा। सभा में इसका कोई प्रबल विरोध नहीं हुआ। अवश्य ही सभा "ब्रजभाषा से हिन्दी साहित्य का पिण्ड छुड़ाने" को तैयार न थी परंतु उसने इस प्रस्ताव के मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं की कि, "खड़ी बोली में कविता हो और सभा उसके लिये विशेष उत्साह प्रदान करे।" बाबू राधाकृष्णदास के जलपान में भी बाबू अयोध्या प्रसाद नहीं आए थे। दूसरे दिन बाबू राधाकृष्ण दास से वे मिले थे। अपनी परम प्रसन्नता और सभा के "सुबह के भूले के शाम को घर लौट आने" पर हर्ष प्रकट करके अपने घर चले गए थे। वहां जाकर उनने लाल स्याही से अपना खड़ी बोली का विजय घण्टा-घोष छापा। बस, यही हमारा उनका साक्षात्कार हुआ। यह फरवरी की बात है। अगली गर्मियों में बाबू साहब ने मिस्टर जैन वैद्य को और हमको लीचियां बहुत खिलाईं,—बहुत ही खिलाईं। हम सदा उन लीचियों और उनके मनोविनोदी दाता को स्मरण करेंगे। इस वर्ष गर्मी खूब पड़ी और जब हम आबू में दुर्लभ लीचियों का जिह्वा से प्रत्यक्ष करते, तब हमें हठी किन्तु सरल-हृदय, तीव्र किन्तु मुग्ध, साहित्यरिफार्मर कहलाने के लोभी परन्तु काम करनेवाले, बाबू अयोध्या प्रसाद के स्मरण से हृदय में एक अपूर्व भाव उत्पन्न हो जाता।

काशी के साक्षात्कार के कुछ दिन पहले बाबू अयोध्या प्रसाद ने एक पन्द्रह सेर का पुलिन्दा मि० जैन वैद्य के पास भेजा था। उसमें बाबू अयोध्या प्रसाद का सर्वस्व था। या यों कहिए कि, जिस जिस पत्र में या जिस जिस मित्र को उनने खड़ी बोली के बारे में जो टिप्पणी वा लेख लिखा था उसकी यह फाइल थी। यह साहित्य का कौतुक, यह शास्त्रार्थों का क़िब्लेगाह, हमने और मि० वैद्य ने बड़े ध्यान से पढ़ा था। वे ही कागज़ बाबू सा.ब ने काशी की सभा के मौके पर भेज दिये थे। यही उनका अमोघ शस्त्र था, यह उनका गाण्डीव था। उसमें एक अंगरेजी नोट भी हाथ का लिखा रक्खा था। यह लिखा किसी और का है, परन्तु नीचे अंगरेजी में Ayodhya Prasad हस्ताक्षर है और 24-12-03 तारीख है। इसका अनुवाद हम पाठकों को सुनाना चाहते हैं साथ साथ ब्रैकेट में जो टिप्पणियां हैं, वे हमारी लिखी हुई हैं।

हिन्दी कविता की भाषा के सुधार की दो पीरियड हैं।

(१) सन् १८७६ से १८८७ तक। इस पीरियड का आरंभ मेरे हिन्दी व्याकरण के बनने से हुआ। उसके पीछे बाबू लक्ष्मी प्रसाद ने 'योगी' नामक पण्डित स्टाइल की खड़ी बोली की कविता बनाई (१८७६)। उसके पीछे बाबू महेश नारायण ने 'स्वप्न' लिखा। यह मुन्शी स्टाइल में खड़ी बोली का निबन्ध है जो वड्सवर्थ की ओड आन इमार्टेलिटी के छन्द में बना है (१८८१) [हिन्दी साहित्य की दृष्टि में ये दोनों ग्रन्थ मर चुके हैं।]

(२) सन् १८८७ से आजकल तक मेरी खड़ी बोली पद्य, प्रथम भाग मुजफ्फरपुर में १८८७ में छपा। वृन्दावन में पण्डित राधाचरण गोस्वामी ने इसकी ता० ११-११-८७ के "हिन्दोस्थान" में समालोचना की। इसपर उसी पत्र में मेरे दल के पंडित श्रीधर पाठक और विरोधी दल के पंडित प्रताप नारायण मिश्र में बड़ा भारी विवाद हुआ। इस बहस ने हिन्दी साहित्य में जो कुछ भी प्रेम रखते थे उनके सामने खड़ी बोली कविता के गुण और दोष रख दिये। उस समय से सभी विद्वानों ने इस विषय पर पूरा ध्यान दिया है और बहुत सी खड़ी बोली की कविताएं लिखी गई हैं।

पूरे तौर से देखा जाय तो फल सन्तोषदायक है जैसा कि चाहा जा सकता है। इस आन्दोलन से जो हिन्दी भाषा उत्पन्न हुई, वह मेरी डायरी के पृष्ठ २१ में अंगरेजी पीरियड की हिन्दी का तीसरा काल नाम से लिखी गई है। जैसा मैंने ऊपर कहा है पहला साधारण आन्दोलन, मेरी खड़ी बोली पद्य के प्रथम भाग के छपने पर 'हिन्दोस्थान' के द्वारा आरम्भ हुआ था। दूसरा साधारण आन्दोलन सन् १८८८ ई० में उसी पुस्तक के लंडन में छपने पर हुआ और 'हिन्दोस्थान' और आजकल बंद, पं० भुवनेश्वर मिश्र की सम्पादित चम्पारण-चन्द्रिका ने इसमें भाग लिया। यद्यपि 'हिन्दोस्थान' स्पष्ट विरोधी नहीं था, तो भी उसने खड़ी बोली कविता पर कुटिल आक्षेप किये और चम्पारण-चन्द्रिका ने इस पक्ष का समर्थन किया। उन्हीं दिनों चम्पारण-चन्द्रिका में बाबू अयोध्याप्रसाद ने खड़ी बोली रामायण के लिये प्रति पंक्ति एक रुपये का विज्ञापन दिया था। (खेद है कि इस खड़ी बोली शाहनामे का कोई फ़िरदौसी नहीं खड़ा हुआ) आन्दोलन का तीसरा समय जनवरी सन् १९०१ की

सरस्वती ने आरम्भ किया। वहाँ प्रथम लेख भूमिका के सम्पादक ने यद्यपि खड़ी बोली आन्दोलन का मण्डन किया, तो भी उसमें मेरे भाग को वह भूल गये। [शायद यही आन्दोलन का उद्देश्य था कि खड़ी बोली के साथ बाबू साहब का भी नाम अवश्य रहे] इस पर पत्र व्यवहार और आन्दोलन शुरू हुआ। (देखो मेरी डायरी पृष्ठ १।) यह भूल मार्च १९०१ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका ने भी जारी रक्खी। परन्तु उन सबने अपनी गलतियाँ स्वीकार कीं और मेरे हक़ कबूल किये। (देखो सरस्वती जून १९०१ ई०।)

आन्दोलन के इस समय में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात काशी नागरी प्रचारिणी सभा का मत परिवर्त्तन है। सभा में बहुत से जीवित विद्वान् हैं और वह हिन्दी साहित्य के उस तड़की प्रतिनिधि है जो भूतपूर्व हरिश्चन्द्र ने क़ायम किया था। उनने खड़ी बोली के विरुद्ध लिखा था और मेरे आन्दोलन के विरोधी सदा उनकी दुहाई देते थे। अपनी १८९७ की पत्रिका के पृष्ठ ३० में सभा ने आन्दोलन की बुरी समालोचना की थी और मुझे गालियाँ (दी) थीं।[१] परन्तु वह अब बिलकुल बदल गई है और खड़ी बोली कविता का पक्ष लेती है। (देखो, जनवरी १९०१ की सरस्वती का दूसरा पृष्ठ।) यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि उस समय जो बाबू श्यामसुन्दर दास सरस्वती के सम्पादक थे, वे नागरी प्रचारिणी सभा के मन्त्री थे और हैं। सरस्वती के टाइटिल पेज पर "नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित" भी मिलता है। फिर फर्वरी मार्च १९०३ की सरस्वती के पृष्ठ ९९ में नये सम्पादक

१—बाबू साहब का इशारा बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर की इस कविता पर है :—

पै अब के ते भये हाय इमि सत्यानासी,
कवि औ जांचक रस अनुभव सों दोऊ उदासी,
शब्द अर्थ को ज्ञान न कछु राखत उर माहीं,
शक्ति निपुनता औ अभ्यास लेसहू नाहीं,
बिन प्रतिभा के लिखत तथा जांचत विवेक बिन,
अहंकार सों भरे फिरत फूले जित निशि दिन,
जोरि बटोरि कोउ साहित्य ग्रन्थ निर्माने,
अर्थ शून्य कछु कहूं बिरोधी लक्षण ठानै,
जानत हूं नहिं कहा अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असंभव,
बनि बैठत साहित्यकार, आचार्य स्वयंभव।
जात खड़ी बोली पै कोउ भयो दिवानों,
कोउ तुकान्त बिन पद्य लिखन में है अरुझानों,
अनुप्रास प्रतिबंध कठिन जिनके उर माहीं,
त्यागि पद्य प्रतिबन्धहु लिखत गद्य क्यों नाहीं?
अनुप्रास कबहूं न सुकवि की शक्ति घटावैं,
बस सच पूछो तो नव सूझ हिये उपजावैं,
ब्रजभाषा औ अनुप्रास जिन लेखे फीके,
माँगहिं विधनासों ते श्रवन मानुषी नीके।

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी, जो सभा के मेम्बर हैं, मेरे मत का पूरा समर्थन करते हैं।

इस आन्दोलन का छोटा इतिहास भूमिहार ब्राह्मण पत्रिका, भाग ३ संख्या १ में छपा है।

अयोध्या प्रसाद

२४-१२-०३

मालूम होता है, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी अपने कालचक्र में "हरिश्चन्द्री हिन्दी नए ढाल में ढली" लिख गए हैं, वैसे ही "पण्डित श्रीधर पाठक, बाबू हरसहाय लाल (?) और पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी की हिन्दी" को अयोध्या प्रसाद के आन्दोलन से "सुधरी हिन्दी" कहकर नया तड़ बाँधने का बाबू साहब को बड़ा आग्रह था। इसपर उनने मन ही मन अपने शत्रु बना रक्खे थे। जब मार्च १६०१ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में खड़ी बोली कविता को महाराणी विक्टोरिया के राज्यकाल की एक घटना कहा गया तब बाबू साहब ने पण्डित श्रीधर पाठक को यह पत्र लिखा—"सभावालों ने खड़ी बोली कविता में आपको सम्मानपूर्वक आसन दिया है, परन्तु जहाँ आप हैं वहीं आपका सेवक में भी हूँ। परन्तु मेरा नाम नहीं लिखा गया। इसका कारण यह है कि मैंने तो "एक अग्रवाले के मत पर खत्री की समालोचना लिखी थी, और आपने हरिश्चन्द्राष्टक की १००० प्रतियां बाँटी थीं।" शब्द हमें ठीक स्मरण नहीं, पर उस पत्र का आशय यही था। इधर पण्डित भुवनेश्वर मिश्र ने, एक जगह, यों लिखा है, "पहले बाबू अयोध्याप्रसाद किले के नीचे खड़े थे, और शत्रु उनपर किले से हमला करते थे। अब बाबू साहब लकड़ियों और घास के सहारे किले के टीले पर चढ़ गए हैं।" खड़ी बोली कविता का वास्तव में किसीने विरोध नहीं किया। केवल पण्डित राधाचरण गोस्वामी अपने विरोध में दृढ़ रहे। वास्तव में सभी खड़ी बोली के अनुकूल थे। भारतेन्दुजी की दुहाई दी जाती है, परन्तु जैसा अच्छा उनका दशरथ विलाप हुआ है, ऐसी मुन्शी स्टाइल की खड़ी बोली क्या किसी ने लिखी है ? बनारसी गिरि की लावनियाँ काशी में खड़ी बोली में बनती आई हैं। भारतेन्दुजी के पिता का बनाया रेखते का पद है। काशी को जो ब्रजभाषा के पक्षपातियों और खड़ी बोली के विरोधियों का अड्डा कहा गया है, वह ठीक नहीं। भारतेन्दु जी ने एक जगह लिखा है, कि मुझसे खड़ी बोली कविता अच्छी न हो सकी, परन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि खड़ी बोली कविता करो ही मत। पण्डित प्रताप नारायण मिश्र ने "हिन्दोस्थान" में खड़ी बोली का विरोध किया था सही, परन्तु सङ्गीत शाकुन्तल में जो बढ़िया खड़ी बोली कविता है, वैसी अयोध्या प्रसाद जी के किस पक्षपाती ने लिखी है ? भूषण कवि के भी दो तीन कवित्त खड़ी बोली के मिलते हैं। इसके विरुद्ध पण्डित श्रीधर पाठक को लीजिए, जिन्हें बाबू अयोध्या प्रसाद अपना परम पक्षपाती मानते हैं। वास्तव में यदि खड़ी बोली में कोई कविता बनी है तो वह पाठकजी का

एकान्तवासी योगी है। जिन बिहारियों का नाम बाबू अयोध्याप्रसाद बड़े आदर के साथ लेते हैं, उनके खड़ी बोली काव्य हिन्दी काव्य की दृष्टि में मर चुके हैं। परन्तु पाठकजी का "ऊजड़गाम" अच्छा बना है, वा "श्रान्त पथिक" ? कहां पहले की द्राक्षापाक कविता और निसर्ग मधुर आनन्द और कहां दूसरे की क्लिष्ट कल्पना और खेंच खांचकर खड़े शब्दों की जोड़-तोड़ ? अब भी पाठक जी का "भ्रमराष्टक" जितना मधुर है, उतना उनका "एड्विन और अंजलेना' नहीं। आजकल भी जो कुछ वे लिखते हैं ब्रजभाषा में ही उसका अधिक अंश होता है। उनके विरोधियों से इतनी सहायता मिलने पर भी बाबू साहब "खून लगाकर शहीद" बनने को तैयार थे, यदि वास्तव में उनका विरोध होता तो वे न मालूम अपने को मूकरात लगाते वा ईसा मसीह। काशी की सभा ने कभी उनका विरोध नहीं किया। जिस कविता पर उनका दंश था वह बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर की थी और सभा सदा से हिन्दी साहित्य के इस अर्धाङ्ग पर विलाप करती आई है। अवश्य ही वह सूरदास और बिहारीदास को भाषा को धकेलकर उसकी जगह बाबू अयोध्या प्रसाद का Lions painted by themselves चित्र नहीं रख सकती। वास्तव में खड़ी बोली में अयोध्याप्रसादों और रामदासरायों की जरूरत नहीं है, जरूरत है सूरदासों और तुलसीदासों की। कृष्णभक्ति के कारण, प्राचीन वैष्णव ग्रन्थों के कारण, कथाभट्टों, रासधारियों और पुराने पंडितों के कारण ब्रजभाषा की "ताके विषे" अभी तक महाराष्ट्र देशों तक गूंजती है। कोई सूरदास का सा गारुड़ी आवे, जो खड़ी बोली की अकड़ी नसों और हड्डियों में मोहिनी फूंककर देश भर को मस्त कर दे। काल निर्णय के पीरियडों पर लड़ना, सबको अपना शत्रु मानकर चलना और बिहारियों को ही हिन्दी का एकमात्र अधिकारी मानना उचित नहीं। पद्य की भाषा गद्य की तरह सदा अक्खड़ नहीं हो सकती, उसमें एक प्रकार की लोच वा मुड़ने की ताक़त सदा चाहिए। अंगरेजी में भी साधारण भाषा में लोच आने से saxon बन्द हुई, कोरे आन्दोलनों से नहीं। वह लोच ब्रजभाषा में ज्यादा है, खड़ी बोली में कम। ब्रजभाषा वाले आग को 'आगि' वा 'आगु' कहते हैं, खड़ी बोली वालों ने 'आगी' बनाया है। बैसवारीवाले 'जहां' को 'जहं' करते थे बिहारवाले 'जहंवा तहंवा' (ओह !) करते हैं। मोड़ने तोड़ने में कमी नहीं है। अवश्य पण्डित राधाकृष्ण मिश्र की संस्कृतप्राय खड़ी बोली बहुत अच्छी खिलती है, परन्तु वह बाबू साहब के प्यारे मुन्शी स्टाइल से दूर है। और फिर क्या 'फद फद फद प्यारी बोले, चढ़ी चूल्ह पर दाल'—'प्यारी चमगुदड़ी'—'अधेले की बूटी मिरच दमड़ी की लय लई'— इनसे कभी साहित्य चमका है ? जितना जोश और जान, मरी ब्रजभाषा में बाबू राधाकृष्णदास के बनाए 'भारत बारह मासा' और 'प्रताप विसर्जन' में है, उसकी एक भी क्या इन 'प्यारी चमगुदड़ी' कविताओं—पण्डित श्रीधर पाठक की कविता को हम पृथक् किए देते हैं—में मिल सकती है ? जिस दिन किसी सुकवि की शक्ति से खड़ी बोली भी सरस हो जायगी, उस दिन ब्रजभाषा चुप रह जायगी। दोनों भाषाओं को कविता के लिए लड़ने दे जीवन के लिए संग्राम होते होते Survival of the fittest सत्तम का अवशेष हो जायगा। डायरियों और आन्दोलनों के छपने और खून लगाकर शहीद बनने से यह काम न होगा, यह होगा,

नये कवियों के जन्मने से। ब्रजभाषा से यों पिंड नहीं छूट सकता। कोई यह न जाने कि मैं खड़ी बोली की कविता का विरोधी हूँ, मैं उसका समर्थक ही नहीं, परन्तु लीक पीटनेवाले ब्रजभाषा कवियों का निन्दक भी हूँ। बाबू अयोध्या प्रसाद के यत्न, उद्योग, परिश्रम, व्यय, अध्यवसाय और हिन्दी की प्रीति सहायता की स्तुति करता हुआ भी मैं उन्हें 'त्वमर्कस्त्वं सोमः' नहीं कह सकता, और न बिहारियों का उन्हें 'खून लगाकर शहीद' बनाना देख सकता हूं। मेरा विचार था कि ये सब बातें बाबू अयोध्या प्रसाद से कहूं। परन्तु हा! वह परोपकारी और हिन्दी भाषा के हित चिन्तन का व्रती मनुष्य अब इस लोक में नहीं है। चाहे उनके प्रकारों से लोगों को विरोध रहा हो, परन्तु वर्त्तमान युग में बिहार में क्या हिन्दी भाषा के देश भर में ऐसा तीव्र, किन्तु सत्समालोचक और उदार देशसेवक विरला ही मिलेगा। उनने जो कुछ किया, उसमें हिन्दी की हित कामना भरी हुई थी। लोगों ने उन्हें गालियां दीं, चिड़ाया, सिड़ी समझा; उनने भी छोटी छोटी बातों पर नुक्ताचीनी की, बिना काम का द्वेष समझा, अपने को सताया और ईजा पहुँचाया गया समझा, परन्तु ऐसी बातें सदा होती आई हैं। आशा है कि उनकी आत्मा अब अपने किए हुए भले कामों के फल में अनन्त शान्ति भोगती होगी। जिन लोगों ने बेसमझे बूझे या अपने स्वार्थ के लिए, उनकी निन्दा की वा उनसे विरोध किया होगा, वे अब इस लेख के ऊपर लिखे भवभूति के वाक्य को पढ़ते होंगे।

—श्री चन्द्रधर शर्मा

समालोचक (जयपुर—राजस्थान) से प्रकाशित मासिक पत्र के चतुर्थ वर्ष का पहला अंक, अगस्त सन् १९०५ ई० (क्रमागत संख्या ३७) से उद्धृत (पृष्ठ २८ से ४० तक)।

●

हिन्दी-साहित्य के एक नवीन मार्गदर्शक

आजकल भारतवर्ष की भाषाओं के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी का एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन महानुभावों ने खड़ी बोली की प्रतिष्ठा के लिए चेष्टा की थी, उनमें लल्लूजी लाल के नाम से सब कोई परिचित हैं। लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसके प्रकाशन से आधुनिक हिन्दी-गद्य-साहित्य की नींव डाली गई थी, यह हम सब जानते हैं। एक नई भाषा-शैली, जो इस युग के लिए आवश्यक थी और उपयोगी भी थी, यों प्रतिष्ठित हुई, खड़ी बोली हिन्दी की दिग्विजय शुरू हुई।

पर साहित्य का रथ दो पहियों से चलता है, और दोनों पहियों में बराबरी अपेक्षित है, नहीं तो साहित्य की सर्वाङ्गीण प्रगति कठिन होती है। पड़ी बोलियों में हिन्दी-संसार अपनी काव्यमय अभिव्यक्ति प्रकट कर आया है। पर पड़ी बोली तो एक नहीं, बहु है। इस एकीकरण या समीकरण के युग में एक ही साहित्य में भाषा-भेद रहना जनसाधारण के लिए तथा शिक्षित जनों के लिए विभ्रान्तिकर होता है। इस विषय पर तीन पीढ़ियों तक हिन्दी-साहित्यसेवियों की दृष्टि आकर्षित नहीं हुई। हिन्दी में विगत उन्नीसवीं ईस्वी सदी के सप्तम दशक तक गद्य के लिए एक भाषा, और पद्य के लिए दूसरी भाषा, ऐसी एक अनोखी व्यवस्था थी।

इस असंगति पर जिनका विचार और बोध पहले-पहल कार्यकर हुआ, वे थे, हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन पथिकृत् श्री अयोध्या प्रसाद खत्री। हिन्दी-पद्य में जैसी वैसी गद्य में खड़ी बोली स्वीकृत हो जाय, इसलिए उन्होंने कायेन मनसा वाचा प्रयत्न किया था। उनकी भावना नवीन थी, और नवीनता का विरोध सर्वत्र दीखता है। तो भी अपने ध्यान और अपनी धारणा पर दृढ़तया प्रतिष्ठित रहकर, अयोध्या प्रसाद जी खत्री ने अन्त में सफलता को प्राप्त किया, और साथ-साथ हिन्दी-भाषा को शृंखलामुक्त कर दिया। उर्दू के साथ मुकाबिला करने में, खड़ी बोली पद्य एक शक्तिशाली अस्त्र बना, और संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली इसके द्वारा और भी जनप्रिय बन सकी।

हिन्दी के निर्माताओं में आज हम कृतज्ञ हृदय से श्री अयोध्या प्रसाद जी का स्मरण कर रहे हैं, और हम अपनी जाति के लिए, खास करके हिन्दी-संसार के लिए, यह प्रार्थना करते हैं कि उनकी स्मृति हमारे राष्ट्रजीवन के इतिहास में अमर रहे ॥ इति शम् ॥

बुधवार, १७ आषाढ़,
शकाब्द १८८१;
८ जुलाई, खीष्टाब्द १९५९।

—सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

खत्री जी की 'नागरी'

हिन्दी-भाषा-सम्बन्धी प्रयत्न समय-समय पर कई बार हुए हैं। एक समय वह था जब हिन्दी सभी देशी भाषाओं में जेठी होने के कारण अन्तिम प्राकृत-स्वरूप से सुसंस्कृत होकर साहित्य में प्रयुक्त हो चली। उस समय विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का स्वरूप स्फुट नहीं था। इसी से 'भाखा' के नाम पर सब मध्य भाषा का प्रधान रूप लेकर चलते थे, अपने प्रादेशिक प्रयोग भी उसमें मिला देते थे। मेरुदंड हिन्दी का या मध्य-भाषा का ही रहता था, अन्य भाषाओं के आदिम रूप कहीं-कहीं झलक-भर जाते थे। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में किस प्रदेश की भाषा मध्य-भाषा थी, इसकी छानबीन में पड़ना और मतभेदों का खंडन-मंडन करना अभीप्सित नहीं। पर प्राकृत भाषा से यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि मध्य-भाषा कौन भाषा थी। प्राकृतों में मुख्य महाराष्ट्री मानी जाती है। यों तो काव्य-ग्रंथों में प्रयुक्त और नाट्य-ग्रंथों में विनियुक्त सभी प्राकृतों को भाषा-विज्ञान का आधुनिक शोध कृत्रिम कहता है। अर्थात् यह बतलाता है कि प्राकृत-वैयाकरणों के बनाये सूत्रों के आधार पर भाषा गढ़ी गई है। पर प्राकृत वैयाकरणों ने अपने सूत्रजाल जिस किसी भाषा के आधार पर बनाये और उसमें मध्यभाषा जिसको रखा, वह महाराष्ट्री नहीं है, शौरसेनी है। 'महाराष्ट्री' शब्द का सम्बन्ध 'मराठी' से नहीं है। प्राकृत की मध्यभाषा के आधार पर सार्वदेशिक जो परिष्कृत भाषा बनी, वह महाराष्ट्री हुई। मध्यभाषा शौरसेनी थी। उसके पूर्व में मागधी थी और पश्चिम में पैशाची। शौरसेनी और मागधी के बीच मिली-जुली अर्धमागधी थी। अर्धशौरसेनी नहीं, अर्धमागधी नाम दिया वैयाकरणों ने। इसी से कि उसका झुकाव मागधी की ओर कुछ अधिक था। अर्धमागधी से विकसित देशी भाषा अवधी कहलाती है। इस अवधी के भी दो रूप माने जाते हैं—पूर्वी और पश्चिमी। यदि प्राकृत वैयाकरणों के नाम से ही समझने का प्रयास किया जाय तो कह सकते हैं कि पूर्वी अवधी तो अर्धमागधी है और पश्चिमी अवधी अर्धशौरसेनी। ठीक इसी प्रकार शौरसेनी और पैशाची के बीच की भी स्थिति संभावित थी, अर्थात् अर्धपैशाची और अर्धशौरसेनी की। संप्रति इसके अवशेष इतने नहीं हैं कि उनके पक्के प्रमाणों से इसे स्पष्ट किया जा सके। पर यह भाषाविज्ञान ही कहता है कि पंजाब की भाषा में भी यही स्थिति थी—पश्चिमी और पूर्वी। पश्चिमी भाषा को 'लहँदा' नाम दिया गया। प्राकृत-वैयाकरणों की सरणि से ही समझना चाहें तो यों कह सकते हैं कि पश्चिमी अंचल की भाषा को अर्धपैशाची और पूर्वी अंचल की भाषा को अर्धशौरसेनी कह सकते हैं। इसी पश्चिमी अर्धशौरसेनी से 'खड़ी बोली' का विकास हुआ है। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' पश्चिमी अवधी या पूर्वी अर्धशौरसेनी में है। इसी से एक वैयाकरण ने सप्रमाण सिद्ध किया था कि उसकी भाषा को ब्रजभाषा (शौरसेनी) से पृथक् मानने की आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी शौरसेनी तत्त्व से विरहित नहीं हो सकती, मध्यभाषा के मेरुदंड का त्याग नहीं कर सकती। जब प्रादेशिक भाषाएँ स्वच्छन्द नहीं हुई थीं तब कोई रचना करने बैठता और शौरसेनी के प्रदेश से दूर का होता तो शौरसेनी को लेकर उसमें अपने प्रादेशिक प्रयोग भी मिलाता रहता। हिन्दी के अन्तर्गत विद्यापति की रचना इसी से गृहीत होती है कि उन्होंने मैथिली (मागधी) को व्रजरंजित या शौरसेनी-रंजित करके रखा है। जो कर्त्ता आगे चलकर प्रादेशिक भाषाओं के उद्भव पर उसके अमिश्रित रूप में रचना करने लगे, उनकी कृतियाँ हिंदी के अंतर्गत नहीं मानी गईं। मीरा और नानक भी हिंदी के कर्त्ता इसी से माने जाते हैं। शौरसेनी से रंजित करने का कारण यह था कि वैसी रचनाएँ प्रादेशिक रूप को भी लिए हुए दूर तक फैल सकती थीं। जो कवि शौरसेनी के अंचल से जितनी ही दूर पड़ता था, उसके सामने भाषा के सार्वदेशिक रूप को बनाये रखने का प्रश्न उतने ही विकट रूप में आता था। एकरूपता बनाये रखने के लिए आंदोलन आप-से-आप उठ खड़े होते थे। भारत के पूर्वी प्रदेशों बंगाल, उड़ीसा, असम तथा नेपाल में 'व्रजबुली' इसी आंदोलन के फलस्वरूप बनी रही। राजस्थान में उसने 'पिंगल' नाम से आंदोलन किया। इस प्रकार उत्तरापथ पूर्व से पश्चिम तक एक भाषा में मुखरित होता रहा। भारत के मध्यभाग में उतनी कठिनाई नहीं थी, पर दक्षिणापथ में कठिनाई थी। शौरसेनी का विस्तार दक्षिणापथ के कम-से-कम उत्तरी संघ में तो हो ही गया था। दूर दक्षिण तक शौरसेनी एकता का सूत्र नहीं फेंक सकी।

यही स्थिति लिपि की भी थी। सबका मूल ब्राह्मी लिपि से संबद्ध है। उर्दू में व्यवहृत परिष्कृत फारसी लिपि और अँगरेजी में प्रयुक्त रोमी लिपि को छोड़कर भारत में जितनी लिपियाँ हैं, सब ब्राह्मी से विकसित हैं। दक्षिण की जिन भाषाओं को द्राविड़-भाषा कहकर पृथक् किया जाता है उनकी लिपि भी ब्राह्मी से ही विकसित है। अथवा कहना चाहिए कि नागरी के दो अंकुर ब्राह्मी से प्रस्फुटित हुए—उत्तरी नागरी और दक्षिणी नागरी। इन्हीं के विविध रूप भारतीय भाषाओं में चलते हैं। इस प्रकार भारती मानस आप-से-आप एक भाषा शौरसेनी के सार्वदेशिक माध्यम और एक लिपि नागरी के अंतःप्रादेशिक माध्यम का आंदोलन करता आ रहा है। प्रादेशिक भाषा के रूप भी एक ही उत्स से उद्भूत हैं और प्रादेशिक लिपियों के रूप भी एक ही स्रोत की शाखाएँ मात्र हैं। प्रादेशिक भाषाओं और प्रादेशिक लिपियों के विकास के अनंतर अंतःप्रादेशिक भाषा और लिपि का प्रश्न सामने आता है। भारतीय परंपरा के अनुसार हिंदी (शौरसेनी) भाषा और नागरी (ब्राह्मी) लिपि ही सार्वत्रिक मानी जाती रही है। हिंदी भाषा के अंतर्गत व्रजी, अवधी और खड़ीबोली उपभाषाएं मानी गई हैं। खड़ीबोली की भी दो शैलियाँ हैं—एक उर्दू की और दूसरी हिंदी की।

अवधी में सूफी कवियों ने ग्रंथों का लिखना आरंभ किया। उन्होंने अवधी भाषा का सहज रूप ही ग्रहण किया, जैसा प्रयोग में चलता था वैसा ही। उसमें अपनी ओर से मिश्रण या परिष्कार का प्रयास उन्होंने नहीं किया। पिछले काँटे कुछ ने अरबी-फारसी के कुछ सांप्रदायिक शब्द अधिक धर दिये। इतना होते हुए भी अवधी भाषा 'निसोत' नहीं रह सकी। रचना करनेवाले कुछ हिंदी के ग्रंथ पढ़ते ही थे। हिंदी के ये ग्रंथ उन्हें शौरसेनी अर्थात् व्रजीवाले ही मिलते थे। व्रजी और अवधी में व्याकरण की दृष्टि से जो प्रमुख अंतर है, वह कर्त्तरि और कर्मणि प्रयोग

का है। पूर्वी प्रवृत्ति कर्त्तरि प्रयोग की है, कर्मणि का उसने ग्रहण नहीं किया। पश्चिम में कर्मणि प्रयोग चलते हैं। यह प्रवृत्ति जायसी की रचना में कहीं-कहीं मिलती है। इसे स्वर्गीय पं० रामचंद्र शुक्ल ने प्रवृत्ति-विरुद्ध प्रयोग कहा है, उसका कारण वे नहीं ढूँढ़ सके। मेरी धारणा यही है कि ब्रजी की रचनाओं के पढ़ने के कारण उन्होंने वैसे प्रयोग अनजाने किये हैं। तुलसीदास के रामचरितमानस में भी दोनों प्रकार के प्रयोग हैं। देशी भाषाओं के व्याकरणों का निर्माण नहीं हुआ। कभी किसी ने कुछ प्रयास किया भी तो उसका व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। अपने अध्ययन से ही रचयिता भाषा का रूप स्थिर करता था। इसलिए मिश्रण हो जाना स्वाभाविक था। पूर्वी भाषाओं की प्रवृत्ति प्राकृतस्थ या ठेठ की अधिक थी और पश्चिमी भाषाओं की प्रवृत्ति संस्कृतस्थ या परिष्कार की ओर अधिक थी। आगे चलकर पूर्व में भी संस्कृतस्थ होने की प्रवृत्ति बढ़ी। बँगला और उड़िया में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। ठेठ की प्रवृत्ति को ग्रामीय और संस्कार की प्रवृत्ति को नागरिक कहते थे। प्राकृत भाषाओं के अनंतर अपभ्रंश भाषाएँ फैलीं। उनमें मध्यभाषा के रूप में जिस अपभ्रंश का ग्रहण हुआ, वह 'नागर' था। देशी भाषाओं के रूप में जब अपभ्रंश भाषाएँ विकसित हुईं तो पश्चिमी अर्धशौरसेनी अंचल की भाषा या खड़ी बोली 'नागरी' भाषा के नाम से प्रख्यात हुई और अब भी उधर उसे 'नागरी' ही कहते हैं। 'नागरी-प्रचारिणी सभा' में 'नागरी' शब्द का अर्थ 'नागरी' भाषा और 'नागरी' लिपि दोनों है।

उत्तरप्रदेश के पश्चिमी अंचल या खड़ी बोली अथवा नागरी भाषा के अंचल में जो जातियाँ बसी हैं, उनकी घर की बोली नागरी ही है। खत्री-जाति की स्त्रियाँ, बच्चे सभी खड़ी बोली में या नागरी में ही वार्तालाप करते हैं। बिहार के मुजफ्फरपुर में रहनेवाले अयोध्याप्रसाद जी खत्री उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर के खत्री भाइयों की ही बिरादरी के थे। उनकी घर की बोली 'नागरी' थी। जो 'नागर' अपभ्रंश या 'नागरी' हिंदी-भाषा के प्रयोक्ता होते हैं, वे अन्य प्रादेशिक बोलियों को 'नागर' शब्द के जोड़-तोड़ में 'ग्रामीय' या 'ग्रामीण' कहते हैं। सामान्यतया यह भेद केवल पार्थक्य के लिए ही होता है। पर बहुत-से लोग अहंता, ममता, तिरस्कार आदि प्रयोजनों से 'नागरी' बोलियों को उत्तम समझते और दूसरों को भी जबर्दस्ती समझाना चाहते हैं। जिसका आग्रह होगा उसके विपरीत दूसरे का तिरस्कार होना स्वाभाविक है। बैसवाड़े आदि में जहाँ घर की बोली या ग्रामीय बोली में बोलने का ही आग्रह होता है, वहाँ यदि कोई खड़ी बोली या नागरी बोलता है तो 'का पक्की झरत हौ' कहकर उसका तिरस्कार करते हैं। वहाँ कच्ची या ग्रामीय बोली का आग्रह होने से पक्की या नागरी का प्रयोग उचित नहीं समझा जाता। श्री अयोध्याप्रसाद जी खत्री जो नागरी का झंडा लिये घूमते थे तथा ब्रजी और अवधी को ग्रामीय कहते थे, उसका मूल यही था। आग्रह दुराग्रह भी हो जाया करता है। यदि कोई तथ्य को सिद्धांत या स्थापना के रूप में प्रस्तावित करने लगे तो सत्याग्रह की दृष्टि से बात खटकती है। खत्री जी की बातों के खटकने का हेतु यही था। 'नागरी' तथा अन्य बोलियों में तत्वत: ऐसा अंतर नहीं था कि उनको उत्तम-अधम, प्रकृष्ट-निकृष्ट संज्ञा दी जा सके। भाषा-विज्ञान ने तो भली भाँति प्रमाणित कर दिया है कि किसी भी बोली को अपकृष्ट, अपभ्रंश, ग्रामीण आदि नाम नहीं दिया जा सकता।

उसने तो उलटी गंगा बहाई है। परिष्कृत बोली में अधिक कृत्रिमता होती है, इसलिए नागरी या संस्कृत भाषा की अपेक्षा ग्रामीय या प्राकृत भाषा का ही भाषा-विकास की दृष्टि से अधिक महत्त्व है।

नागरी या खड़ीबोली परिष्कृत रूप में आने पर साहित्य में ली गई। अपने प्रकृत प्रयोक्ताओं से उसका सम्पर्क छूट गया। इसलिए उसमें कृत्रिमता आ गई। 'रीति' का बहुवचन साहित्य में 'रीतियाँ' होता है। बोलचाल में 'रीतिएँ' या 'रीतियें'। हिन्दी के कुछ विद्वान् 'रीतिएँ' या 'रीतियें' ही लिखते हैं, जिसे दूसरे लोग अशुद्ध मानते हैं। पूर्वी प्रभाव से 'हठ' शब्द पुल्लिंग में चलता है, पश्चिम में वह स्त्रीलिंग है। जब जिसका प्रभाव प्रबल होगा तब उसके ही अनुसार काम करना पड़ेगा। खत्रीजी के समय में भाषा-सम्बन्धी विवेचन इतना अधिक नहीं था, इसलिए 'नागरी' के प्रचार के लिए उन्होंने जो कुछ कहा वह 'सामयिक' था। 'प्रचारक' को कुछ ऐसी कहनी भी पड़ती है। अनेक दृष्टियों से उनके खंडन-पक्ष पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। उनका मंडन-पक्ष ही दृष्टिपथ में रखने योग्य है। क्या ही अच्छा होता कि उनके प्रयास में जो सद्गुण था उसका सत्कार सभी करते और 'नागरी' भाषा और 'नागरी' लिपि के लिए सारा राष्ट्र एक मत से प्रयासी होता। भारतीय एकता का सूत्र न अंगरेज बाँध सके और न कभी अंगरेजी बाँध सकेगी। 'नागरी' ही उस सूत्र को बाँधने में सर्वतोभावेन समर्थ है। जिस सत्य को खत्रीजी ने उस परतंत्र अवस्था में लक्ष्य किया था, वही सत्य इस समृद्ध और स्वतंत्र युग में भी लक्ष्य करने को है, यह शोचनीय भी है और विचारणीय भी। बहुत कुछ होने पर भी लक्ष्य की प्राप्ति अभी नहीं हो सकी है। जहाँ खत्रीजी थे, वहीं हम नहीं हैं, आगे बढ़े हैं, पर पटपर-भर पार कर सके हैं, खाई-खंदक अभी पार नहीं कर पाये हैं। उनकी-सी लगन की अपेक्षा आज भी है। उनकी स्मृति हममें वह लगन उत्पन्न करे। उनका पुण्य देश में नागरी का उचित महत्त्व निर्विरोध स्थापित करे, यही अभिलाष है। जय नागरी !

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र

●

युग-द्रष्टा श्री अयोध्या प्रसाद जी खत्री

ईसवी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हिन्दी-भाषा की भाग्य-नीहारिका ने हिन्दी के आकाश में जो अनेक उज्ज्वल और प्रभावशाली तारे उत्पन्न करके खिलाये थे, उनमें मुजफ्फरपुर के स्वर्गीय श्रीअयोध्या प्रसाद जी खत्री भी अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि उनके प्रति अपनी कृतज्ञता और श्रद्धा प्रकट करने तथा हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उन्हें उपयुक्त आसन देने में हम आज तक, अपने प्रमाद के कारण, असमर्थ ही रहे। पर हीरा चाहे लाखों वर्ष मिट्टी में दबा पड़ा रहे, फिर भी वह हीरा ही रहता है, और कभी-न-कभी उसके ऐसे गुणग्राही पारखी निकल ही जाते हैं, जो उन पर जमी हुई मैल दूर करके उनके सब पहल देखते और उनका उचित मूल्यांकन तथा सम्मान करते हैं। श्रीअयोध्या प्रसाद जी भी ऐसे ही हीरों में से हैं, और आज जो पारखी फिर से उन्हें प्रकाश में ला रहे हैं, वे हिन्दी-जगत् के धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं तो यही समझता हूँ कि जिस प्रकार श्रीभारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी गद्य के जन्मदाता थे, उसी प्रकार श्रीअयोध्या प्रसाद जी खत्री आधुनिक हिन्दी-पद्य के जन्मदाता थे। पर जैसी यश-चन्द्रिका भारतेन्दु जी की फैली, वैसी क्या, उसकी शतांश भी श्रीअयोध्या प्रसाद जी की न फैलने पाई। उलटे हमारे इतिहास-लेखकों ने कई तरह से उनकी खिल्लियाँ उड़ाईं और उनपर धूल डालने का प्रयत्न किया। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसके मूल में एक विशिष्ट कारण काम करता हुआ दिखाई देगा। भारतेन्दु जी ने जिस समय हमें हिन्दी-गद्य प्रदान किया था, उस समय हमारे पास पहले से गद्य नाम की कोई ऐसी विशेष महत्त्व की चीज नहीं थी, जिसका हमें गर्व होता। वह हमारे लिए नये वरदान के समान था, और इसी रूप में हमने उसे शिरोधार्य किया था। पर श्रीअयोध्या प्रसाद जी जब हमें हिन्दी-पद्य की माला पहनाने लगे, तब हमारे गले में अवधी तथा व्रजभाषा की ऐसी सुन्दर और सुरभित काव्य-मालाएँ वर्त्तमान थीं, जिनपर हमें बहुत दिनों से बहुत अधिक और उचित गर्व था। ऐसे गौरवान्वित काव्यों के मोह ने हमारी आँखों पर जो परदा डाल रखा था, उसी ने हमें श्रीअयोध्या प्रसाद जी सरीखे रत्न की ठीक और पूरी परख नहीं होने दी।

पर समय सदा एक-सा नहीं रहता, वह बराबर बदलता रहता है। श्रीअयोध्या प्रसाद जी ने किसी समय 'खड़ी बोली पद्य' का जो झंडा उठाया था, वह अब अच्छी तरह हिन्दी-क्षेत्र में गड़ चुका है और खूब ठाट से फहरा रहा है। अवधी और व्रजभाषा के काव्यों का सौष्ठव कम नहीं हुआ है, और न हो सकता है; फिर भी खड़ीबोली का पद्य दिन पर दिन अधिक आकर्षक और प्रशस्त हो रहा है। अब वह हमारे आधुनिक साहित्य का ऐसा उपयोगी और पुष्ट अंग बन चुका है, जो आगे चलकर हमारे बहुत काम आयेगा, और हमारी मर्यादा बढ़ायेगा। और इसका बहुत बड़ा श्रेय स्व० श्रीअयोध्या प्रसाद जी खत्री को है।

यही कारण है कि मैं श्रीअयोध्या प्रसाद जी को युग-द्रष्टा कहता हूँ। युग-द्रष्टा का अर्थ है—अपने युग अर्थात् समय की गति-विधि और प्रवृत्ति देखने, पहचानने तथा समझनेवाला। वे अपनी दूरदर्शी तथा पैनी दृष्टि से देख रहे थे कि नया युग आनेवाला है, आना चाहिए और आकर रहेगा। वे कहा करते थे—अभी हिन्दी में कविता हुई ही कहाँ! यद्यपि उनका यह कथन एक विशिष्ट दृष्टिकोण से बहुत कुछ सत्य था, फिर भी हमारे अनेक आदरणीय आलोचकों ने यह कहकर उनकी भर्त्सना की है कि वे अवधी और व्रजभाषा को हिन्दी नहीं मानते थे, बल्कि 'भाखा' कहते थे। पर ऐसी भर्त्सना करते समय हम यह बात भूल जाते हैं कि जिस युग में श्रीअयोध्या प्रसाद जी खत्री का आविर्भाव हुआ था, उस युग में हमारा ज्ञान कितना परिमित और दृष्टिकोण कितना सीमित था। अवधी और व्रजभाषा की कविता समझने-समझाने के लिए आज भी हमें कितने प्रकार के उपाय तथा यत्न करने पड़ते हैं, और उनके काव्य-साहित्य का उज्ज्वल रूप सबके सामने रखने के लिए कितने प्रयास करने पड़ते हैं, और उनकी ओर विद्यार्थियों को प्रवृत्त करने के लिए कितने साधन खड़े करने पड़ते हैं। आज जबकि देश के कोने-कोने में हिन्दी का पठन-पाठन होने लगा है, तब अन्य भाषा-भाषियों को यह बतलाने का हमें विशेष प्रयत्न करना पड़ता है कि अवधी और व्रजभाषा भी हिन्दी की ही शाखाएँ हैं और उनका बहुमूल्य साहित्य भी वस्तुतः हिन्दी का ही है। यहाँ तक कि आज हम भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी आदि काव्य-साहित्य को भी अपना ही कहने और मानने लगे हैं। सच पूछिए तो हम आज इन सबको पुनरुज्जीवित करने में ही अपनी बहुत-सी शक्ति लगा रहे हैं। यह सब इसीलिए कि आज हमारा ज्ञान और दृष्टि दोनों पहले से बहुत अधिक व्यापक हो गये हैं। ऐसी दशा में यदि श्रीअयोध्याप्रसाद जी ने खड़ी बोली के पद्य का झंडा उठाकर हमारा ध्यान एक नये क्षेत्र, नई दिशा और नये मार्ग की ओर आकृष्ट किया, तो सचमुच उन्होंने आनेवाले हिन्दी-जगत् का बहुत बड़ा उपकार ही किया था।

हमारे लिए आज यह बहुत बड़े सौभाग्य और हर्ष की बात है कि हमें अपने ऐसे उपकारी नेता और मार्ग-दर्शक के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर मिल रहा है। आधुनिक हिन्दी-जगत् को परम निष्ठापूर्वक और नतमस्तक होकर श्रीअयोध्याप्रसाद जी खत्री का अभिनन्दन करना चाहिए, उनके प्रति अपनी परम कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए, और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि भविष्य में कभी उनके साथ वैसा अन्याय न होने पाये जैसा अब तक भ्रमवश होता आया है।

२०–१२–५६ —रामचन्द्र वर्मा

बाबू अयोध्या प्रसाद जी खत्री

आज बिहार की हिन्दी-साहित्य-वाटिका श्री-विहीन क्यों देख पड़ती है? वह साहित्य-वाटिका, जिसमें अनेक गुल खिले थे, आज पुष्प-शून्य क्यों हो रही है? इस रमणीय वाटिका के सुन्दर नववृक्षों के पत्र-पल्लव किधर चले गये? शाखा-प्रशाखाएँ इस प्रकार विशीर्ण क्यों पड़ी हैं? आज यह वाटिका भयावनी क्यों हो रही है? इस साहित्य-वाटिका को सुशोभित करनेवाला, नेत्रों को जुड़ानेवाला, हरित लताओं से परिपूर्ण तथा पुष्प-रत्नों से भूषित हिन्दी-साहित्य-वृक्ष मृतवत् क्यों खड़ा है?

दो-चार दिन भी नहीं हुए कि इस साहित्य-वाटिका की क्यारियों को उजाड़ कर पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, बाबू साहिब प्रसाद सिंह, महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह, पण्डित गोपीनाथ कुमर आदि चल ही चुके थे कि आज, हा काल! जो दो-एक पुष्प-रत्न रह गये थे, उनको भी तूने नाश कर दिया। साहित्य-वाटिका अब सूनी पड़ी है। जो वाटिका कोकिलों के मधुर स्वरों से गूँज रही थी, आज कौओं के क्रूर और अश्रवणीय कलरवों से श्मशान हो रही है।

प्यारे पाठको! हिन्दी के परम भक्त, सच्चे दास, योग्य सुपुत्र, जिन्होंने अपनी माता हिन्दी की सेवा अनेक विपत्तियाँ झेलने पर भी अपने अन्तिम दिन तक अचल प्रेम और निःस्वार्थ भाव से की—वही बाबू अयोध्याप्रसाद, वही हिन्दी के रत्न, वही आपके मित्र, अब इस संसार में नहीं हैं! जिन्होंने हिन्दी की उन्नति के हेतु अपना सर्वस्व—तन, मन और धन—अर्पण कर दिया था, जिन्होंने अनेक कटु वचन सुनने पर भी अपने जीवन के प्रधान उद्देश्य खड़ी बोली में पद्य बनाने के आन्दोलन को नहीं छोड़ा, जिन्होंने सहस्रों रुपये खर्च हो जाने पर भी हिन्दी की उन्नति के हेतु किसी कार्य से मुँह नहीं मोड़ा; वही बाबू अयोध्याप्रसाद आज हिन्दी को अनाथ कर, खड़ी बोली के पद्य को अपने मित्रों की सहायता तथा सहानुभूति पर छोड़कर, अपने मित्रों को शोक-सागर में डुबोकर, ४ जनवरी, सन् १६०५ ई० को बाबू हरिश्चन्द्र, पण्डित प्रताप नारायण मिश्र, और व्यास जी आदि मित्रों की मण्डली में जा मिले। हाय, हाय, इसके थोड़े ही दिन बाद बिहार-बन्धु के पुराने सम्पादक पण्डित केशवराम भट्ट भी बिहार की साहित्य-वाटिका पर और भी अधिक कुठाराघात करके बाबू अयोध्याप्रसाद के अनुगामी हो गये।

बाबू साहब की उम्र ४६-४७ वर्ष की थी। आपकी अन्तिम यात्रा के पूर्व ही आपकी धर्म-पत्नी को प्लेग उठा ले गया। आप भी अपनी सहधर्मिणी के पीछे चल दिये। ईश्वर दोनों प्राणियों की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

बाबू साहब के पिता का नाम बाबू जगजीवन लाल था। बाबू अयोध्याप्रसाद अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। प्रथम पुत्र का नाम बाबू महावीर प्रसाद था और तृतीय का बाबू द्वारिका

प्रसाद है। इन लोगों का निवास-स्थान पहले जिला बलिया के सिकन्दरपुर में था। मुजफ्फरपुर में बाबू जगजीवन लाल ने आकर वास किया था। वे धनी आदमी नहीं थे। किन्तु पुस्तकें बेचने की एक दूकान उनकी थी जिसके कारण सुखपूर्वक उनके दिन बीतते थे। बाबू अयोध्या प्रसाद हिन्दी, फ़ारसी पढ़कर जिला स्कूल में अङ्गरेजी पढ़ने लगे। कहते हैं कि बचपन ही से इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। हिन्दी के समाचार-पत्र आदि पढ़ने की रुचि लड़कपन ही से इनमें थी। जब आप एण्ट्रेन्स क्लास में जाने को थे तभी आपके पिता की मृत्यु हो गई। कई कारणों से पिता की मृत्यु के बाद इनको अध्ययन छोड़ना और पुस्तक-विक्रय की दूकान के कार्य को देखना पड़ा। फिर आप कुरहनी के माइनर स्कूल के हेडमास्टर नियुक्त हुए और बहुत दिनों तक वहाँ रहे। उस काम को छोड़कर बाबू साहब मुजफ्फरपुर में रहने और सिविलियन साहबों को हिन्दी पढ़ाने लगे। एक साहब की कृपा से उन्हें कचहरी में एक नौकरी मिली। कचहरी के कई विभागों में रहकर अपनी कार्यदक्षता से बाबू साहब कलेक्टर साहब के पेशकार हुए। इस पद पर आप १९ वर्ष से आप काम करते थे।

बाबू साहब हिन्दी और फ़ारसी के विद्वान् थे ही। इसके अतिरिक्त अँगरेजी में भी आपने अच्छी योग्यता सम्पादन कर ली थी।

बाबू साहब चरित की उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठा, असाधारण धैर्य्य और साहस आदि सद्गुणों से विभूषित थे। जिस कार्य में आप लग जाते थे और जिस कार्य को आप सत्य और उत्तम समझते थे, उसको आप विना किये नहीं रहते थे। यही कारण था कि बाबू साहब का अपने मित्रों से अक्सर मतभेद हो जाता था।*

हिन्दी-भाषा के लिए बाबू साहब ने वे काम किये, जिनको बहुत थोड़े ने ही किया होगा। हिन्दी-भाषा की उन्नति के हेतु उन्होंने इतना द्रव्य खर्च किया जितना कितने राजा-महाराजों ने भी नहीं किया। तभी तो कहना पड़ता है कि बाबू साहब की अकाल-मृत्यु से हिन्दी-साहित्य को जो हानि हुई है, उसकी पूर्त्ति होना कठिन प्रतीत होता है। बाबू साहब के जीवन का प्रधान उद्देश्य हिन्दी की उन्नति ही करना था। यह बात शायद बहुतों को खटकेगी; किन्तु इस बात की सत्यता का प्रमाण वे ही दे सकेंगे, जिनको बाबू साहब के साथ वार्त्तालाप अथवा पत्र-व्यवहार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। खड़ी बोली के पद्य के प्रचार हो जाने ही को वे अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य समझते थे। जिस प्रकार भक्त को उपास्य देवता के चरण कमल का दर्शन ही जीवन का उद्देश्य जान पड़ता है, उसी प्रकार

---

* मुजफ्फरपुर से एक सज्जन और और बातों के सिवा, जो इस चरित में आ गई हैं, यह भी लिखते हैं—"बाबू अयोध्या प्रसाद को बहुत आदमियों के साथ बैठना या उनसे मिलना पसन्द न था। वे समालोचक भी थे। उनकी समालोचना से घर-बाहर का कोई भी आदमी न छूटा होगा। वे कभी-कभी लोगों पर लेख भी लिखा करते थे। वे परले दरजे के हठी थे। पचीसी निकल जाने के बाद वे साधु-समागम और साधु-सत्कार भी करने लगे थे। उनका बनवाया हुआ एक शिवालय भी है। उनका जितना काम था सब विलक्षण था।" बाबू साहब के हठी और विलक्षण होने का एक प्रमाण यह है कि आप लोगों की खानगी चिट्ठियाँ तक छाप-छापकर उनकी ग़लतियाँ बताते थे। उनके कुछ कागजों की हमने एक मिसल बना रखी है, जिससे उनके स्वभाव की विलक्षणता खूब जाहिर होती है।—सम्पा० सरस्वती

बाबू साहब खड़ी बोली के पद्य का प्रचार हो जाना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझते थे। इसके लिए वे सदा व्यस्त रहते थे। जहाँ कहीं इसके विरुद्ध कुछ छपता था वहाँ वे इसके आन्दोलन की पूरी फाइल भेजकर शास्त्रार्थ करने पर तैयार हो जाते थे। तात्पर्य यह है कि आप बराबर इसी चिन्ता में रहते थे कि खड़ी बोली में पद्य का पूर्ण प्रचार हो जाय। इसके लिए सब प्रकार खर्च करने और कष्ट सहने को भी वे प्रस्तुत रहते थे। जब मुझसे आप मिलते थे, चाहे उनके डेरे पर, अथवा आफिस में, अथवा रास्ते में, उनका यही प्रश्न होता था कि—"कहिये कुछ नई लिटरेरी न्यूज (Literary news) है ?" बाबू साहब का यह प्रश्न मुझको जन्मभर स्मरण रहेगा।

हिन्दी भाषा में प्रेम का बीज बाबू साहब के हृदय में बचपन ही में पड़ा था। सन् १८७७ ई० में बाबू साहब ने "हिन्दी-व्याकरण" लिखकर प्रकाशित किया, जिसके द्वितीय संस्करण को खड्गविलास प्रेस ने छापा है। यह व्याकरण एक निराले ढंग का है। इसको बाबू साहब ने अङ्गरेजी व्याकरण की रीति पर लिखा है। ग्रियर्सन साहब इनके व्याकरण के विषय में लिखते हैं—

"It contains a number of points which have not been dealt with in any other Hindi Grammar written in the vernacular. It seems to be written in intelligible language and well-adapted for school purposes."

अर्थात् इस व्याकरण में कई ऐसी बातें हैं, जो किसी दूसरे हिन्दी-व्याकरण में नहीं पाई जाती हैं। यह पुस्तक उत्तम और सरल भाषा में लिखी गई है और स्कूलों के लिए परमोपयोगी है।

इस व्याकरण के अन्त में बाबू साहब ने लिखा है कि छन्दो-विचार का प्रकरण दूसरे भाग में छपेगा। उसी साल बाबू साहब का ध्यान इस विषय पर आकर्षित हुआ कि जिस ठेठ हिन्दी (खड़ी बोली) में हिन्दी के गद्य लिखे जाते हैं, उसी में पद्य न लिखे न जाकर ब्रजभाषा में लिखे जाते हैं, यह हिन्दी-साहित्य में एक बड़ी भारी त्रुटि है। अतएव बाबू साहब ने चाहा कि जिस बोली में गद्य लिखा जाता है उसी में पद्य भी बनें। क्योंकि मन के सब भावों का आविर्भाव, जब तक खड़ी बोली में पद्य न बनेंगे, तब तक नहीं हो सकेगा। सन् १८८७ में बाबू साहब ने 'खड़ी बोली पद्य' भाग को लिखा और छपवाकर बिना मूल्य बाँटा। उसकी भूमिका में आप लिखते हैं—

"सन् १८७७ ई० में मैंने 'हिन्दी व्याकरण' लिखा था कि जिसके अन्त में 'छन्दो-विचार' के विषय में दूसरे भाग में लिखने को मैंने सूचना दी थी। मैं भाषा-छन्द को हिन्दी-छन्द नहीं मानता हूँ और इसीलिए छन्दो-विचार लिखने के पहले हिन्दी-छन्द, जिसको मैं मानता हूँ, इस पुस्तक में दिखलाता हूँ.........खड़ी बोली के व्याकरण में ब्रजभाषा को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिन्दी में Poetical license समझना हिन्दी व्याकरण की, मेरी समझ में भूल है। ....चन्द की हिन्दी को मैं 'पुरानी हिन्दी' और आधुनिक हिन्दी को 'खड़ी बोली' कहता हूँ।" इस पुस्तक के छपने पर इस विषय में

हिन्दुस्तान पत्र में कई लेख खड़ी बोली और ब्रजभाषा के पक्ष और विपक्ष में प्रकाशित हुए थे। उस आन्दोलन में जितने लेख समाचार-पत्रों में छपे थे उनको बाबू साहब 'खड़ी बोली आन्दोलन' नामक पुस्तक में पुस्तकाकार छपवाते थे। इसके कोई ७२ पृष्ठ छप चुके हैं। आशा है कि मुजफ्फरपुर की हिन्दी भाषा प्रचारिणी सभा शेष को छपवाकर इस पुस्तक को पूरा करेगी। बाबू साहब ने खड़ी बोली अथवा हिन्दी के पाँच भेद माने थे—(१) ठेठ हिन्दी, (२) पण्डित स्टाइल की हिन्दी, (३) मुंशी स्टाइल की हिन्दी, (४) मौलवी स्टाइल की हिन्दी और (५) यूरेशियन स्टाइल की हिन्दी। "खड़ी बोली पद्य" भाग में प्रथम तीनों स्टाइलों के पद्य संग्रहीत हैं और उसके दूसरे भाग में, जिसको बाबू साहब ने सन् १८८९ ई० में छपवाया था, मुख्यतया शेष दोनों स्टाइलों के पद्य हैं। सन् १८८९ ई० "खड़ी बोली पद्य"-भाग, को श्रीमान् फ्रेडरिक पिनकाट साहब द्वारा सम्पादित कराकर लन्दन में बाबू साहब ने बहुत खर्च करके छपवाया और बिना मूल्य बाँटा। यही प्रथम पुस्तक हिन्दी साहित्य के विषय में थी जो लन्दन में छपी थी। फ्रेडरिक साहब की सम्पादकीय टिप्पणी पढ़ने योग्य है। बाबू साहब के पाँचों स्टाइलों पर टिप्पणी करके पिनकाट साहब लिखते हैं—

"His object is to induce his countrymen to abandon the use of the archaic Braj dialect in their poetic Effusions, and to persuade those who favour Urdu to use Nagari instead of Arabic letters for their verses. In fact, he proposes a compromise ; one party is asked to abandon a cherished dialect of their language, and the other party to give up a customary method of writting it. By conforming to the compiler's suggestion, all parties meet on the common ground of the Khari Boli[1] or "correct speech" understood by all, and living, growing, and changing with the daily requirements of advancing civilization. It is certainly a grand occupation, worthy of the fullest realization ; for it would unite the greatest obstacle to the intellectual development of Northern India."

खड़ी बोली पद्य की समालोचना लन्दन के Overland Mail में भी छपी थी। श्रीमान् फ्रेडरिक पिनकाट साहब ने जो चिट्ठियाँ विलायत से बाबू साहब के पास भेजी थीं, उनमें एक जगह वे लिखते हैं—

"Your endeavour to induce your countrymen to Braj-bhasha is worthy of all praise and encouragement. When poetry is written, it should certainly be in the best and most

१—खड़ी बोली का अर्थ साहब नहीं समझे। स० स०।

elegant form of spoken language at the time it is written. Chand Bardai wrote in the language he spoke; so did Kabir; so did Tulsidas; so did Nanak and so do all poets who speak out the thoughts of their hearts. It is only artificial versifiers who make up verses about feelings which are not their own, who waste their time in composing in old, archaic or peculiar forms of speech. The result is that the taste of the people becomes corrupted, and more attention is paid to the sound of the verse, than to its sense................... The goodness of poetry depends more on the ideas expressed than on the language used. Too many modern Indian writers seem to think that a collection of high sounding words, in measured lines, constitutes poetry; hence they prefer the older forms of Hindi to give dignity to their compositions."

बाबू अयोध्या प्रसाद के खड़ी बोली-आन्दोलन का सम्पादन पण्डित भुवनेश्वर मिश्र करते थे। पण्डित जी को समय कम रहता है। इस कारण उसका सम्पादन बाबू साहब की जिन्दगी में समाप्त नहीं हो सका। मुजफ्फरपुर के बाबू युद्धविक्रम राय ने भी बाबू साहब को इसके प्रकाशन में सहायता दी थी। बाबू साहब ने उसके शेष भाग को छपवाकर प्रकाश करने की प्रतिज्ञा की है, जिसके लिए खड़ी बोली के प्रेमी-मात्र के धन्यवाद के पात्र होंगे। बाबू साहब यहाँ के कलक्टर साहब से बाबू अयोध्या प्रसाद के पुत्र को कुछ सहायता दिलाने में भी परामर्श कर रहे हैं, जिसके लिए आपको धन्यवाद है। मुजफ्फरपुर के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को उचित है कि Literary pension की भाँति बाबू अयोध्या प्रसाद के पुत्र को कुछ सहायता दे। आशा है कि हमलोगों के सुयोग्य जिलाधीश मिस्टर लेविंज (Mr. Levinge) इस पर विशेष ध्यान देंगे।

खड़ी बोली के विषय में 'चम्पारण चन्द्रिका' और 'हिन्दुस्तान' में भी आन्दोलन हुआ और उक्त बाबू साहब की उत्तेजना से बाबू गोविन्द प्रसाद ने खड़ी बोली के कई उत्तमोत्तम पद्य 'चम्पारण-चन्द्रिका' में छपवाये। उक्त पत्र में बाबू साहब ने यह भी सूचना दी थी जो खड़ी बोली पद्य में श्री रामचन्द्र का यश वर्णन करेगा उसको प्रति पद्य के लिए एक-एक रुपया पुरस्कार मिलेगा। बंगाली लोग भी पहले मिथिला-भाषा में कविता करते थे और तिरहुत के पण्डित विद्यापति मिश्र की कविता को उस समय के लोग आदर्श समझते थे। किन्तु पीछे से उन लोगों ने अपनी बोलचाल की भाषा में कविता करनी शुरू की जिसके कारण आज बङ्गाली साहित्य की इतनी उन्नति हुई है। अतएव यदि चेष्टा की जाय और खड़ी बोली में पद्य बनाये जाँय तो हिन्दी साहित्य की भी वैसी ही उन्नति हो सकेगी। बाबू अयोध्या प्रसाद ने बहुत खर्च और बहुत परिश्रम करके लोगों का ध्यान इस सुधार की ओर आकर्षित किया। इसके लिए वे हिन्दी के पठित समाज-मात्र के धन्यवाद के पात्र हैं। यह मुजफ्फरपुर,—नहीं

बिहार—के लिए अत्यन्त गौरव की बात है। हर्ष का विषय है कि बाबू साहब खड़ी बोली पद्य की उन्नति का 'श्री गणेशायनमः' खुद देख गये। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने भी बाबू साहब के अत्यन्त परिश्रम और पत्र-व्यवहार और प्रस्ताव करने पर खड़ी बोली में पद्य बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। यह विषय अब विवाद का नहीं रहा। तब भी देखते हैं कि किसी-किसी के मस्तक में यह बात अब तक नहीं घुसती। बाबू राधाकृष्णदास जी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका की दिसम्बर १९०० की संख्या में स्वीकार किया है कि उक्त बाबू साहब ही इस आन्दोलन के पिता और अगुआ हैं और बाबू श्यामसुन्दर दास, भारत-मित्र, पण्डित श्रीधर पाठक और श्री राधाचरण गोस्वामी आदि ने भी उनको इसका अगुआ करार दिया है।

इधर भी बाबू साहब ने हिन्दी की उन्नति के हेतु कई काम किए। बंगाल के श्रीमान् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर साहब की सेवा में उन्होंने एक मेमोरियल इस विषय का भेजा कि प्रायमरी (प्रारम्भिक) और मिडिल परीक्षा की पाठ्य-पुस्तकें केवल देवनागरी अक्षरों में छापी जाँय। उर्दू में न छापी जाँय। क्योंकि बिहार की कचहरियों में केवल नागरी अक्षर जारी हैं। बाबू साहब बर्दमान के महाराज के पास भी एक मेमोरियल के साथ डेप्यूटेशन ले गये थे। महाराज ने दिल्ली-दरबार के समय हिन्दी के विद्वानों की एक सभा करने में सहायता देनी स्वीकार भी की थी। किन्तु बाबू साहब के द्वारा बहुत चेष्टा की जाने पर भी काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने सभा करना तो दूर रहा, एक सूचना छपवा दी कि सभा करनी आवश्यक ही नहीं है। काशी की सभा के डेप्यूटेशन में बाबू साहब दिल्ली भी गये थे; किन्तु उस डेप्यूटेशन ने जो कार्य किया वह उसकी सभा ही जानती है। बाबू साहब समय-समय पर अनेक छोटी पुस्तकें और लेख आदि भी छपवाते और बाँटते रहे—जैसे 'मौलवी साहब के छन्द भेद', 'खड़ी बोली के अधिकारी' आदि। कई प्रसिद्ध लेखकों के लेखों पर बाबू साहब की समालोचनायें भी निकलीं। जब पण्डित श्रीधर पाठक जी मुजफ्फरपुर में आबपाशी कमीशन के साथ गये थे, तब बाबू साहब ने अपनी और वहाँ के कई सज्जनों की ओर से पण्डित जी को हिन्दी के सुलेखक होने के उपलक्ष में एक 'एड्रेस' भी दिया था।

बाबू साहब के कई लेख लिखे पड़े हैं। आप हिन्दी का सिलसिलेवार इतिहास छपवाना चाहते थे। उसके लिए आपने बहुत सी सामग्री इकट्ठी भी कर ली थी। स्थानीय हिन्दी-भाषा प्रचारिणी सभा तथा आरा की सभा का परम धर्म्म है कि बाबू साहब की एक उत्तम जीवनी और अधछपा हुआ 'खड़ी बोली आन्दोलन' आदि छापने का प्रबन्ध करें।

बाबू साहब के एक पुत्र करीब १० वर्ष का है। ईश्वर उसको चिरञ्जीवी रखे।

—चौधरी पुरुषोत्तम शर्मा

मार्च, १९०५ की 'सरस्वती' मासिक (प्रयाग) से उद्धृत।

परिचायिका

१८५७ वाले आन्दोलन को दबाकर ब्रिटिश-सरकार ने जो घोर नृशंस दमन आरम्भ किया तो उसका प्रभाव अन्य दमन-दलित स्थानों की भाँति बिहार की पश्चिमी और उत्तर-प्रदेश की पूर्वी सीमाओं—आरा, बलिया, गाजीपुर, आजमगढ़, जौनपुर आदि—पर भी भीषण रूप से पड़ा। अनेक गाँव, परिवार, और व्यक्ति उजड़-उखड़कर अन्य स्थानों में स्थायी शरणार्थी बन गये। बलिया-सिकन्दरपुर के बाबू जगजीवनराम खत्री भी अपने तीन शिशुओं सहित—उसी बहाव में मुजफ्फरपुर आ लगे और बस गये।

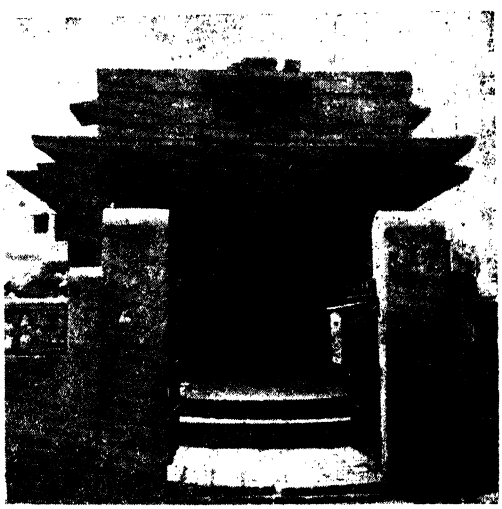
जगजीवनराम खत्री कुछ दिन कष्ट-असुविधा उठाने के बाद, पुस्तकों की एक दूकान खोलकर जीविका-निर्वाह करने लगे। उनके बड़े पुत्र अयोध्या प्रसाद मेधावी, परिश्रमी और कुछ हठी स्वभाव के थे। शीघ्र ही प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर मुजफ्फरपुर के जिला स्कूल में पढ़ने लगे। दुर्भाग्य से जब वे मैट्रिक परीक्षा देने जा रहे थे, उनके पिता की मृत्यु हो गई। लाचार होकर उन्हें घर-गृहस्थी और दूकानदारी में फँस जाना पड़ा। ब्याह उनका हो चुका था। दो लड़के और एक लड़की के बाप भी बन गये थे। कुछ दिनों बाद एक लड़का बीमारी से चल बसा, दूसरा जयनारायण भी पिता की मृत्यु के तीस साल बाद मर गया। लड़की कृष्णाकुमारी का ब्याह काशी के गऊघाट-निवासी श्री गजाधर प्रसाद कक्कड़ के साथ हुआ था। इस समय उन दोनों में से भी, सिवा उनकी तीन लड़कियों और उनकी सन्तानों के, कोई नहीं है। अयोध्या बाबू को अन्त तक यह वेदना रही कि उनकी लड़की फिर कभी नैहर न आई। वही कभी-कभी काशी जाकर भेंट कर आते थे।

नेपाल से सटा होने के कारण मुजफ्फरपुर ब्रिटिश-काल में बड़ा ही महत्वपूर्ण माना जाता था। तब बिहार बङ्गाल से मिला हुआ था। उत्तरीय बिहार के अँगरेज जमीन्दारों और निलहे गोरों का मनोरञ्जन-स्थान और राजनीतिक केन्द्र था, यह नगर। कलकत्ता के फोर्टविलियम कॉलेज में जान गिलक्राइस्ट द्वारा देशी भाषाओं की छान-बीन की योजना चालू थी। कहना नहीं होगा कि अँगरेजी भेदनीति के कारण, एक ही भाषा लिपिभेद से हिन्दी और उर्दू के रूपों में विभाजित हो चुकी थी और गिलक्राइस्ट साहब उन्हें हिन्दुओं तथा मुसलमानों की भाषाएँ घोषित कर चुके थे। फलस्वरूप शासन-संचालन के लिए सिविलियन साहबों के शिक्षार्थ 'पण्डितों और मौलवियों' की आवश्यकता हुई। मुजफ्फरपुर में बाहिदअली बुकसेलर के अतिरिक्त अयोध्या बाबू की दूकान में ही दोनों प्रकार की पुस्तकें मिलती थीं। इसी सिलसिले में खत्री जी का परिचय अनेक 'विद्यार्थी' साहबों से हुआ, फलतः वे उनमें से कई के 'ट्यूटर' बन गये।

इस अध्यापन में अनेक प्रकार के अनुभव होने के कारण—सरलतापूर्वक हिन्दी पढ़ाने के लिए १८७५ में उन्होंने एक व्याकरण-पुस्तक लिखकर प्रकाशित की। फिर वे



स्वर्गीय अयोध्याप्रसाद खत्री



नवयुवक-समिति-भवन (मुजफ्फरपुर)



नवयुवक-समिति (मुजफ्फरपुर) का भवन



नवयुवक-समिति के भवन का एक अंश

कुढ़नी के माइनर स्कूल के अध्यापक हुए। दो साल के बाद यह नौकरी छोड़कर सदर-कलक्टरी में क्लर्क से हेड क्लर्क, और फिर १८ साल तक (मृत्यु-पर्यन्त) पेशकार रहे।

उनकी पदोन्नति में उनके सिविलियन शिष्यों का हाथ तो था ही, किन्तु उससे अधिक उनकी बहुमुखी योग्यताओं का प्रभाव था। अयोध्याप्रसादजी नौकरी के अतिरिक्त सारा समय हिन्दी के लिए लगाते थे। वर्त्तमान समय में हिन्दी-सम्बन्धी जैसी भावनाएँ और मान्यताएँ हैं, उस समय सर्वसाधारण में इनका परिचय तक न था। पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था, कहीं-कहीं प्रारम्भ ही हुई थी। हिन्दी बोलने का लहजा तक प्राय: लोग नहीं जानते थे—पुस्तकें नाममात्र की, पत्र-पत्रिकाएँ नहीं के बराबर। हाँ, फारसी-लिपि की पोशाक में उर्दू की अलबत्ता धूम थी। मदरसे हर ओर धड़ाधड़ खुल रहे थे। मुसलमानी बादशाहत की यह वाटिका अँगरेजी अमलदारी में और भी फूलने-फलने लगी थी। मुशायरों, गजलों, कौव्वालियों और लावनियों का जादू बेतरह फैल रहा था। संस्कृत के पण्डित और व्रजभाषा के कवि जनता से दूर होते जा रहे थे। राजा शिवप्रसादजी 'सितारे हिन्द' और खत्री अयोध्या प्रसादजी ने इस भयङ्कर खतरे से लोगों को सावधान ही नहीं किया, उपाय भी बताये-दिखाये। राजा साहब और खत्रीजी का उद्देश्य समान होने पर भी क्रिया में इतना भेद अवश्य था कि एक नागरी अक्षरों में उर्दू को ज्यों-की-त्यों ले लेना चाहते थे और दूसरे क्लिष्टता को बाद देकर। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के हिमायतियों ने दोनों का इतना विरोध किया कि राजा साहब का दिल बैठ गया और वे चुप हो गये। किन्तु खत्रीजी कुछ दिन उदासीन रहकर भी, अन्त तक अपनी धुन पर अड़े रहे। उन्होंने जोरों से आन्दोलन चलाया कि ठेठ हिन्दी—सरल खड़ी बोली के अतिरिक्त, और चार प्रकार की हिन्दी बोली जाती है। मदरसों की तहजीब और आचार-व्यवहार प्रचार के कारण गद्य-पद्य में अरबी-फारसी के शब्दों की पुटवाली जो क्लिष्ट उर्दू प्रचलित थी, उसे वे 'मौलवी स्टाइल की हिन्दी' कहते थे। उसके सरल रूप को 'मुन्शी-स्टाइल की हिन्दी' मानते थे। एंग्लो-इण्डियनों और उनके बैरे-खानसामों की बोली, जिसमें कुछ शुद्ध और कुछ अशुद्ध अँगरेजी शब्द मिले रहते थे, को वे 'यूरेशियन स्टाइल की हिन्दी' कहते थे तथा अँगरेजी-शब्दों की बहुलतावाली अँगरेज स्त्री-पुरुष-बच्चे की बोली को उन्होंने 'यूरोपियन स्टाइल की हिन्दी' यह नाम रखा था। संस्कृत-शब्दों की भरमारवाली क्लिष्ट हिन्दी को वे 'पण्डित स्टाइल की हिन्दी' घोषित करते थे। यद्यपि उस समय इन शैलियों का यह विश्लेषण अनुपयुक्त नहीं था, फिर भी विरोध तो हुआ ही। १९०२ की 'सरस्वती' में एक पँचमुहाँ व्यंग्य चित्र निकला, जिसमें श्रीमहावीर प्रसादजी द्विवेदी का यह दोहा छपा था—'दो पैरों पर एक धड़, पर सिर पाँच अनूप। मुझ पँच रंगे गद्य का देखो सुघड़ स्वरूप।'

जो हो, आज इतने दिनों बाद उन शैलियों के वे रूप प्राय: नहीं रहे, अथवा उनका संशोधन हो गया है। उनका यह कथन कि उर्दू-हिन्दी में केवल लिपि का ही भेद है, प्राय: स्वीकार कर लिया गया है। खड़ी बोली में कविता रचने के आग्रहवाला इनका प्रसिद्ध 'खड़ी बोली का आन्दोलन' भी सफल हुआ, यद्यपि आरम्भ में उसका देश-व्यापी घोर विरोध उसी प्रकार किया गया, जैसा असहयोग-आन्दोलन का, आरम्भ में प्राय: सभी प्रमुख देश-

नेताओं ने किया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, कालाकांकर-राज्य से श्री मदनमोहन मालवीय जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'हिन्दुस्थान' तथा अन्य प्रायः सभी तात्कालिक हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य-महारथियों ने सामूहिक रूप से इस आंदोलन का मुकाबला किया, किन्तु खत्रीजी ने अकेले सबका डटकर सामना किया। इस साहित्य-हठ के लिए वे किसी से भी, कहीं भी भिड़ जाने को उधार खाये रहते थे। खड़ी बोली की कविता रचनेवाले को प्रत्येक कविता के लिए वे ५) पुरस्कार अपने पास से देते थे। उन्होंने यह भी घोषणा की थी कि तुलसीदास जी की रामायण को खड़ी बोली में परिवर्त्तित करने वाले को प्रति पंक्ति पर १) देंगे। यद्यपि वास्तविकता यह है कि खड़ी बोली–कविता की आजतक की प्रगति का श्रेय उसके कृतिकारों और पत्र-सम्पादकों को है, पर आरम्भ में उनके हाथ पकड़कर उस ओर चलाया अयोध्या प्रसाद जी ने ही। वे आलोचना-कला-कुशल भी थे। खरी-खरी पर कड़ी भाषा में आलोच्य की धज्जियाँ उड़ा देते थे। वे एक आलोचना-समिति स्थापित करना और एक आलोचना-पत्रिका निकालना भी चाहते थे। पुस्तक-पुस्तिकाओं के अतिरिक्त साइनबोर्डों, यहाँ तक कि निजी चिट्ठियों की खोज-खबर लेने से भी नहीं चूकते थे। इस कारण भी इनसे अनेक व्यक्ति असन्तुष्ट रहते थे। महावीर प्रसाद जी द्विवेदी तक ने 'सरस्वती' में इन कारणों से उनकी आलोचना की थी।

कदाचित् बहुतों को यह विदित न होगा कि एक अखिल भारतीय हिन्दी-संस्था स्थापित करने की योजना उन्हीं की थी। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा बाद में बनी। उन्होंने बिहार और बंगाल में हिन्दी के प्रसार और संरक्षण के लिए गवर्नर के पास कई बार चेष्टा की। बर्दमान के महाराजा इसमें सहायक थे। सप्तम एडवर्ड के दिल्ली-दरबार (१६०२) में हिन्दी का एक शिष्ट-मण्डल ले जाने के लिए खत्री जी ने काशी-नागरी प्रचारिणी सभा को आग्रह से राजी किया। व्यय बर्दमान महाराज ने दिया। पर वहाँ बाबू श्यामसुन्दर दास ने बात ही बदल दी। हिन्दी की दुहाई पहुँचाने के स्थान पर उन्होंने दरबार-दर्शन किया और पीछे क्रमशः 'सरस्वती' के कई अङ्कों में संस्मरण लिखते रहे। खत्री जी खीझकर रह गये।

एक सराहनीय कार्य अयोध्या प्रसाद जी और किया करते थे। पुस्तक या लेख लिखनेवालों को लेखन-सहायता देते थे। मुजफ्फरपुर के दूसरे अयोध्या प्रसाद जी भंडारी ने, जो खत्री जी के स्वजातीय और मित्र तथा हिन्दी-उर्दू-साहित्य एवं कविता के जानकार थे, उनकी सहायता से गीता का सरल अनुवाद किया था। काशी के श्री जयनारायण भारद्वाज ने भी अपनी 'सती चरित्र' कविता-पुस्तक का संशोधन खत्री जी से कराया था।

अयोध्याप्रसाद जी निर्भीक, दृढ़-निश्चय, व्यावहारिक अनुभवी, और शिक्षक-स्वभाव के थे। वे साधु-सत्कारी, दानी और कट्टर शिव-भक्त थे। उनका बनवाया शिवाला पिछले भूकम्प में क्षतिग्रस्त हो गया था। नागरिकों ने उसे पहले से भी सुन्दर बना दिया है।

खत्री जी जैसे युग-सचेतक और सात्विक-कर्मठ महापुरुष की जीवनी, हिन्दी-संसार में सदा दीप-स्तम्भ बनकर रहेगी। प्रायः पचीस-तीस साल पहले तक, उनकी चर्चा हिन्दी-संसार में प्रायः होती रहती थी। साहित्य-समारोहों, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के

अधिवेशनों, पत्र-पत्रिकाओं, और निबन्ध आदि—विशेष कर खड़ी बोली की कविता—के सम्बन्ध में वे सादर स्मरण किये जाते थे। सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी और हास्यरसावतार श्रीजगन्नाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी अपनी अनुप्रासिक शैली में उन्हें 'खड़ी बोली को खड़ा करनेवाले' कहा-लिखा करते थे। केवल काशी-गुट, विशेषकर श्यामसुन्दर दास जी, जाने क्यों चिढ़े रहते थे और उन्हें उपेक्षित तथा नगण्य समझते थे। हो सकता है कि खड़ीबोली-कविता-आन्दोलन का श्रेय इसका कारण हो। श्यामसुन्दर दास जी ने अपनी 'हिन्दी कोविदरत्नमाला' में खत्रीजी को सम्मिलित नहीं किया। श्रीजगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल ने उन्हें सुझाया कि कम-से-कम उसके दूसरे भाग में तो खत्री जी का उल्लेख कीजिए, किन्तु श्यामसुन्दर दास जी ने यह भी नहीं किया। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने साहित्य के इतिहास में खत्री जी का संक्षिप्त उल्लेख ही किया।

अयोध्या प्रसाद जी की असामयिक मृत्यु पर हिन्दी-संसार रो पड़ा था। उस समय के सभी साहित्यिकों और पत्रों ने शोकोद्‌गार प्रकट किये थे। बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारतमित्र' में लिखा था—"पिछले साल होली पर अयोध्याप्रसाद जी ने लिखा था कि 'जीये से खेले फाग। नाहीं तो लेखा लाग।' और अबकी होली लगाने के पहले ही वे लेखा लग गये।" चौधरी पुरुषोत्तम शर्मा, देवीदत्त जी शुक्ल, ब्रजविहारी प्रसाद सिंह, महेशनारायण आदि ने भी शोक-लेख लिखे थे। सबसे सुन्दर संस्मरण लिखा श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने—स्व-सम्पादित 'समालोचक' में, यद्यपि काशी-गुट की भावना से वे भी अपने को मुक्त न रख पाये। महावीरप्रसाद जी ने भी १९०५ की 'सरस्वती' में टिप्पणी लिखी थी।

१८७५ से १९०४, प्राय: २९ वर्षों तक, मुजफ्फरपुर अयोध्याप्रसाद खत्री द्वारा प्रेरित हलचलों का भारतव्यापी केन्द्र रहा। अतएव उनसे सम्बद्ध और प्रभावित वहाँ की संस्थाओं तथा व्यक्तियों पर यहाँ भी कुछ लिखना आवश्यक है। खत्रीजी के जीवन-काल में वहाँ बहुविध सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक प्रगति हुई, अनेक संस्थाएँ और विद्यालय स्थापित हुए। संगीत और अभिनय-कला की जागृति हुई। हाजीपुर के सुप्रसिद्ध मुख़्तार जनाब दमड़ीलाल और मुजफ्फरपुर शहर के रईस-जमींदार बाबू बदरीनारायण सिंह ने व्यावसायिक थियेटर-कम्पनियाँ खोलीं। बदरी बाबू ने तो स्थायी रंगमंच भी बनवाया था, जिसपर स्थानीय और बाहरी मंडलियाँ अभिनय प्रदर्शित करती थीं। श्री जगन्नाथप्रसाद साहू ने 'फ्रेन्ड्स युनियन क्लब' की स्थापना की, जिसमें पारसी ढंग के नाटक शौकिया खेले जाते थे। सर्वश्री वैद्यनाथ प्रसाद सिंह, महेश्वर प्रसादजी, जगदीश नारायण भंडारी और जगदीशनारायण नन्दे आदि ने 'रिक्रिएशन क्लब' खोला, जिसमें संगीत और वाद्य के अतिरिक्त हिन्दी-नाटक भी खेले जाते थे। 'महाराणा प्रताप', 'वैधव्य कठोर दण्ड है या शान्ति,' और 'सरोजिनी' उसके प्रसिद्ध अभिनय हुए। 'चन्द्रकान्ता' के प्रख्यात लेखक श्री देवकीनन्दन खत्री और प्रसिद्ध शतावधानी एवं सुकवि श्री अम्बिकादत्त व्यास उस समय उसी नगर में निवास करते थे।

देवकी बाबू की भाषा और व्यासजी की खड़ी बोली की कविताओं पर अयोध्याप्रसादजी का प्रत्यक्ष प्रभाव है। इसी अवधि में देवकी बाबू ने 'नरेन्द्र मोहिनी', 'वीरेन्द्र वीर' और 'प्रवीण पथिक' उपन्यास वहीं के नारायण प्रेस में छपवाए थे। 'चन्द्रकान्ता' के भी प्रारम्भिक

अंश शायद यहीं प्रकाशित हुए थे। अम्बिकादत्तजी ने भी कई पुस्तकें तथा 'पीयूख-प्रवाह' मासिक पत्र का प्रकाशन इसी मुद्रणालय द्वारा कराया था। सुप्रसिद्ध अँगरेज़ी साप्ताहिक 'तिरहुत केरियर' इसी में छपता था। अँगरेजों का पत्र होने पर भी वह भारतीय राजनीतिक आकांक्षाओं से सहानुभूति रखता था। इसमें कुछ अंश कैथी-हिन्दी में भी रहता था। इसके सम्पादक थे प्रसिद्ध बैरिस्टर पी० कैनेडी, जिनकी स्त्री और दो कन्याएँ 'खुदीराम बम-कांड' में अकारण मारी गई थीं। ज्योतिषाचार्य श्रीरामरूप ओझा-कृत 'चन्द्रमुखी' उपन्यास, ठाकुर भगवान सिंह का 'सूर्य्यसिद्धान्त', बाबू कीर्त्तिनारायण सिंह की 'कीर्त्तिरागमञ्जरी' और रुद्र कवि की एक-दो रचनाएँ भी इसी प्रेस में छपी थीं। 'भूमिहार ब्राह्मण कालेजियट' के 'बाल-समाज' का मुख-पत्र 'बालहितैषी' श्री योगेश्वरप्रसाद सिंह (बाद के वकील) के सम्पादकत्व में यहीं छपता था।

पहले-पहल जब खत्रीजी के बारे में सुना, उस समय मैं ८-९ साल का बालक था, किन्तु अगियाबैताल नगर के सबसे बड़े मुहल्ले की एकमात्र बड़ी पाठशाला—अपर प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था। हमजोली-सहपाठियों और मुहल्ले के अन्य लड़कों का नेता बन चुका था। जिस नवयुवक-समिति की श्रद्धा-प्रेरणा से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, उसकी नींव मैंने इसी पाठशाला में डाली थी। समझ-बूझकर नहीं, एक अनजानी-अल्हड़ अनुप्रेरणा से। स्कूल के मकान-मालिक बाबू गोविन्दलाल साह भारी सूदखोर महाजन, बीसों मकानों के मालिक और छोटे-मोटे जमींदार थे। इनके सुपुत्र का नाम बाबू झगड़ूलाल साह था। श्री अयोध्याप्रसादजी खत्री और श्री भुवनेश्वर मिश्र ने 'झगड़ूलाल साह' को साधु-हिन्दी में 'युद्धविक्रम राय' बना दिया था। उनके जीवन-वैचित्र्य पर 'घराऊ घटना' नामक लघु उपन्यास भी श्री मिश्र जी ने प्रकाशित कराया था। 'राय' को स्वत: 'मारुक' बनाकर बाबू युद्धविक्रम मारुक प्रसिद्ध हुए। 'खड़ीबोली-आन्दोलन' में इनका आरम्भ से ही सहयोग-साहाय्य था। उनके नाम से विज्ञप्तियाँ भी प्रकाशित होती थीं। हिन्दी और उसके साहित्यप्रेमी और रसिक थे ही, दीवाने और दानी भी थे। पिता की मृत्यु के बाद दाता कर्ण ही बन बैठे। घर-परिवार की चिन्ता से मुक्त, पर साहित्य-सम्मेलन, हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा, नवयुवक-समिति के अतिरिक्त अन्य समारोहों में उनकी इस उदारता का योग अवश्य ही रहा करता था। व्यक्तिगत सहायता भी करते रहते थे। कई वर्षों तक उन्होंने एक 'मॉडेल हाई स्कूल' भी चलाया। अयोध्याप्रसादजी की मृत्यु के अनन्तर उनके परिवार की देखभाल भी उन्होंने की। अन्त में उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ चली। ऋण लेकर काम चलाया जाने लगा। घर में दो-दो पत्नियाँ। एक से लड़का मुकुल, दूसरी से लड़की सुकेशी, जिसका ब्याह हो चुका था। अनेक नजदीकी और दूर के सगे-सम्बन्धियों से भरा परिवार। एक दिन ऐसा भी आया कि एक महाजन द्वारा एक भारी मुकद्दमे में बुरी तरह हारने के बाद उन्हें अज्ञातवास करना पड़ा। दस साल बाद लौटे, तो औपन्यासिक ढंग से सब कुछ उलट-पलट गया था। मुकुल, उसकी माँ और सुकेशी की मृत्यु हो चुकी थी। दूसरी स्त्री लोक-लाज लुटाकर दामाद के घर जा बसी थी। मकानों और जमीन पर महाजनों का अधिकार हो चुका था। कुछ रिश्तेदार ही हड़प बैठे थे। नगर की एक प्रसिद्ध धनी गायिका से उनका पुराना सम्बन्ध था, जिसके साथ

अपने संबंध-विषय में वे सफाई दिया करते थे कि 'मैं शरीर का नहीं, दिल का विलासी हूँ'। अन्तिम लाचारी ने उन्हें उसीके घर में बसेरा लेने को बाध्य किया। पर कुछ दिनों बाद वहाँ से भी अन्तर्धान हो गये। फिर एक बार पटना और एक बार कलकत्ता में, साधु-वेश में देखे गये।

उन्हीं अज्ञात-अमर सामाजिक शहीद श्री युद्धविक्रम मारूक की बैठक में, जो हमारे स्कूल की बगल में ही थी, मैंने पहले-पहल खत्रीजी का नाम सुना। कविवर श्री रुद्र प्रसाद 'रुद्र' से प्रायः वाद-विवाद किया करते थे, और उनका नाम इस विषय में सार्थक था, अर्थात् किसी-न-किसी के साथ उनका तर्क-युद्ध छिड़ता ही रहता था। 'रुद्र' जी खड़ी बोली में कविता करने के विरोधी और प्राचीन ढंग के कवि थे। पहले मेरे घर के पास रहते थे। पीछे मारूकजी के मकान में किरायेदार हो गये थे। उन्हीं के बुजुर्ग सम्बन्धी 'धानाजी'-'कान्हाजी' भातृ-द्वय थे। मुजफ्फरपुर की जजी में एक भाई पेशकार और दूसरे सदर-आला थे। बाबू कुँवरसिंहजी के निधन के बाद जब आरा में दमन का चक्र चला तब उनके साथी पकड़े गये या छिप गये। मेरे दादा बाबू रामफलसिंहजी ने भी अपने छोटे पुत्र (मेरे पिता) के साथ 'रुद्रजी' के उन्हीं दोनों सम्बन्धियों के यहाँ गुप्त आश्रय पाया था। फिर बाद में वहीं बस भी गये थे। तभी से 'रुद्रजी' के परिवार से हमारा 'घर-घरौआ' था। वे ब्रजभाषा के रस-सिद्ध कवि तो थे ही, खड़ी बोली, उर्दू, फारसी, बँगला, पंजाबी, भोजपुरी, मैथिली और अँगरेजी में भी कविताएँ करते थे। उनके रचित ग्रन्थों में 'आनन्दशाला', 'विनोदशाला', 'प्रमोदमाला' और 'रुद्र कौतुक विचित्र' (चित्रांकित कविता-संग्रह) प्रसिद्ध हैं। अपने यहाँ नर्तक रखकर अपनी रचनाओं के संगीत-नृत्य रूप का आनन्द लिया करते थे। आशु-रचना भी करते थे। वृद्धावस्था में उनकी आँखों की ज्योति नष्ट हो गई थी, पर काव्य-रचना का व्यसन कभी न छूटा। बोलकर दूसरों से लिखवाते थे। बचपन में कई बार यह सुयोग मुझे भी प्राप्त हुआ था।

मारूकजी के घर से भी हमारा 'घर-घरौआ' था। अतः दोनों के घर हमारा आना-जाना था, और दोनों मुझे मानते थे। फलस्वरूप मेरे प्रारम्भिक जीवन पर दोनों का प्रभाव पड़ा। जब दोनों के वाद-विवादों में 'अयोध्या प्रसादजी', 'खत्रीजी,' 'पेशकार साहब' की सुनता तो जिज्ञासा जगती। पर अन्य बातें उस समय समझ में नहीं आती थीं। बाद को मालूम हुआ कि इसके पहले मारूकजी की बैठक एक प्रकार से 'खड़ी बोली-आन्दोलन' का कार्यालय ही थी। युद्धविक्रमजी के जीवन-काल तक उनका बैठकखाना विद्वानों, साहित्यिकों और कार्यकर्ताओं का विवाद-गृह और अड्डा बना रहा। नगरपालिका ने जब अपर-प्राइमरी स्कूल का भवन बना दिया तो मारूकजी का वह स्कूल का रिक्त कमरा और दालान कुछ दिनों तक अतिथिशाला का काम देते रहे। बाद में दस साल तक नवयुवक-समिति का कार्यालय बिना किराया उसी में रहा। मारूकजी वाचनालय के लिए पत्र-पत्रिकाएँ भी अपने खर्च से मँगा देते थे।

खत्रीजी की मृत्यु के बाद उनके अप्रकाशित साहित्य निबन्ध आदि के प्रकाशन की उत्तराधिकारिणी एकमात्र 'हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा' ही थी। पर खत्री जी के जीवन-काल

में ही वह टूट-सी गई थी, उसकी कहानी भी, खत्रीजी की प्रभाव-व्यापकता और मुजफ्फरपुर के सांस्कृतिक, साहित्यिक, और राष्ट्रीय जागरण का महत्वपूर्ण इतिहास है। खत्रीजी की केन्द्रीय हिन्दी-संस्था की योजना के प्रकाशन के बाद काशीवालों ने १८९३ में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना कर दी। सन् १८९६ ई० में, इसी के सम्बन्ध में जब बाबू श्यामसुन्दर दासजी मुजफ्फरपुर आये तो उनके द्वारा उपेक्षित रहने पर भी अयोध्याप्रसादजी ने उनका यथोचित सत्कार ही नहीं किया, श्रीपरमेश्वर नारायण महथा और श्री विश्वनाथप्रसाद महथा द्वारा सवा-सवा सौ रुपये नागरी-प्रचार, तथा पचास-पचास रुपये रोमन-लिपि-विरोध के लिए दिलवाये थे। सन् १८९८ ई० में इन्हीं महथा-द्वय के सहयोग, और कुछ विद्या-व्यसनी-विद्यार्थियों के उद्योग से, 'धर्म-समाज संस्कृत विद्यालय' (बादको कॉलेज) के एक कक्ष में एक पुस्तकालय स्थापित किया गया, जिसका नाम पहले 'नोवेल रीडिंग क्लब', और बाद में अयोध्याप्रसाद जी और श्री यमुना प्रसाद ओझा के सुझाव पर, 'हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा' रखा गया। कार्य-विस्तार हो जाने के कारण कार्यालय बाबू बदरी नारायणसिंह के मन्दिर के ऊपरवाले दालान-सहित कमरे में ले आया गया। हिन्दी-प्रचार के लिए पुस्तिकाएँ, पर्चे प्रकाशित किये जाने लगे। सरकार और कई देशी रजवाड़ों में 'मेमोरैण्डम', अभिनन्दन-पत्र और 'डेपूटेशन' भेजे गये। पुस्तकालय-वाचनालय के सम्बन्ध में सदस्यों के अतिरिक्त सर्वसाधारण में भी रुचि जगने लगी। 'रिक्रिएशन क्लब' की स्थापना के अनन्तर संगीत-वाद्य-अभिनय कलाएँ मुखरित हुईं। आरा की नागरी प्रचारिणी सभा और यह हिन्दी-प्रचारिणी सभा ही उस समय प्रान्त में श्रेष्ठ हिन्दी-संस्थाएँ थीं। सन् १९०२ ई० में सप्तम एडवर्ड का जब राज्य-सिंहासन-समारोह मुजफ्फरपुर में भी मनाया गया तब उसके बचे हुए कोष से, संस्कृत-हिन्दी की पुस्तकों से भरी तीन आलमारियाँ 'सभा' को प्रदान की गईं। इसमें भी खत्रीजी का प्रमुख हाथ था।

सभा के प्रधान मंत्री थे श्रीनारायण पाण्डेय, वकील खत्रीजी के पड़ोसी और काशी सभा-गुट के स्थानीय 'प्रतिनिधि'। दोनों में पटती न थी। इसका प्रधान कारण था यश-प्रतिद्वन्द्विता और और भाषा एवं सुकविता-संबंधी विचारों के संबंध में मत-भिन्नता। पाण्डेयजी की दो पुस्तकें—'कर्त्तव्याकर्त्तव्यशास्त्र' और 'काल-निर्णय'—काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुईं। अयोध्या बाबू ने काल-निर्णय की कड़ी आलोचना प्रकाशित की। बस, पारस्परिक विरोध उग्रतर हो चला। परिणाम यह हुआ कि सन् १९०३ ई० में सभा एक प्रकार टूट गई और उसका तथा 'रिक्रिएशन क्लब' का सारा सामान बाबू वैद्यनाथ प्रसाद सिंह के यहाँ रख दिया गया। उसी समय आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा भी आर्थिक दुरवस्था के कारण टूटने लगी तो खत्रीजी ने अविलम्ब ५०) भेजकर स्थिति सँभाली।

इसके दो साल बाद क्रूर काल ने खत्री जी को असमय ही उठा लिया। ८ साल बाद, हिन्दी-भाषा-प्रचारणी सभा को नवजीवन प्राप्त हुआ। सन् १९१३ ई० में वैष्णव पुरुषोत्तमदासजी ने सत्यनारायण तपसी प्रसाद चौधरी के मन्दिरवाले दालान में पुस्तकालय-वाचनालय स्थापित किया। इसमें युद्धविक्रम जी और बबुआ बैजनाथ का आर्थिक सहयोग था। पत्र-पत्रिकाओं द्वारा समाचार, लेख और कविता पढ़ने का चाव लोगों में होने लगा। टूटी हुई हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा के प्रमुख सदस्यों के परामर्श और सहयोग से, वैष्णव जी ने अपनी नवजात

संस्था का नाम पुरानी हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा रखना स्वीकार कर लिया। फिर तो नये-पुराने के सहयोग से उत्साहपूर्वक कार्य आरम्भ हुआ। साप्ताहिक व्याख्यान, भजन होते। नगर के और बाहर से आये विद्वान् या साहित्यिक प्राय: आने लगे। मैं अपनी तुकबन्दियाँ पढ़ता। सभा-समारोहों में हमारी बाल-मंडली सेवा-कार्य करती। इसी साल उसने 'ब्वायज एलेबुन फुटबॉल क्लब' के बदले 'सरैयागंज-नाटक समिति' का नाम ग्रहण किया। सन् १९१४ ई० के आरम्भ में सुप्रसिद्ध परिव्राजक स्वामी सत्यदेवजी के सभापतित्व में सभा का वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर स्वामीजी-रचित 'मेजिनी' नाटक का अभिनय टिकट लगाकर किया गया। स्वामीजी ने स्वयं 'मेजिनी' का पार्ट किया था। आय सभा को दे दी गई। अब अखाड़ाघाटवाले सुरम्य रास्ते पर एक छोटा सुन्दर बँगला किराये पर सभा-भवन के लिए ले लिया गया। प्रबन्ध और पुस्तकालय-व्यवस्था के लिए गुरुजनों ने मुझे आदेश दिया। नाममात्र का वेतन भी स्वीकार करना पड़ा। भिन्न-भिन्न किशोर-कौतुकों के नायकत्व की व्यस्तता, तुकबन्दी और अभिनय की धुन के साथ-साथ यह भार स्वीकार करते हुए मुझे आत्मोल्लास का अनुभव हुआ।

मैंने मन-प्राण से कार्य आरम्भ कर दिया। वैद्यनाथ बाबू के यहाँ से सारा सामान—पुरानी हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा और 'रिक्रिएशन क्लब' का—उठा लाया। नाटक के पर्दे हमारी समिति को मुफ्त प्राप्त हो गये। सभा-भवन का एक खाली कमरा भी कार्यालय के लिए उसे मिल गया। इस प्रकार इन दोनों संस्थाओं द्वारा मेरे जीवन का शुभारम्भ हुआ। एक में सीखता, दूसरी में प्रयोग करता। सभा में नई-नई पुस्तकें और प्राय: सभी हिन्दी-पत्र-पत्रिकाएँ आने लगीं। ४ से ८ बजे रात तक पाठकों का जमघट रहता। स्वर्गीय सर्वश्री महेश्वर प्रसादजी, श्यामनन्दन सहाय (बाद में एम्० पी०), श्रीनारायण महथा (बाद में एम्० पी०), रामदयालु सिंह (बाद में स्पीकर), अध्यापक लक्ष्मीनारायण सिंह, दर्शन-केसरी पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद वकील, लक्ष्मीनारायण गुप्त, वकील, रमाचरण (बाद में ग्रामोद्योग और प्राकृतिक चिकित्सा-अधिकारी) तथा रामधारी प्रसाद सप्ताह में दो-तीन बार अवश्य आते थे। सर्वश्री दीपनारायण सिंह (अब मंत्री), जगन्नाथप्रसाद मिश्र (अब एम्० एल्० सी), साँवलिया विहारीलाल वर्मा (अब एम्०, एल्०, सी), प्रिंसिपल मनोरञ्जन, कुमार रत्नेश्वरीनन्दन सिंह (बाद में चेयरमैन-डिस्ट्रिक्ट बोर्ड), शिवप्रसाद खन्ना, सरयू प्रसाद (काँगरेसकर्मी), हरिनन्दन सिंह (अब वकील), कमलदेव नारायण (अब औपन्यासिक और वकील) और बेनीपुरी आदि विद्यार्थी प्राय: दैनिक पाठकों में थे। भिन्न-भिन्न तात्कालिक विषयों पर चर्चा तथा राष्ट्रीय और सामाजिक चिन्तन-वार्त्तालाप में इन सभी का भविष्य उसी समय उज्ज्वल मालूम होता था। कभी-कभी दादा कृपलानीजी भी पधारते थे। 'कुछ' ऐसे किशोर भी आते थे, जिनपर सरकारी गुप्तचर लगे रहते। उन किशोरों में मेरे दो-एक घनिष्ठ साथी भी थे। गुप्तचरों पर गुप्तचरी करके मैं उन्हें सावधान कर दिया करता था।

मार्च १९१४ से फरवरी, १९१९ ई० तक हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा, नगर की सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक और क्रान्तिकारी भावनाओं के जागरण का मन्दिर रही। सन् १९१६-१७ में, अपनी नाट्य-समिति को हमने 'भारतीय नवयुवक-समिति' के नाम से सेवा-

प्रधान-संस्था बना दिया था और यह प्रान्त की प्रथम सेवा-समिति के नाम से विख्यात हो चली थी। सन् १९१९ ई० के मार्च में सभा के मंत्री श्रीलक्ष्मी नारायण गुप्त से मतभेद के कारण मैंने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। फलस्वरूप, दो-तीन मास के अन्दर ही वह समाप्त हो गई। प्रमुख सदस्यों ने उसका समस्त सामान नव-संस्थापित 'हिन्दू-भवन' में उठवा लिया।

इसी साल हमलोगों ने स्व० श्री पीर मुहम्मद 'मुनीस' के सुझाव और श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित के उद्योग से 'बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' की स्थापना की। कुछ दिनों तक उसका कार्यालय नवयुवक-समिति में ही रहा, फिर किराये का कमरा ले लिया गया। ६-७ मास में ही 'हिन्दू-भवन' बन्द हो गया। हमने अपनी हिन्दी-प्रचारिणी सभा का सारा सामान 'सम्मेलन' के पुस्तकालय-वाचनालय में सम्मिलित कर लिया। सम्मेलन का प्रान्तव्यापी इतिहास प्रकट है। सन् १९२८ ई० में जब हमने अपनी नवयुवक-समिति के द्वारा अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन निमंत्रित किया, तब प्रादेशिक सम्मेलन के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं से मेरा मतभेद हो गया। बीज तो ५-६ वर्ष पूर्व ही पड़ चुका था, जब मैं नवयुवक-समिति के सदस्यों को लेकर प्रमुख रूप से काँगरेस के कार्य में लग पड़ा था। सम्मेलन के अधिवेशन तो कहीं-न-कहीं हो ही जाते थे, पर कार्यालय की स्थिति बिगड़ने लगी। कई बार मकान-मालिक ने किराये के लिए दफ्तर में ताला लगा दिया। मतभेद के बावजूद नवयुवक-समिति ने अभिनय-प्राय से स्थिति सँभालने की चेष्टा की, पर स्थिति बिगड़ती ही गई। इसका एक मुख्य कारण सम्मेलन के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्रीरामधारी प्रसाद का राजनीति, विशेषकर डिष्ट्रिक्ट बोर्ड में, व्यस्त रहना था। सन् १९३३-३४ ई० में सम्मेलन-कार्यालय प्राय: बन्द ही हो गया। इसके बाद ही सत्यानाशी भूकम्प का प्रकोप हुआ। पीड़ितों के आश्रय के लिए जब प्रयाग की 'सर्वेण्ट ऑफ् इण्डिया सोसाइटी' ने 'गोखलेपुरी' का निर्माण किया तो उसके पुस्तकालय-वाचनालय के लिए सम्मेलन का सारा सामान ले आया गया। श्रीकमलदेव नारायण वकील उसके 'इन-चार्ज' थे। कुछ दिनों बाद जब यह भी शिथिल हो गया, तब इसका सब कुछ नवोदित संस्था 'सुहृद्-संघ' को कमलदेव बाबू ने दे दिया। इस प्रकार सन् १८९८ ई० का अंकुर पौधे से विशाल वृक्ष बनकर अनेक झोंके-थपेड़े खाता हुआ मानों उत्तराधिकार के रूप में इस 'संघ' को प्राप्त हुआ था। 'कोरेनेशन गिफ्ट' अंकित तीन अलमारियाँ अनेक वर्षों तक संघ-सदन की शोभा रहीं। अयोध्या प्रसादजी आदि द्वारा संचित अमूल्य निधि-स्वरूप इन तीन अलमारियों ने जाने कितनों का ज्ञान-कोष भरा होगा। मेरे लिए तो वे कुबेर की सम्पत्ति ही सिद्ध हुईं। संघ का शकुन भी इससे इतना शुभ हुआ कि आज उसमें अनेक पुस्तक-भरी अलमारियाँ हैं। अपना सुन्दर भवन है, बाल-उद्यान है, रंगमंच है, और प्रान्त ही नहीं, हिन्दी-संसार की श्रेष्ठ संस्थाओं में उसका स्थान है।

जब खड़ीबोली में कविता करने का प्रस्ताव काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने स्वीकार कर लिया और आचार्य महावीरप्रसादजी ने अपनी 'सरस्वती' के द्वारा इसका श्रेय अयोध्या प्रसादजी को ही देकर इसे क्रियात्मक रूप (खड़ी बोली में कविता-प्रकाशन) देना आरम्भ किया, तो खत्रीजी को जैसे जीवन में ही सिद्धि प्राप्त हो गई। उन्होंने अपनी कृतियों (प्रकाशित साहित्य, विज्ञप्ति, पर्चे, निबन्ध आदि) की एक-एक प्रति के ४ बण्डल बनाये और

कपड़े में लपेटकर पन्द्रह-पन्द्रह सेर की गठरियाँ बनाईं। एक अपने पास रख, तीन श्रीजैन वैद्य, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा और हिन्दी-भाषा-प्रचारिणी सभा को दे दीं। जब वैद्यनाथ बाबू के यहाँ से मैं उन तीन अलमारियों को ले आया था, तब उन्हीं में वह 'गठरी' जीर्ण दशा में प्राप्त हुई थी और उसी में वह रत्न-राशि मिली थी, जो आज का मुख्य विषय है।

खत्रीजी के भाषा और छन्द-सम्बन्धी विचारों का मुझपर गहरा प्रभाव पड़ा; क्योंकि उपेन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, मत्तगयन्द आदि संस्कृत छन्द मेरे पल्ले नहीं पड़ रहे थे। 'हिन्दी-कविता और उसकी भाषा' के रूप में मैंने एक लेख प्रस्तुत किया, जो सन् १९२० वाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पटना-अधिवेशन की लेखमाला में प्रकाशित हुआ। सन् १९२२ ई० में कुछ संशोधित रूप में जबलपुर की 'श्री श्रीशारदा' में उसे पुन: प्रकाशित कराया। अनेक वर्षों बाद सन् १९३७ ई० में नवयुवक-समिति के रजत-जयन्ती-समारोह के समय फिर खत्रीजी की स्मृति न केवल ताजी हुई, बल्कि यह प्रेरणा भी हुई कि उसे प्रकाशित रूप में सुरक्षित रखा जाय। खत्रीजी-सम्बन्धी प्रकाशन और बृहत् समारोह की योजना सूझी। अत:, अवसर की ताक में रहने लगा।

इसके बाद ही समिति का कार्यालय ऐसे स्थान पर चला आया, जहाँ कार्यकर्त्ताओं को अनेक असुविधाएँ होने लगीं और मेरा कार्यक्षेत्र भी कलकत्ता हो गया। कई वर्षों के अनन्तर जब समिति का अपना भवन बन गया और कार्य सुचारु रूप से चालू हो गया, तब सन् १९५४ ई०के नवम्बर में प्रथम 'अयोध्याप्रसाद खत्री-दिवस' मनाया गया और यह प्रस्ताव पारित हुआ कि 'अयोध्या प्रसादजी खत्री का स्मारक-ग्रन्थ आचार्य श्रीशिवपूजन सहाय के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो। उपयुक्त अवसर पर समारोहपूर्वक खत्री-दिवस मनाने के निमित्त स्वागत-समिति-निर्माण के लिए एक उपसमिति भी बनाई गई। इस प्रेरणा-प्रकाश में नगर और अन्य कई स्थानों पर अयोध्याप्रसाद खत्री-समारोह मनाया गया तथा कुछ पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित हुईं। 'खड़ी बोली का आन्दोलन' और 'ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली' नामक ग्रन्थ इसी अवधि में प्रकाशित हुए।

मैं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का आभारी हूँ कि नवयुवक-समिति की प्रार्थना स्वीकार कर उसने 'खत्री-स्मारक-ग्रन्थ' प्रकाशित किया। सामग्री-संकलन में विलम्ब और त्रुटि के लिए एकमात्र मैं ही दोषी हूँ। कई उपयोगी वस्तुएँ छूट गई हैं। सामग्री के रूप में सहायता के लिए नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी); बड़ाबाजार लाइब्रेरी (कलकत्ता); रामदेव चोखानी पुस्तकालय (कलकत्ता); कुमार सभा पुस्तकालय (कलकत्ता) के अतिरिक्त सर्वश्री झाबरमल्लजी शर्मा, बनारसीदासजी चतुर्वेदी (एम्० पी०), धन्नूलालजी खत्री (काशी), शारदाप्रसादजी भंडारी (मुजफ्फरपुर) और हरिहरनाथजी खत्री (सिकन्दरपुर, बलिया) के प्रति सधन्यवाद कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ।

—ललितकुमारसिंह 'नटवर'

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री : एक चर्चा

स्व० अयोध्याप्रसाद खत्री की मृत्यु जनवरी, सन् १९०४ ई० में हुई; मुजफ्फरपुर-बमकांड अप्रैल, सन् १९०८ ई० में हुआ तथा स्व० खुदीराम बोस को फाँसी उसी साल के अगस्त महीने में हुई।

मैं सन् १९०९ के मार्च में मुजफ्फरपुर पहुँचा। उस समय मुजफ्फरपुर का वातावरण शान्त था। वहाँ उसी प्रकार की शान्ति थी, जिस प्रकार प्रबल आँधी या तूफान के पूर्व प्राकृतिक वातावरण में छा जाती है।

प्रत्यक्ष रूप से अथवा सार्वजनिक क्षेत्रों में राजनीतिक चर्चा का बिलकुल अभाव था। फुटबॉल के खेल का प्रचुर प्रचार था। करीम, अनीस, कल्लू, वैद्यनाथ आदि वहाँ के परम प्रसिद्ध खिलाड़ी थे। कलकत्ता, ढाका आदि बड़े-बड़े शहरों में वे मैच खेलने के लिए जाया करते थे। स्व० महेश्वर बाबू (श्रीउमाशंकरप्रसाद के पिता) के अनुज स्व० राधाकृष्णजी भी उन दिनों के अच्छे खिलाड़ियों में थे।

मुजफ्फरपुर में उन दिनों कुछ रईसों को भी टेनिस का अच्छा अभ्यास था; कमरे का नवाब-खानदान, महथा-परिवार के कृष्णदेव बाबू तथा अन्यान्य नागरिक टाउन क्लब के मैदान में टेनिस खेला करते थे। बंगालियों के ओरियेण्ट क्लब तथा जी० बी० बी० कॉलेज (वर्त्तमान ल० सिं० कॉलेज) में भी खेल-कूद की अच्छी व्यवस्था थी।

जैसा कि ऊपर मैंने कहा है, उन दिनों के मुजफ्फरपुर में राजनीतिक चर्चा का अभाव तो था ही, सामाजिक विषयों की चर्चा भी बहुत कम सुनने में आती थी। साहित्यिक चर्चा की भी यही हालत थी। इसका यह अर्थ नहीं कि वहाँ पढ़े-लिखे व्यक्ति न थे अथवा हिन्दी के विद्वानों का अभाव था। स्व० योगानन्द कुमर (स्व० गोपीनाथ कुमर के सुपुत्र), स्व० सिद्धेश्वर प्रसाद शर्मा (तिरहुत-समाचार के सम्पादक), स्व० लक्ष्मी सिंह (जिला-स्कूल के हिन्दी-शिक्षक), स्व० लक्ष्मीनारायण गुप्त (मुजफ्फरपुर के कर्मठ काँगरेसी कार्यकर्त्ता श्रीमोहनलाल गुप्त के पिता) तथा स्व० पं० रामदास राय शर्मा (प्राध्यापक, जी० बी० बी० कॉलेज) आदि हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे, पर संगठन के अभाव में उनकी समवेत सेवा का सदुपयोग प्राय: नहीं के बराबर था।

बम-कांड के बाद मुजफ्फरपुर तत्कालीन सरकार के गुप्तचर-विभाग का प्रधान केन्द्र बन गया था। गुप्तचर-विभाग का डी० आई० जी० महीने में एक-दो बार वहाँ अवश्य जाया करता था। विभागीय अधिकारियों और कर्मचारियों की संख्या तो अत्यधिक थी। चौराहे पर, गलियों में, स्टेशन के प्लैटफार्म पर सदा-सर्वदा गुप्तचरगण दृष्टिगोचर होते थे। मि० स्मिथ नामक एक अँगरेज प्राध्यापक को ओरियेण्ट क्लब में एक बंगाली विद्यार्थी से यह पूछते मैंने अपने कानों सुना था—"तोमार बाबा कि बई पढ़ेन ? तोमार बाड़ी ते 'देशेर कथा' आछे ?"

सरकार की इतनी जागरूकता के बावजूद मुजफ्फरपुर में क्रान्तिकारियों का एक दल था, जो गुप्त रूप से काम करता था। बंगालियों के दल का नेता कौन था, यह तो मैं नहीं

जानता, पर हमारे दल के संगठनकर्त्ता शुकदेव सिंह (श्री रामविनोद सिंह, एम्० एल्० ए० के छोटे भाई) थे। वे बहुत ईमानदार, साहसी और चतुर व्यक्ति थे। श्री योगेन्द्र शुक्ल को क्रान्तिकारी दल में लाने का श्रेय इसी दल को प्राप्त है।

मुजफ्फरपुर के राजनीतिक जागरण को लाने का बहुत अधिक श्रेय स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को प्राप्त है। उन्होंने मुजफ्फरपुर जिला में, अपने भ्रमणों और भाषणों के द्वारा, राजनीतिक चेतना जाग्रत कर दी। यत्र-तत्र राजनीतिक सङ्गठन होने लगे। कोई बेसेण्ट की होमरूल लीग में शामिल होता, तो कोई लोकमान्य की होमरूल लीग में।

इसी समय महात्मा गांधी का चम्पारन-आगमन हुआ। प्राय: समस्त बिहार का ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया। आगे चलकर, असहयोग-आन्दोलन ने अपने समय के सभी आन्दोलनों को पीछे छोड़ दिया। प्राय: सभी उत्साही समाज-सेवक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता तथा राष्ट्रभक्तों ने गांधीजी का साथ दिया। सभी का ध्यान विदेशी सत्ता से मुक्त होने तथा भारत को स्वतन्त्र करने की ओर चला गया। स्वभावत: इतर समस्याएँ सामाजिक अथवा साहित्यिक, गौण हो गईं।

सन् १९४७ ई० में जब भारत स्वतन्त्र हो गया, तभी अन्य समस्याएँ सामने आने लगीं।

उपर्युक्त बातों से मेरा यह अभिप्राय नहीं कि मुजफ्फरपुर के साहित्यिक अथवा हिन्दी-प्रेमी—स्व० खत्रीजी को बिलकुल भूल गये थे। मुजफ्फरपुर में बाबू झगड़ूलाल, उर्फ युद्धमारूक, नाम के एक रईस थे। ये एक धन-सम्पन्न व्यक्ति थे। इनका व्यक्तित्व भी विशाल और आकर्षक था। लौंग कोट, फुल पैण्ट, लामा कैप, मोजे और फुल शू यही आपकी पोशाक थी। दायें हाथ में बेंत की एक मोटी छड़ी, जिसकी मूँठ मुड़ी हुई रहती थी, लेकर आप चलते थे। बायें हाथ में कुछ किताबें तथा कुछ अखबार रहते थे। इनकी बातों में काफी बुलन्दी थी। ये स्व० खत्रीजी के परम भक्त और प्रशंसक थे। समय-समय पर उनकी भरपूर सहायता किया करते थे, मात्र बातों से नहीं, वरन् कार्यों से भी।

बाबू झगड़ूलाल की मृत्यु हो जाने के बाद भी स्व० खत्रीजी की चर्चा, मुजफ्फरपुर में चला करती थी। मुजफ्फरपुर की नवयुवक-समिति के प्राण श्रीललितकुमारसिंह 'नटवर' का ध्यान स्व० खत्रीजी की स्मृति की रक्षा की ओर सदा लगा रहता था। 'नटवर' एक परम कार्यशील व्यक्ति हैं। देश, समाज तथा साहित्य की सेवा में, इन्होंने अपने पिता की सारी कमाई मिट्टी के मोल बेच दी। आज मुझे यह लिखते हर्ष और गौरव का अनुभव हो रहा है कि जिस नवयुवक-समिति ने बिहार प्रान्तीय किसान-सभा को जन्म दिया, जिस समिति ने बिहार प्रान्तीय सेवा-समिति की स्थापना में प्रमुख भाग लिया, जिस समिति के सत्प्रयत्न से बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की संस्थापना हो सकी, उसी नवयुवक-समिति की प्रेरणा से आज, खड़ीबोली हिन्दी को कविता के क्षेत्र में सर्वप्रथम खड़ा करनेवाले स्व० अयोध्याप्रसाद खत्री की रचनावली प्रकाशित हो रही है। यह कम गौरव की बात नहीं है। इस सफल और स्तुत्य आयोजन के लिए मैं 'नटवरजी' को बधाई देता हूँ।

—मथुराप्रसाद दीक्षित

सम्मेलन-भवन
पटना—३

हिन्दी-कविता-क्षेत्र के भगीरथ

लोकमान्य तिलक के संबंध में यह कहा जाता है कि उन्होंने स्वराज्य की गंगा को कुछ पढ़े-लिखे वाक्पटु लोगों के स्वर्ग से सर्वसाधारण के भूतल पर ला दिया। इसीलिए उनको स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील भगीरथ कहा जाता है। खड़ीबोली की कविता की दृष्टि से स्वर्गीय श्रीअयोध्याप्रसादजी खत्री को भी हिन्दी-साहित्य का भगीरथ ही कहना चाहिए। ब्रज और उर्दू के पंडितों तक सीमित कविता को खड़ी बोली हिन्दी के माध्यम से सर्वसाधारण तक पहुँचाना मामूली काम न था। आज हम हिन्दी के राष्ट्रभाषा और राजभाषा होने का गौरव बड़े गर्व के साथ अनुभव करते हैं। यदि कहीं खड़ीबोली के रूप में हिन्दी केवल एक बोली बनी रहती और साहित्यिक दृष्टि से उसको 'भाषा' का गौरवपूर्ण रूप न मिला होता, तो आज अन्य अनेक बोलियों की तरह वह भी उपेक्षित रह जाती और उसको समस्त देश की—चालीस करोड़ जनता की—राष्ट्रभाषा और उसके शासन की राजभाषा बनने का सौभाग्यशाली सुअवसर कदाचित् ही प्राप्त हुआ होता। यदि स्वर्गीय खत्रीजी के प्रयत्न के फलस्वरूप हिन्दी ने कविता-क्षेत्र में प्रवेश न किया होता, तो यह अनुमान लगा सकना कठिन नहीं होना चाहिए कि उसको किस हीन दृष्टि से देखा गया होता। वीर युवक खुदीराम बोस की साहसपूर्ण कृति के कारण मुजफ्फरपुर को देश की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों को जाग्रत करने का सौभाग्य प्राप्त है। इसी प्रकार स्वर्गीय खत्रीजी के साहसपूर्ण कदम से मुजफ्फरपुर को हिन्दी को गौरवान्वित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। देश में जिस समय राष्ट्रीय महासभा कांगरेस की स्थापना हुई थी, लगभग उसी समय, सम्भवत: उससे भी ४-५ वर्ष पहले, खत्रीजी ने हिन्दी को कविता-साहित्य की दृष्टि से सम्पन्न एवं समृद्ध बनाने की आवाज उठाई थी।

हिन्दी हमारी राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है। राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा का जो महत्त्व है, वह इतना अधिक स्पष्ट है कि उसके बारे में कोई तर्क अथवा प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। जर्मन-भाषा के आधार पर हिटलर ने जर्मन राष्ट्र को कैसा शक्ति-संपन्न बना दिया था। उसके उत्तर में महान् कूटनीतिज्ञ चर्चिल ने अँगरेजी भाषा के आधार पर इङ्गलैंड और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के दो महान् राष्ट्रों को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रस्ताव और प्रयास किया था। अरब-राष्ट्रों का एक संयुक्त संघ बनाने का जो प्रयास किया गया अथवा किया जा रहा है, उसका मुख्य आधार भी अरबी भाषा की एकता है। अब अपने स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र को सुदृढ़ एकता के सूत्र में बाँधने के लिए हमने भी हिन्दी के माध्यम को अपनाया है। परन्तु, हिन्दी को यह गौरव अनायास ही प्राप्त नहीं हुआ है। जिनकी अपूर्व सूझ-बूझ, अनोखे प्रयास और अपने समय के प्राय: समस्त महारथियों के विरोध में भी दिखाई गई

दृढ़ता से हिन्दी को यह गौरव मिल सका है, उनमें स्वर्गीय श्रीअयोध्याप्रसाद जी खत्री का सर्वप्रमुख स्थान है।

डॉ० एनी बेसेण्ट ने सन् १६१६ ई० में शुरू किये गये होमरूल-आन्दोलन के सम्बन्ध में यह बिलकुल ठीक ही कहा था कि प्रत्येक आन्दोलन के प्रारम्भ में उपेक्षा, उपहास, निराशा तथा विरोध का सामना करना पड़ता है और जो आन्दोलन इन चारों स्थितियों में दृढ़ता से पैर जमाये रखता है, वह सफल हो जाता है। स्वर्गीय खत्रीजी ने जब खड़ी हिन्दी में कविता करने की आवाज उठाई थी, तब उनकी वह आवाज शीघ्र ही एक प्रचण्ड आन्दोलन बन गई थी और उसको भी इन चारों स्थितियों से गुजरना पड़ा था। हिन्दी के दिग्गज विद्वानों ने उनका जो विरोध किया, उससे कुछ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनको यह भय होने लगा था कि खत्री जी ने उनके एकाधिकार पर धावा बोल दिया था। मनुष्य स्वभावत: दकियानूसी होता है। वह अतीत की परम्पराओं और परिधियों को एकाएक छोड़ना नहीं चाहता। धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र के समान यह तथ्य अन्य क्षेत्रों पर भी लागू होता है। भाषाओं और साहित्य की भी समय-समय पर परम्पराएँ तथा परिधिया बनती रहती हैं और उनको लाँघना साधारण साहस का काम नहीं होता। समय-समय के साहित्य-महारथियों की अन्तरात्मा में अपनी विद्वत्ता के प्रति एक झूठी अहंमन्यता भी पैदा हो जाती है और वे उसके कारण दूसरों को कुछ हीन दृष्टि से देखने के आदी हो जाते हैं। बहुत-कुछ इसी मनोवृत्ति के कारण खड़ी हिन्दी में कविता करने के खत्री जी के सुझाव, विचार तथा आन्दोलन का भी विरोध किया गया। परन्तु अन्त में वे विजयी हुए। और, आज खड़ी हिन्दी में प्रथम श्रेणी की कविता करनेवाले कवियों की कमी नहीं है तथा उनकी प्रतिभा ने हिन्दी के गौरव में चार चाँद लगा दिये हैं। इस सबका श्रेय विना किसी सन्देह के स्वर्गीय श्रीअयोध्याप्रसादजी खत्री को प्राप्त है।

हिन्दी-कविता के क्षेत्र में इस प्रकार युग-परिवर्त्तन करनेवाले महापुरुष के प्रति श्रद्धा व्यक्त करना हिन्दी-प्रेमियों का परम कर्त्तव्य है। मुजफ्फरपुर की प्रमुख सार्वजनिक संस्था नवयुवक-समिति का कुछ परिचय मुझे तब मिला था, जब मैं सन् १९३४ ई० में उत्तरी विहार में भूकम्प के कारण खंड-प्रलय के-से महाविनाश की घोर विपत्ति उपस्थित होने पर, वहाँ सेवा-कार्य के लिए गया था और उस सेवा-कार्य के लिए मुझे मुजफ्फरपुर के समीप कटरा थाने के बेदौल नामक स्थान में ९-१० मास रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। तब नवयुवक-समिति के उत्साही नवयुवक कार्यकर्त्ताओं के साथ सहज में कुछ घनिष्ठता भी पैदा हो गई थी। नवयुवक-समिति के वर्त्तमान पदाधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं ने खत्रीजी की पुनीत स्मृति को हिन्दी-साहित्य में स्थायी बनाने का बीड़ा उठाकर समिति की उत्साहपूर्ण प्राचीन परम्परा को कायम रखने का जो परिचय दिया है, उसके लिए मैं उनको हार्दिक बधाई देता हूँ। अपने पूर्वज महापुरुषों के प्रति इस प्रकार श्रद्धा व्यक्त करके ही श्राद्ध की पुरातन परम्परा को वास्तविक रूप में निभाया जा सकता है। यह कुछ कम खेद की बात नहीं है कि हम खत्रीजी के जन्म-दिन, उनके क्रिया-कलाप तथा उनकी कृतियों को भी भूल गये थे। नवयुवक-समिति ने उनके प्रति

की गई इस प्रकार की अवज्ञा का प्रायश्चित्त करने का जो उपक्रम किया है, वह वास्तव में स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। मैं खत्रीजी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा एवं कृतज्ञता प्रकट करने का यह शुभ अवसर प्राप्त कराने के लिए नवयुवक-समिति का अत्यन्त आभारी हूँ। अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को भी इसी प्रकार अपने स्थानीय बुजुर्गों और महापुरुषों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन अवश्य ही करना चाहिए। जहाँ साहित्यकार सम्मानित नहीं किया जाता, वहाँ साहित्य का विकास नहीं हो सकता। इस दृष्टि से भी मुजफ्फरपुर की नवयुवक-समिति का यह आयोजन अत्यन्त शुभ, सुन्दर और अनुकरणीय है।

४०/१० हनुमान् रोड
नई दिल्ली
१८ अक्टूबर, १९५९

—सत्यदेव विद्यालंकार

●

नमस्य व्यक्तित्व

आज की हिन्दी युगों की आत्यंतिक साधना और अनवरत परिश्रम का सुपरिणाम है। इसका जो रूप हमारे सामने है, उसके निर्माण में लगन और निष्ठा की अनमोल निधियाँ खर्च हुई हैं। दीवानों की हर साँस की झंकार उसकी हर रश्मि में गूँज रही है। इतिहास इस चिरंतन झंकार को पकड़ना चाहता है। उसने इस दिशा में बार-बार प्रयत्न किया है। कभी सफल रहा है, कभी असफल। जहाँ वह असफल रहा है, वहीं श्रीअयोध्याप्रसाद खत्री का साहित्यिक व्यक्तित्व हाथ में मशाल लेकर खड़ा है।

खड़ी और पड़ी बोली का विवाद किसी प्रकार की घृणा का फल नहीं था। उसके मूल में परंपरा का मोह प्रबल हो उठा था। यों तो आज भी यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि व्रजभाषा का चमत्कार खड़ी बोली की कविता में आ सका है या नहीं। परंतु खड़ी बोली की उपलब्धियों को देखकर यह कहना ही पड़ेगा कि खत्रीजी तथा उनके साथियों का विश्वास निराधार नहीं था। भविष्य की संभावनाओं को पहचानकर नवीन के निर्माण की ओर आस्थापूर्ण हृदय से अग्रसर होना एक बड़ी बात है। श्रीखत्रीजी का व्यक्तित्व यहाँ नमस्य प्रतीत होता है।

निर्माण की हर ईंट बेशकीमत होती है और ईंट रखनेवाला मजदूर ही इतिहास की कड़ी जोड़ता है। खत्रीजी, इस दृष्टि से, एक सफल शिल्पी थे—धुनी और कलम के धनी। किया बहुत कुछ—दिया भी कम नहीं। और जो कुछ दिया, उसका अपना महत्त्व है—वह सर्वथा विशिष्टतायुक्त है।

और खत्रीजी की महनीयता तो देखिए! उदार हृदय से कर्त्तव्य की वेदी पर पूजा के फूल चढ़ाते रहे। भूलकर भी पुरस्कार की याचना नहीं की। साहित्य-भांडार भरता गया। परंतु वह खत्रीजी को कुछ भी न दे सका। उसका ऋण आजतक चुकाया न जा सका!

खत्रीजी की स्मृति में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ किया जा रहा है, वह स्तुत्य है। श्रद्धा के थाल में जलता हुआ आरती का दीप हमारी संज्ञा को जगाये रखे, यही ईश्वर से प्रार्थना है!

—केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

श्री अयोध्याप्रसाद खत्री की भाषा-नीति

पिछले ६०-७० वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ-साथ हिन्दी-भाषा और साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक आन्दोलन होते रहे हैं और उनके माध्यम से हिन्दी को महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुई हैं। वह क्रमशः राष्ट्रभाषा और राज्यभाषा के गौरव तक पहुँच रही है। इन सभी आन्दोलनों का प्रवर्त्तन बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली के आन्दोलन' से हुआ था। बहुतेरे व्यक्ति खड़ीबोली-आन्दोलन का अभिप्राय केवल 'ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली' से समझते हैं। उस आन्दोलन से राष्ट्रभाषा के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नों, जैसे उर्दू की समस्या और गद्य की भाषा, से कोई लगाव नहीं स्वीकार करना चाहते। ऐसे लोग खत्रीजी के आन्दोलन को केवल पद्य के क्षेत्र में ही सीमित करके देखना चाहते हैं। वस्तुतः, वे खत्रीजी के मूल अभिप्राय से सुपरिचित नहीं मालूम पड़ते। खत्रीजी का लक्ष्य हिन्दी की एक सर्वमान्य और निर्विवाद अन्तरप्रान्तीय शैली की स्थापना करना था, जिसमें पद्य का भी निर्माण हो और गद्य का भी; जो शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत हो और कचहरियों में भी व्यवहृत हो, उसे सभी हिन्दीभाषी-क्षेत्र के लोग शिष्टभाषा-शैली के रूप में स्वीकार करें और व्यवहार करें। इस प्रकार उनका आन्दोलन एक बड़े लक्ष्य को लेकर प्रारम्भ हुआ था। इस महान् कार्य के लिए उन्होंने व्यक्तिगत रूप से इतना बड़ा त्याग और श्रम किया, जिसके जोड़ का उदाहरण हिन्दी-साहित्य के इतिहास में ढूँढने से भी मिलना मुश्किल है।

खत्रीजी के इस युगान्तरकारी आन्दोलन का प्रारम्भ 'खड़ी बोली का पद्य' नामक पद्य-संकलन के प्रकाशन से हुआ। इस संकलन का प्रथम भाग इन्होंने सन् १८८७ ई० में प्रकाशित कराया। इसी का एक अन्य संस्करण सन् १८८८ ई० में लन्दन से हिन्दी-हितैषी पिनकाट साहब के सम्पादकत्व में बड़ी सज-धज के साथ प्रकाशित हुआ था। खत्रीजी ने खड़ीबोली के पद्य की भाषा का प्रतिमित रूप प्रचारित करने के लिए इसे हिन्दी-क्षेत्र में निःशुल्क वितरित कराया। इसके अलावा 'खड़ी बोली पद्य का दूसरा भाग' भी उन्होंने प्रकाशित कराया था। उनके इन संग्रहों की भूमिकाएँ और कुछ अन्य लेख तथा पत्रादि उनकी भाषा-नीति पर प्रकाश डालने में पूर्णतया समर्थ हैं। उनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि खत्रीजी उर्दू को हिन्दी (खड़ीबोली) से भिन्न नहीं मानते थे, बल्कि उसकी एक शैली (मौलवी स्टाइल) मानते थे। वे उर्दू और खड़ीबोली में केवल लिपि-भेद मुख्य रूप से स्वीकार करते थे। इस प्रकार उनकी भाषा-नीति के अध्ययन में उर्दू का प्रश्न भी अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-गद्य की प्रतिमित भाषा-शैली स्थिर करने के लिए तत्कालीन प्रचलित बारह शैलियों के नमूने उपस्थित कर नं० २ और ३ की भाषा-शैली को प्रतिमित शैली

के रूप में स्वीकार किया था; उसी प्रकार खत्रीजी ने भी खड़ीबोली में उपलब्ध विविध शैलियों में रचित पद्य के नमूने एकत्र कर खड़ीबोली-पद्य की भाषा-शैली का स्वरूप स्थिर करना चाहा था। उन्होंने खड़ीबोली की पाँच स्टाइलें बताई थीं—(१) ठेठ हिन्दी, (२) पंडित हिन्दी, (३) मुन्शी हिन्दी, (४) मौलवी हिन्दी और (५) यूरेशियन हिन्दी। इन पाँच शैलियों में से ठेठ हिन्दी और यूरेशियन हिन्दी में पद्य-रचना का प्रश्न बिलकुल गौण है। शेष तीन शैलियों में पंडित-हिन्दी (High Hindi) और मौलवी-हिन्दी (Urdu) अतिवाद के दो भिन्न-भिन्न छोरों पर स्थित हैं। खत्रीजी का कथन था कि सर्वसामान्य एवं शिष्ट शैली में केवल मुन्शी लोग ही लिखते हैं; अतः वही व्यावहारिक एवं सर्वोत्कृष्ट शैली है। पंडित-हिन्दी में संस्कृत के बड़े-बड़े क्लिष्ट शब्दों और मौलवी-हिन्दी में अरबी-फारसी के दुर्बोध शब्दों का आधिक्य होने से दोनों ही अव्यवहार्य हैं। इन दोनों के बीच की शैली को, जिसे यूरोपियन 'हिन्दुस्तानी' कहते हैं, खत्रीजी मुन्शी-स्टाइल कहते थे और इसी हिन्दुस्तानी को वे खड़ी बोली की सबसे शिष्ट एवं प्रतिमित शैली मानते थे। उन्होंने इसी शैली में पद्य-रचना के लिए आन्दोलन किया। खत्रीजी चाहते थे कि एक दल व्रजभाषा का मोह छोड़ दे और दूसरा दल फारसी-लिपि छोड़ दे और दोनों दल हिन्दुस्तानी भाषा-शैली और नागरी-लिपि के समान स्तर पर परस्पर मिल जायँ। विचारणीय है कि खत्रीजी की राय यदि उसी समय मान ली गई होती, तो हिन्दी-उर्दू का बड़ा घातक विवाद समाप्त हो गया होता। आज बहुत-से लोग खत्रीजी के इस मत को मानते हैं कि उर्दू हिन्दी की एक शैली-मात्र है, परन्तु उस समय उनका घोर विरोध किया गया।

एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की आलोचना—व्रजभाषा के समर्थन में तत्कालीन दिग्गज साहित्यकारों ने खड़ीबोली-पद्य का एक स्वर से विरोध किया। अपने पक्ष के समर्थन में उन लोगों ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की बार-बार दुहाई दी। इससे खीझकर खत्रीजी ने बड़े साहसपूर्वक भारतेन्दुजी के मत का भी खंडन किया और 'एक अगर-वाले के मत पर खत्री की आलोचना' नामक अपनी एक टिप्पणी में लिखा कि हरिश्चन्द्र ने खड़ीबोली-पद्य के प्रति अपनी असुविधा इस दृष्टि से प्रकट की थी कि खड़ीबोली की क्रियाएँ दीर्घ होती हैं। लेकिन दीर्घ को ह्रस्व करने की छूट एक हद तक तो कवियों को है ही; फिर स्वयं भारतेन्दुजी 'रसा' उपनाम से खड़ीबोली में कविताएँ करते थे और खड़ीबोली की मौलवी-स्टाइल के कवि 'अनीस' को उत्तम कवि कहते थे। उनका सम्पूर्ण गद्य-साहित्य खड़ीबोली की मुन्शी-स्टाइल में है और उनके हिन्दी-व्याकरण से भी यही सिद्ध होता है कि वह व्रजभाषा का नहीं, बल्कि खड़ीबोली का व्याकरण है। ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि वे मुंशी-स्टाइल के लेखक थे। फिर भी, न जाने क्यों, उन्होंने खड़ीबोली-पद्य का विरोध किया। "रही छंद की बात, सो स्टाइल और पिंगल दो भिन्न-भिन्न वस्तु हैं।" ध्यान देने की बात है कि उनका मुख्य लक्ष्य स्टाइल स्थिर करना था—पिंगल के घेरे से मुक्त; अर्थात् केवल पद्य की ही शैली नहीं, बल्कि एक सर्वसामान्य प्रतिमित शैली। उनकी वह शैली (स्टाइल) थी—खड़ीबोली की मुंशी-स्टाइल। स्मरणीय है कि वे मुजफ्फरपुर में कलक्टरी कचहरी के पेशकार थे। उनका जन्म-स्थान शायद बलिया है,

परन्तु जीविका के लिए उन्हें अपने जीवन का अधिकांश समय बिहार की कचहरियों में व्यतीत करना पड़ा था। बिहार में भी कचहरी की भाषा उर्दू थी। नागरी-लिपि की एक विशिष्ट मुंशी-स्टाइल कैथी-लिपि के नाम से बिहार की सामान्य लिपि थी। वहीं सन् १८८१ ई० से कचहरियों में भी जारी की गई। शिष्ट-समुदाय की परस्पर बोलचाल की भाषा और शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में खड़ीबोली की मुंशी-स्टाइल (हिन्दुस्तानी) ही व्यवहृत होती थी। खत्रीजी भी कचहरी के मुंशी थे। इस मुंशी-स्टाइल से उनका नाता स्पष्ट है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वे केवल अपने इस नाते के कारण ही उसके समर्थक थे। कचहरी में रहकर भी उन्होंने मौलवी-स्टाइल का विरोध किया, उर्दू-लिपि का विरोध किया, उन्हें कैथी का भी मोह नहीं था। उन्होंने तो सम्पूर्ण हिन्दी-क्षेत्र की एकता और आवश्यकता का ध्यान रखते हुए एक सर्वप्रचलित शैली के रूप में नागरी-लिपि में लिखी जानेवाली मुंशी-स्टाइल का समर्थन किया था। वे राय सोहनलाल और राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद को इस शैली का आदर्श लेखक मानते थे। उन्होंने 'खड़ी बोली का पद्य, दूसरा भाग' में लिखा है कि 'पंडित-हिन्दी' कृत्रिम है। लल्लूजी लाल ने सप्रयास खड़ीबोली में संस्कृत और व्रजभाषा के शब्द रखकर इस नकली शैली का निर्माण किया। इसी प्रेमसागर की स्टाइल का लोग अनुकरण करने लगे और इसी स्टाइल को लोग आधुनिक हिन्दी समझने लगे। यदि खड़ीबोली के पहिले लिखैये राय सोहनलाल अथवा राजा शिवप्रसाद होते, तो इतना बखेड़ा न होता। सन् १८७६ ई० में गवर्नमेंट ने पंडित-स्टाइल और मौलवी-स्टाइल के बीच में 'हिन्दुस्तानी' (जिसको मैं मुंशी-स्टाइल कहता हूँ) में किताबें लिखने की आज्ञा दी, परन्तु बहुत कम आदमियों ने इसपर खयाल किया। स्टाइल का खयाल नहीं हुआ, इसीलिए जबान समझ में नहीं आई। उर्दू को अन्य भाषा और व्रजभाषा-काव्य को हिन्दी-पद्य समझने लगे। वे जिस प्रकार पंडित-स्टाइल को कृत्रिम समझते थे उसी प्रकार मौलवी-स्टाइल को भी। उनका निश्चित विचार था कि यदि फारसी-लिपि का व्यवहार कचहरी और कार्यालयों से हटाया जा सके, तो निश्चित ही मौलवी-स्टाइल समाप्त हो जायगी। वे आगे लिखते हैं कि "सन् १८८१ ई० में बिहार की कचहरियों में कैथी अक्षर जारी हुए, परन्तु कचहरियों में अभी स्टाइल वही मौलवी साहब की है। पश्चिमोत्तर देश से जब फारसी अक्षरों का सत्यानाश होगा, तब हमलोगों (हिंदी-रसिकों) की मनोकामना सिद्ध होगी और मौलवी-स्टाइल निर्मूल हो जायगी।" वे यह भी चाहते थे कि मुंशी-स्टाइल में लिखनेवाले लोग क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों के स्थान पर ठेठ हिन्दी के शब्दों का भी ध्यान रखें। परन्तु उनके विचारों से उस समय के अधिकतर मुख्य साहित्यकारों की राय नहीं मिली। हिन्दुस्तानी का समर्थन करके राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ही रह गये, जबकि हरिश्चन्द्र भारतेन्दु हो गये थे। उसके अनेक कारण थे, जिनपर यहाँ विचार करना अप्रासंगिक होगा। यहाँ तो हम केवल खत्रीजी की अमूल्य सेवाओं का ही स्मरण करना चाहते हैं।

खड़ीबोली के प्रति खत्रीजी की सेवाएँ—खड़ीबोली के इतिहास में खत्रीजी का स्थान ऐतिहासिक महत्त्व का है और उनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। उनके जीवनी-लेखक श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद शर्मा ने लिखा है कि खड़ीबोली के प्रचार के लिए आपने इतना द्रव्य

खर्च किया कि राजा-महाराजा भी कम करते हैं। 'चम्पारन-चन्द्रिका' में बाबू साहब ने सूचना दी थी कि जो श्रीरामचन्द्र का यश-वर्णन खड़ीबोली-पद्य में करेगा, उसे प्रति पद्य १०) पुरस्कार दिया जायगा।

खड़ीबोली का रूप स्थिर करने के लिए उन्होंने 'हिन्दी-व्याकरण' की रचना की। हिन्दुस्तानी के अधिकांश शब्दों को यावनी संसर्ग से दूषित समझकर हम अपने प्रयोग से बहिष्कृत कर देते हैं अथवा उन्हें विदेशी मान लेते हैं। इस भ्रम को दूर करने के लिए उन्होंने सन् १८८७ ई० में 'संस्कृत जनित जावनी शब्द-संग्रह' नामक एक कोश भी प्रकाशित कराया। खड़ीबोली के लिए उपयुक्त छंदों का अभाव देखकर सन् १८८७ ई० में ही उन्होंने उर्दू-छंदों का संकेत देने के लिए तथा स्पष्टतापूर्वक भेद समझाने के लिए 'मौलवी-स्टाइल की हिन्दी का छंद-भेद' प्रकाशित कराया।

खड़ीबोली का प्रचार करने के लिए खत्रीजी ने 'खड़ीबोली' नाम से एक पत्रिका भी निकालने का प्रयत्न किया। २६ जनवरी, सन् १९०१ के अपने पत्र में उन्होंने बाबू श्यामसुन्दरदास को लिखा था—"मेरा इरादा एक नहीं, तीन पत्र निकालने का है—(१) खड़ीबोली, (२) अदालती हिन्दी, (३) तिहुंता······।" खड़ीबोली-पद्य के सम्बन्ध में विविध पत्र-पत्रिकाओं में जो आन्दोलन हुआ था, उसका एक चुना हुआ संग्रह भी उन्होंने प्रकाशित कराना चाहा था, जिसे 'खड़ीबोली का आन्दोलन' नाम से पं० भुवनेश्वर मिश्र ने संपादित करके छपवाया। इन पत्रों के संकलन का सुझाव श्रीधर पाठक ने दिया था। पाठकजी ने आगरा से २८ फरवरी, १९०१ को एक पत्र लिखकर खत्रीजी को सुझाव दिया था कि "यदि आप खड़ी हिन्दी नाम का पत्र निकालें, तो पहिली संख्या में वह लेख ज्यों-के-त्यों निकलने चाहिए जो सन् १८८८ से १८९० वा ९१ तक 'हिन्दोस्तान' आदि पत्रों में छपे थे।" अतः शीघ्र ही 'सान्त्वना' शीर्षक से भारतमित्र में इस आशय का विज्ञापन प्रकाशित हुआ कि वे सब पत्र पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहे हैं।

खड़ीबोली का प्रचार करना ही खत्रीजी के जीवन का ध्येय था। इसके विरुद्ध जहाँ कुछ भी किसी ने छापा या भाषण दिया कि वे तुरन्त अपने आन्दोलन की पूरी फाइल भेजकर शास्त्रार्थ करने को तैयार हो जाते थे। वे हिन्दी-भाषा का एक क्रमबद्ध इतिहास भी छपवाना चाहते थे और पर्याप्त मसाला इकट्ठा कर चुके थे, फिर भी कई कारणों से पूरा न कर सके। खड़ीबोली के प्रसिद्ध कवि और खत्रीजी के आन्दोलन के एकमात्र सबल समर्थक श्रीधर पाठक से भी हिन्दी-साहित्येतिहास के काल-विभाजन को लेकर खत्रीजी का मतभेद हो गया था। परन्तु खत्रीजी श्रीधर पाठक के सदैव प्रशंसक रहे और जब पाठक जी आबपाशी कमीशन के साथ मुजफ्फरपुर गये, तो खत्रीजी ने उन्हें 'एड्रेस' दिया। खड़ीबोली के प्रचार के लिए उन्होंने अनेक पत्र, प्रकीर्णक एवं पुस्तिकाएँ प्रकाशित कराईं और अपने जीवन की सम्पूर्ण कमाई की इस महान् यज्ञ में आहुति दे दी। फिर भी उन्हें आशानुरूप सफलता अपने जीवन में मिलती दिखाई न पड़ी। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ था। उनके समर्थक श्रीधर पाठक ने अपने पत्र में खत्रीजी को लिखा था कि "यह पढ़कर दुःख हुआ कि

आपको खड़ी हिन्दी के सम्बन्ध में द्रव्य-हानि उठानी पड़ी। हानि मैंने भी उठाई है। इसी से सम्बन्ध तोड़ दिया था। हिन्दी मानने जाननेवाले बहुत नहीं हैं, यही इसका कारण है।"

राष्ट्रभाषा की इस सेवा के बदले खत्रीजी को जो विरोध सहना पड़ा, वस्तुतः उससे वे बड़े उदास और हतोत्साह हो गये। सन् १८९० तक आते-आते उन्होंने साहित्यिक कार्यों से संन्यास-सा ले लिया था। करीब एक दशक के बाद सन् १९०१ ई० से उन्होंने फिर उनमें दिलचस्पी लेनी शुरू की, परन्तु सन् १९०५ में उनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई। श्यामसुन्दरदास के 'हिन्दी-भाषा का संक्षिप्त इतिहास' में उन्होंने अपने सुधार का उल्लेख चाहा था। इसपर बाबू साहब ने खत्रीजी को एक पत्र लिखकर अपना हर्ष प्रकट किया था और लिखा कि "यह जानकर विशेष आनन्द हुआ कि खड़ीबोली अथवा हिन्दी-कविता पर आपका ध्यान पुनः गया।" श्रीधर पाठक ने भी १ फरवरी, १९०१ में पन्नी गली, आगरा से एक पत्र लिखकर खत्रीजी को सान्त्वना देते हुए लिखा था कि "आपको कोई नहीं भूला, पर आप इतने दिनों तक हिन्दी को कैसे भूले रहे।"

सचमुच बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री-जैसे क्रान्तदर्शी हिन्दी-सेवक को भूलना हिन्दी-वालों की सबसे बड़ी कृतघ्नता होगी। यह बड़े हर्ष एवं गर्व का विषय है कि बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने बड़े उपयुक्त अवसर पर उनके सम्मान में स्मारक तथा स्मृति-ग्रन्थ का आयोजन किया है। इस पुण्य अवसर पर मैं इन शब्दों के द्वारा अपनी प्रणत श्रद्धांजलि खत्रीजी के प्रति समर्पित करता हूँ।

लक्ष्मीकुण्ड, वाराणसी
२० दिसम्बर, ५९ ई०

—शितिकण्ठ मिश्र

स्व० अयोध्याप्रसाद खत्री की हिन्दी-सेवा

यह कितने अभिशाप की बात है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अनेक ऐसे हिन्दी-साहित्य के मनीषियों का नाम तक नहीं, जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से हिन्दी-साहित्य की चिरस्मरणीय सेवा की और जिन्होंने सेवा की धूनी रमाकर हिन्दी-साहित्य के भांडार को भरा। जो इतिहास कॉलेजों में पढ़ाये जाते हैं, वे इतने अधूरे और असंगत हैं कि इतिहास-लेखकों की कार्यक्षमता पर हँसी आती है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में जब स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी, श्रद्धेय पुरुषोत्तमदासजी टंडन और श्रद्धेय अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीजी का नाम तक नहीं है, तब स्व० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन, खड़ीबोली के प्रबल समर्थक और वर्त्तमान हिन्दी-पद्य के प्रमुख प्रचारक और प्रहरी स्व० अयोध्याप्रसाद खत्री को भला कितने व्यक्ति जान सकते हैं।

स्व० श्रीअयोध्याप्रसाद खत्री का देहावसान ४ जनवरी, १९०५ को हुआ। उस समय इन पंक्तियों के लेखक की आयु केवल आठ वर्ष की थी। ऐसी दशा में इन पंक्तियों के लेखक का न तो उनसे कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध हो सकता था और न उनके विषय में इसी कारण कोई संस्मरण लिखा जाना सम्भव है। हाँ, इन पंक्तियों के लेखक ने जब आधुनिक हिन्दी-साहित्य का अध्ययन किया और खड़ीबोली के विकास का मनन किया और खड़ीबोली की कविता के विकास का ऐतिहासिक सिंहावलोकन किया और कुछ अध्ययन किया, तब पता चला कि स्व० श्री अयोध्याप्रसाद खत्री उन महानुभावों में से थे, जिन्होंने वर्त्तमान हिन्दी-कविता के समर्थकों और उसकी बुनियाद रखनेवालों का काम किया। यह ठीक है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वर्त्तमान हिन्दी के लिए जो अनवरत रूप से कार्य किया और हिन्दी-कविता में खड़ीबोली को स्थान दिया, वह उनके अमरत्व के लिए काफी है। पर हिन्दी के अनेक पाठकों को और विशेषकर हिन्दी के अनेक वर्त्तमान कॉलेज-अध्यापकों तक को शायद यह पता न हो कि स्व० श्रीअयोध्याप्रसादजी का स्थान हिन्दी-पद्य के प्रचार में कम न था। श्रीअयोध्याप्रसादजी धनी-मानी नहीं थे और न भारतेन्दु की तरह हिन्दी-सेवा के लिए खर्च कर सकते थे, पर वे स्वयं दीपशिखा बनकर प्रज्वलित हुए और हिन्दी-सेवा के लिए जो काम उन्होंने किया, वह अमूल्य था।

पाठक जानते हैं कि पहले हिन्दी-कविता व्रजभाषा में होती थी। गद्य की भाषा तो खड़ीबोली बहुत पहले हो गई थी, पर कविता व्रजभाषा में ही होती थी। श्रीअयोध्याप्रसादजी को हिन्दी-साहित्य का द्वैध शासन अखरा, इसीलिए उन्होंने इसके विरुद्ध जिहाद-सा बोल दिया। उन्होंने खड़ीबोली के पद्य का प्रचार ही अपने जीवन का व्रत बना लिया और आजीवन वे उसके प्रचार में ही लगे रहे। इस उद्देश्य की पूर्त्ति में उन्होंने बड़ा ही सक्रिय

कार्य किया। सन् १८७७ में उन्होंने हिन्दी-व्याकरण लिखकर प्रकाशित किया। वास्तव में श्रीअयोध्याप्रसादजी का यह तर्क बड़ा ही विवेकपूर्ण था कि जिस खड़ीबोली में हिन्दी-गद्य लिखा जाता है, उसीमें पद्य न लिखा जाकर व्रजभाषा में लिखा जाता है, जिस बोली में गद्य लिखा जाता है, उसीमें पद्य भी लिखा जाना चाहिए। उस समय न तो इतने समाचार-पत्र थे और न अब-जैसी यातायात की सुविधाएँ ही थीं। इसलिए उस युग में खड़ीबोली में हिन्दी-कविता करने के लिए जो कार्य अयोध्याप्रसादजी ने किया, वह अतुलनीय है।

उनकी हिन्दी-साहित्य-साधना की गरिमा का पता इस बात से चल सकता है कि उन्होंने सन् १८८६ में कई पुस्तकों की रचना करके पिनकॉट से साहब सम्पादित कराकर प्रकाशित कराई और मुफ्त में भी लोगों को बाँटी।

हिन्दी में अनेक गण्यमान्य शैलीकार हैं। हिन्दी की लेखन-शैली पर अनेक विद्वान् लेखक अपने विचार प्रकट किया करते हैं। क्षेत्र-विशेष की दृष्टि से भी शैली का वर्गीकरण किया जाता है।

अब से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व श्रीअयोध्याप्रसाद खत्री ने हिन्दी की शैली पर अपने विचार प्रकट किये थे। उनके मत से खड़ीबोली अथवा हिन्दी के पाँच भेद थे—(१) ठेठ हिन्दी (२) पण्डित-स्टाइल की हिन्दी (३) मुन्शी-स्टाइल की हिन्दी (४) मौलवी-स्टाइल की हिन्दी (५) यूरेशियन स्टाइल की हिन्दी।

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि स्व० श्रीअयोध्याप्रसाद खत्री के विषय में श्री बाबू शिवपूजन सहाय के सम्पादकत्व में अभिनन्दन-ग्रंथ निकल रहा है। यह कार्य न केवल स्तुत्य है, वरन् अत्यन्त आवश्यक भी। इस ग्रंथ से हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी कमी पूरी होगी। इतने दिनों बाद उचित श्रद्धांजलि अर्पित की जा सकेगी। हम स्वयं उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा वर्त्तमान हिन्दी के एक निर्माता श्रीखत्रीजी को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और हमें आशा है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य के इतिहासकार खत्री जी को उचित स्थान देकर हिन्दी-साहित्य की शोभा बढ़ायेंगे।

—श्रीराम शर्मा

['विशाल भारत' (कलकत्ता), दिसम्बर, १९५९ ई० से साभार—सं०]

खत्रीजी के नाम श्री श्रीधर पाठक का एक पत्र

Allahabad
13-1-88

My dear Sir,

Your letter of 26th ultimo and the books for which many thanks. You have sent me more copies than I could distribute among eminent scholars of Hindi. Such men you know are but few and to these few I believe you have already sent your books. I however name below the scholars of my acquaintance and if you will let me know which of them have not seen your books, I will send them the copies of your collections.

Raja Lachhman Singh of B. Shahar
Shri Tota Ram Vakil, Aligarh, Editor Bharat Bandhu
Thakur Jagmohan Singh, C. P.
Lala Kashinath Khatri, Sirsa, Allahabad.
Shri Hrishchandra Kulasreshtha, Hoshangabad.
Mr. F. Growse, Collector, Farrukhabad,
Mr. R. T. Griffich, Late Director N. W. P & O.
Pandit Aditya Ram Bhattacharya M. A. Kotagiri Nilgiri
M. C. C. Allahabad

All of these however are not my friends. Most of them are only acquaintances and I cannot vouchsafe for their opinions being favourable, for you know opinions never agree—as tastes differ so they do—but the desirability of verses in Khari boli is so clear that every body cannot but acknowledge it.

You ask me to give you specimens of all kinds of verses in Khari boli, which you require for your Prosody. If you will send me the skeleton of your book I shall try to fill in examples of verses that it may enumerate. You can I fancy as well write Brij Bhasha verses for illustration purposes. The established rules for writing poetry are equally appropriate to both forms of the languages—a fact which you can broadly note.

With reference to the attack by the Hindi Pradipa on Khari boli poetry, I think the letter in the Hindusthan answers it. In fact it is a general and I believe conclusive

answer to questions against the introduction of Poetry in Khari boli.

I thank you much for sending a copy of the एकान्तवासी योगी to Mr. Pincott in England. I believe you enclosed therewith a copy of the opinions of the Press on it also. Am I to expect Mr. P's opinion on the book ?

I have given a copy of your Khari boli ka Padya to a very able Hindi-est the well known पं० प्रतापनारायण मिश्र of the Brahman fame, who I hope will review them in his paper.

Will you please send me a spare copy or two of the second part with perface of your K. B. Ka Padya ?

I can give you much in shape of K. B. का Padya. I only want to know when you intend commencing the third part of the book. I have to apologize for the delay (which was inevitable) in replying to your letter.

Sd/ Shridhar Pathak

पता—श्री बनारसीदासचतुर्वेदी
९९, नार्थ एवेन्यू
नई दिल्ली

❀

[खत्रीजी के नाम श्री श्रीधर पाठक ने उपर्युक्त पत्र १३-१-८८ ई० को अंगरेजी में लिखा था। पत्र की प्रतिलिपि हमें पं० बनारसीदास चतुर्वेदी से प्राप्त हुई है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। हमने मूल पत्र नहीं देखा है।

पत्र का अनुवाद श्रीविक्रमादित्यमिश्र ने किया है।—सं०]

इलाहाबाद
१३-१-'८८.

प्रिय महोदय,

दिनांक २६ का आपका पत्र और पुस्तकें प्राप्त हुईं। बहुत-बहुत धन्यवाद ! हिन्दी के प्रमुख विद्वानों के बीच वितरणार्थ आपने आवश्यकता से कहीं अधिक प्रतियाँ भेज दी हैं। आप तो जानते ही हैं कि ऐसे लोग, जिन्हें पुस्तकें दी जा सकें, बहुत कम हैं, और मुझे विश्वास है, ऐसे लोगों के पास आप अबतक अपनी पुस्तकें भेज चुके होंगे। फिर भी मैं अपने परिचय के निम्नलिखित कुछ विद्वानों के नाम भेज रहा हूँ। यदि आप यह बताने का कष्ट करें कि इनमें से किन व्यक्तियों ने आपकी पुस्तकें नहीं देखी हैं, तो मैं उनके पास आपके संग्रहों की प्रतियाँ भेज दूं।

राजा लक्ष्मण सिंह, बुलन्दशहर।
श्री तोताराम, वकील, अलीगढ़, संपादक, 'भारतबन्धु'।

ठाकुर जगमोहन सिंह, मध्यप्रदेश।
लाला काशीनाथ खत्री, सिरसा, इलाहाबाद।
श्री हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ, होशंगाबाद।
श्री एफ्० ग्राउस, जिलाधीश, फर्रुखाबाद।
श्री आर० टी० ग्रिफिथ, भूतपूर्व निर्देशक,
एन्० डब्ल्यू० पी० एण्ड ओ०।
पं० आदित्यनाथ भट्टाचार्य, एम्० ए०,
कोटगिरि नीलगिरि, एम्० सी० सी०, इलाहाबाद।

इनमें सभी मेरे मित्र नहीं हैं। अधिकांश से मेरा परिचय-मात्र है। मैं ऐसा नहीं कह सकता कि उनकी सम्मति अनुकूल ही होगी। कारण, विचार आपस में कभी मेल नहीं खाते। रुचि के समान ही विचारों में भी भिन्नता होती है। लेकिन खड़ीबोली में पद्यों की वांछनीयता इतनी स्पष्ट है कि इनमें से प्रत्येक व्यक्ति इससे अवश्य ही सहमत होगा।

आपने अपने छंद:शास्त्र के लिए मुझसे खड़ीबोली के सभी प्रकार के पद्यों के नमूने माँगे हैं। यदि आप अपनी पुस्तक की रूप-रेखा मेरे पास भेज दें, तो मैं उसमें परिगणित छंदों के उदाहरण देने का प्रयास करूँगा। उदाहरणों के रूप में, मैं समझता हूँ, आप व्रजभाषा के पद्य भी ले सकते हैं। कविता लिखने के जो निश्चित नियम हैं, वे दोनों ही भाषाओं के लिए समान रूप से उपयुक्त हैं। इसे सामान्य रूप से आप भी स्वीकार करेंगे। खड़ीबोली की कविता पर हिन्दी 'प्रदीप' के द्वारा प्रहार का उत्तर, मैं सोचता हूँ, 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित पत्र से मिल जाता है। खड़ीबोली में कविता के विरुद्ध उठाये गये प्रश्नों का, वास्तव में, यह एक सामान्य और मेरी समझ में निर्णायक उत्तर है।

इंगलैंड के श्रीपिनकॉट के पास 'एकान्तवासी योगी' की एक प्रति आपने भेजी है, इसके लिए अनेक धन्यवाद! आशा है, आपने पत्र-पत्रिकाओं की सम्मतियों की एक प्रतिलिपि भी इसके साथ भेजी होगी। क्या मैं उम्मीद करूँ कि श्रीपिनकॉट भी इस पुस्तक पर अपनी सम्मति देंगे?

मैंने आपकी पुस्तक 'खड़ीबोली का पद्य' की एक प्रति हिन्दी के सुयोग्य विद्वान् तथा 'ब्राह्मण' के ख्यातिप्राप्त सम्पादक श्रीप्रतापनारायणमिश्र को दी है। आशा है, वे इसकी समीक्षा अपने पत्र में करेंगे।

क्या आप आमुख-सहित अपनी पुस्तक 'खड़ीबोली का पद्य', द्वितीय भाग की भी एक या दो अतिरिक्त प्रतियाँ भेजने की कृपा करेंगे?

मैं आपको खड़ीबोली के पद्य के रूप में पर्याप्त सामग्री दे सकता हूँ। मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि आप तृतीय भाग कब आरंभ करने को सोच रहे हैं। पत्र का उत्तर देने में विलंब (जो अनिवार्य था) के लिए क्षमा करेंगे।

—ह० श्रीधर पाठक

अयोध्याप्रसाद खत्री

जब कोई विशाल भवन बन जाता है, सुन्दर ऊँचा कनगुरा, संगममंर की दीवारें और मौजाइक के फर्श बन जाते हैं, तब यह लोग नहीं देखते कि इसकी नींव में मजबूत और सुडौल ईंटें भी लगी हैं। आज हिन्दी में खड़ीबोली की उन्नति हम देख रहे हैं। उसका प्रचार और प्रसार हो रहा है। उसमें सुन्दर साहित्य का निर्माण हो रहा है, किन्तु लोगों को यह भी जानना चाहिए कि इसकी प्रगति का श्रीगणेश करनेवाले ऐसे लोग थे, जिन्हें कठिनाइयां तथा विरोध का भी सामना करना पड़ा था। किन्तु, जिन्होंने अपने उत्साह को कम न होने दिया, विरोध के होते हुए इसका झंडा ऊँचा किये रखा, उन्हीं अग्रुओं में अयोध्याप्रसाद खत्री भी थे। जहाँ बिहार ने हिन्दी को अनेक दान दिये हैं, वहीं यह भी बिहार की देन थी। मुजफ्फरपुर के निवासी यह थे। हिन्दी की लगन इन्हें थी। जब इस बात का झगड़ा हो रहा था कि हिन्दी में कविता खड़ीबोली में भी हो सकती है कि नहीं, इन्होंने खड़ीबोली की हिमायत की। यह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दी-शैली का वर्गीकरण किया। खड़ीबोली का इतिहास जो भी पढ़ेगा अथवा जो इसकी प्रगति का इतिहास लिखेगा, खत्रीजी की उपेक्षा नहीं कर सकता। सर फ्रेडरिक पिनकॉट महोदय ने इनकी जो पुस्तक इंगलैंड में छपवाई थी, वह हिन्दी के इतिहास की एक मंजिल है और खड़ीबोली का भव्य द्वार है। जो भी हिन्दी के प्रेमी हैं, उनके यह वन्दनीय हैं। हम आज उन महानुभाव को नमन करते हैं। उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए जो आयोजन हो रहा है, उसकी सफलता की कामना करते हैं। वह हमारी भाषा के निर्माताओं के अग्रज हैं।

—कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'

अयोध्याप्रसाद खत्री का साहित्य

उन दिनों मेरी 'ज्ञान दीपक' नामक पुस्तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा छप रही थी, उसी प्रसंग में मुझे प्राय: सबेरे ९-१० बजे के लगभग प्रति दिन सभा में जाना पड़ता। एक दिन संयोग से सभा से लौटते समय राजा दरवाजे होकर निकला। यहाँ सड़क के दोनों ओर गुदड़ी बाजार है, जिसमें प्राय: पुरानी चीजें बिकती रहती हैं। उन्हीं दूकानों में कभी-कभी कुछ काम की चीजें भी मिल जाया करती हैं। वहीं एक दूकान पर एक बंडल रखा देखकर साइकिल से उतर पड़ा। दूकानदार ने लकड़ी के पटरे पर एक पुराना-सा बंडल रख छोड़ा था। मैंने उसे देखा और उसमें से कुछ चीजें तुलवा कर, पैसे देकर घर चला आया। घर आकर स्नान-भोजन से निवृत्त होकर मैंने उस बंडल को देखा। उसमें बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री की दोनों पुस्तकें, भारतेंदु जी की पूर्णप्रभा चंद्रप्रकाश, लाला श्री निवासदास के परीक्षागुरु का प्रथम संस्करण, बाबू शिवनंदन सहाय लिखित भारतेंदुजी की जीवनी, श्रद्धाराम फुल्लोरी का सत्यामृत प्रवाह आदि थे। इन चीजों को सरसरी निगाह से देखा तो लगा कि उस बंडल में और भी कुछ सामग्री थी, जिसे मैं छोड़ आया था। फिर उस दूकान पर गया तो उस बंडल की सामग्री कहीं जा चुकी थी। दूकान में फैले-छितराये कागजों को इधर-उधर देखा तो उनमें एक छोटा-सा पुर्जा हाथ लगा। और कोई काम की चीज न मिलने पर मन बड़ा उदास हुआ, करता ही क्या, हार कर लौट आया।

जो पुरजा हाथ लगा था, वह नागरी प्रचारिणी सभा के पहले पुस्तकाध्यक्ष पंडित केदारनाथ पाठक की एक अर्जी का मसौदा था, जो उन्होंने सभा के मंत्री को भेजी थी। इससे यह अनुमान हुआ कि शायद पाठक जी के कागज-पत्र कहीं से आए हों, उन्हीं में यह पुर्जा भी आ गया हो। पर जब एक पुस्तक के ऊपर मिर्जापुर के एक पुस्तकालय की मुहर दिखाई पड़ी तो यह समझने को बाकी न रहा कि यह सब सामग्री पंडित केदारनाथ पाठक की है। ये पाठक जी पहले मिर्जापुर में ही रहते थे और वहीं एक पुस्तकालय में पुस्तकाध्यक्ष थे। बाद को काशी आ गए थे। काशी आने पर उनका संपर्क उस युग के प्रमुख साहित्यिकों से था। गोलोकवासी भारतेन्दु जी का पुस्तकालय और बाबू राधाकृष्ण दास जी के पुस्तक-संग्रह की देख-रेख भी उन्होंने बहुत दिनों तक की थी। इस संग्रह में खड़ी बोली का पद्य, दोनों भाग मुझे मिले थे। इसमें दूसरे भाग के भीतर कुछ कागज नोट किये हुए हैं। मैंने इन्हें बाबू राधाकृष्णदास जी का हस्तलेख समझकर उनके पुत्र श्री बालकृष्णदासजी, बल्ली-बाबू, को दिखाया तो उन्होंने बताया कि ये हस्ताक्षर बाबू राधाकृष्णदास के नहीं हैं, अपितु

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री के हैं। इसी लिपि में पुस्तक में कुछ शोधन भी है। बाद को जब उनकी पुस्तक को देखा तो पता चला कि दूसरा भाग सन् १८८६ में मुजफ्फरपुर में प्रकाशित हुआ था और पहला भाग, जो पहले भारत में छपा था और जिसका बाद में एक संस्करण विलायत में छपा था, वह विलायत में छपे खंड का भूमिका-भाग नहीं है। अतएव मैं यह नहीं कह सकता कि उनका सन्-संवत् क्या था, और मुद्रण-स्थान कौन-सा था।

डॉ० शितिकंठ मिश्र ने अपने शोध-प्रबंध में लिखा है कि "...उन्होंने खड़ी बोली की विभिन्न पद्य-रचनाओं का एक संग्रह 'खड़ी बोली का पद्य पहिला भाग' नाम से सन् १८८७ ई० में प्रकाशित कराया।" इसका एक अन्य संस्करण १८८८ ई० में, लंदन से, पिंकाट साहब के सम्पादकत्व में बड़ी सज-धज के साथ प्रकाशित हुआ और खत्रीजी ने खड़ी बोली के पद्य का प्रचार करने के लिए उसे निःशुल्क बाँटा।[1] यह लाल रोशनाई से बार्डर लगाकर छपा हुआ वही फ्रेडरिक पिंकाटवाला संस्करण है। वहीं से यह भी पता चला है कि यह डब्ल्यू० एच्० एलन कम्पनी, लंडन, में सन् १८८८ में छपा था। और खड़ी बोली का पद्य तो, प्रतीत होता है, मुजफ्फरपुर में ही छपा था क्योंकि उसकी भूमिका में स्वयं खत्री जी ने "मुजफ्फरपुर विजया दशमी १२९५ फस्ली अथवा २६वीं सितम्बर १८८७ ई०" लिखा है। इससे यह भी विदित होता है कि दूसरा भाग पहले छप गया था। उसके बाद पहले संस्करण का प्रकाशन लंदन से हुआ। दूसरे भाग में कविता में जहाँ-जहाँ शब्द आये हैं, वहाँ-वहाँ उनके नीचे स्पेलिंग को ठीक व्यक्त करने के लिए रोमन अक्षरों में अंगरेजी शब्द लिख दिए गए हैं।[2]

—उदयशङ्कर शास्त्री

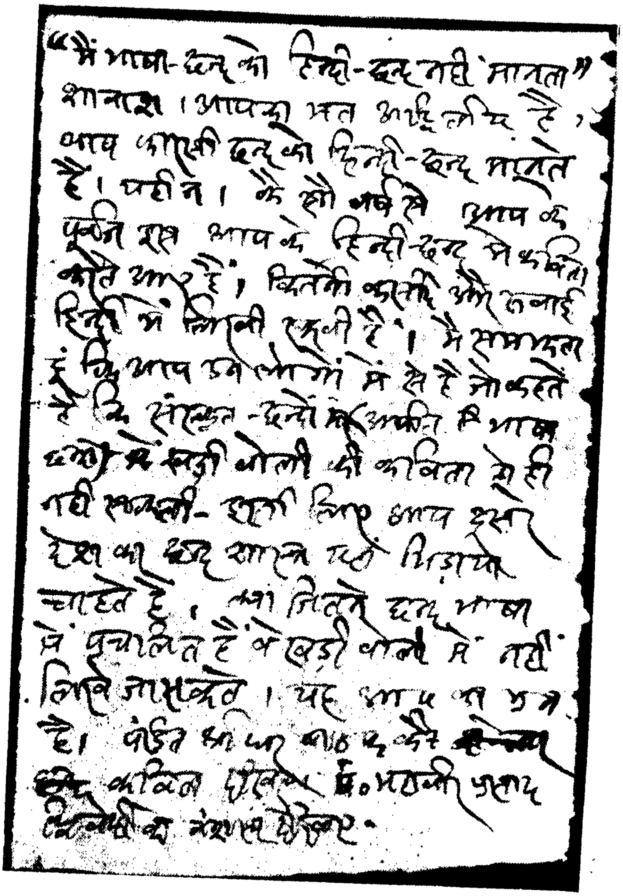
---

१. खड़ी बोली का आन्दोलन, पृष्ठ १५०।

२. उल्लिखित ग्रंथों में से 'खड़ी बोली का पद्य पहिला भाग' का पाठ, दोनों संस्करणों के आधार पर संपादित, इस संकलन में पहले मुद्रित हो चुका है। श्रीउदयशङ्कर शास्त्री से प्राप्त 'खड़ी बोली का गद्य' तथा 'खड़ी बोली का पद्य २रा भाग' परिशिष्ट के रूप में प्रस्तुत है।—संपादक

परिशिष्ट

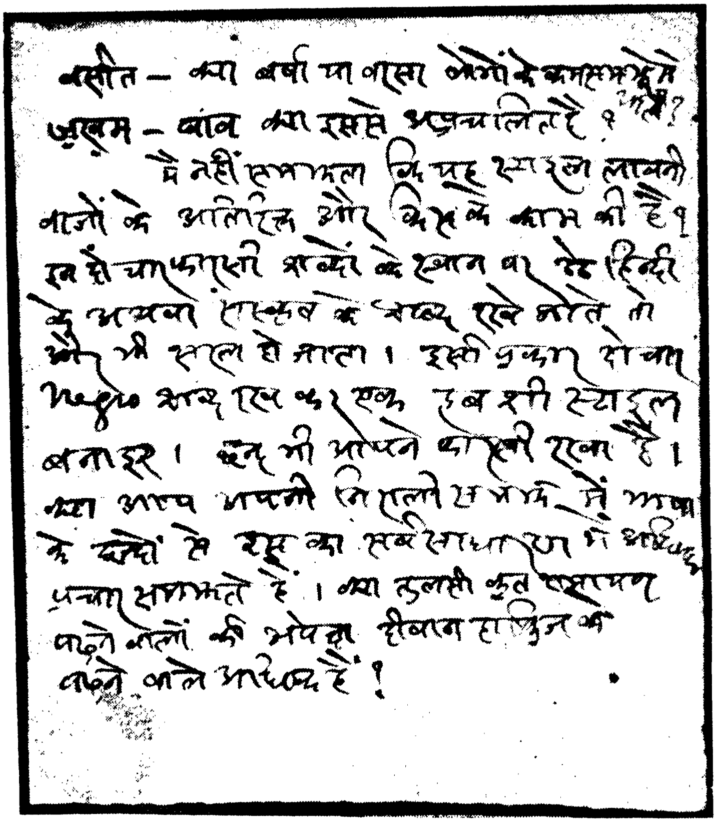
१ (क)



"मैं भाषा-छन्द को हिन्दी-छन्द नहीं मानता"
शाबाश। आपका मत [illegible] है,
आप फारसी छन्द को हिन्दी-छन्द मानते
हैं। यही न। ऐसे ही [illegible] आप के
पूजित [illegible] आप के हिन्दी-छन्द में कविता
करते आए हैं, जितनी फारसी और [illegible]
हिन्दी में लिखी रहती है। मैं समझता
हूं कि आप उन लोगों में से हैं जो कहते
हैं कि संस्कृत-छन्दों में अथवा भाषा
छन्दों में खड़ी बोली की कविता हो ही
नहीं सकती- इसी लिए आप दूसरे
देश का छन्द शास्त्र [illegible]
चाहते हैं, [illegible] जितने छन्द भाषा
में प्रचलित हैं वे खड़ी बोली में नहीं
लिखे जा सकते। यह आप का भ्रम
है। पंडित [illegible] और [illegible]
कविता देखिए। पं० महावीर प्रसाद
द्विवेदी का [illegible] देखिए।

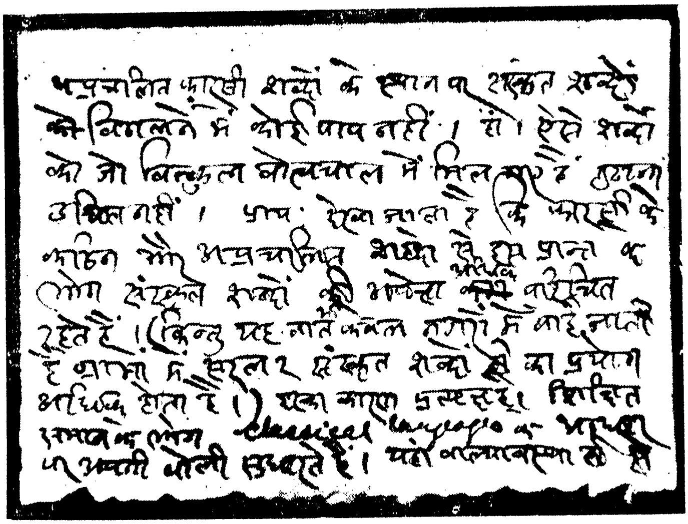
खत्रीजी की हस्तलिपि का चित्र ('खड़ी बोली का गद्य' का अंश)

१ (ख)


[illegible] — क्या [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] में
[illegible] — [illegible] क्या इससे [illegible] है ? नहीं ?
मैं नहीं समझता कि यह [illegible] लावनी
बाजों के अतिरिक्त और किसके काम की है।
इन दो चार फारसी शब्दों के स्थान पर [illegible] हिंदी
के अथवा संस्कृत के शब्द रखे जाते तो
और भी सरल हो जाता। इसी प्रकार [illegible]
Negro [illegible] [illegible] एक [illegible] स्टाइल
बनाइए। [illegible] भी आपने [illegible] रखा है।
क्या आप अपनी [illegible] में भाषा
के छन्दों से [illegible] का सर्वसाधारण में अधिक
प्रचार समझते हैं। क्या तुलसी कृत रामायण
पढ़ने वालों की अपेक्षा दीवान हाफ़िज़ के
पढ़ने वाले अधिक हैं ?

खत्रीजी की हस्तलिपि का चित्र ('खड़ी बोली का गद्य' का अंश)

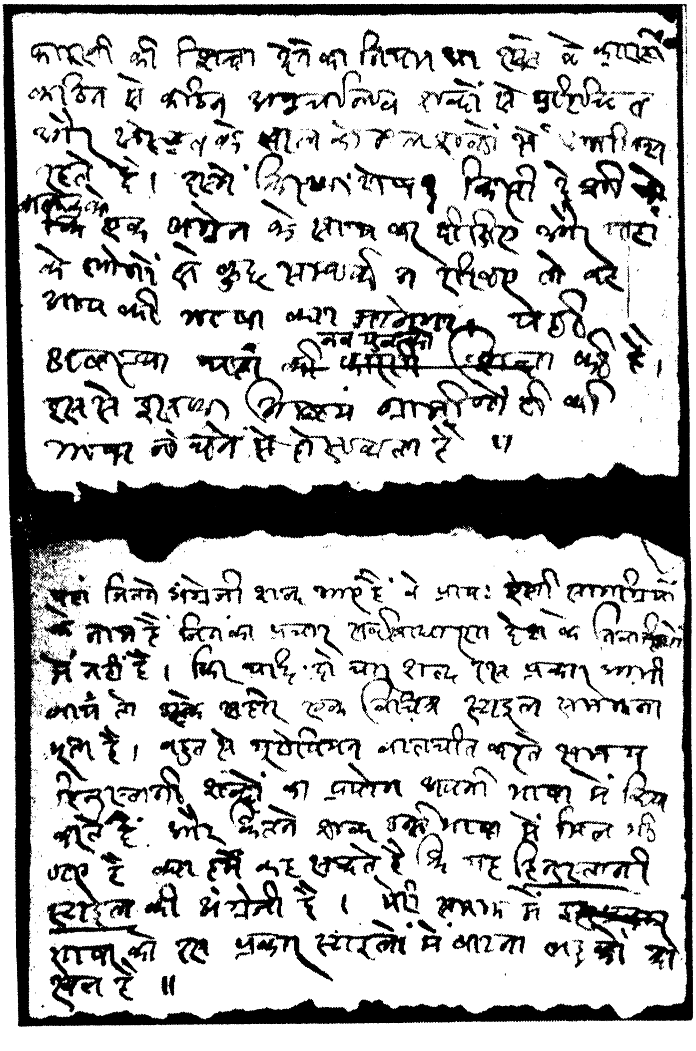
२ (क)



अप्रचलित फारसी शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों को लिखने में कोई पाप नहीं। हां। ऐसे शब्दों को जो बिल्कुल बोलचाल में मिल गए हैं हटाना उचित नहीं। प्राय: देखा जाता है कि फारसी के कठिन और अप्रचलित शब्दों से इस प्रान्त के लोग संस्कृत शब्दों की अपेक्षा अधिक परिचित रहते हैं। (किन्तु यह बात केवल नगरों में पाई जाती है गाँवों में सरल २ संस्कृत शब्दों ही का प्रयोग अधिक होता है।) इसका कारण स्पष्ट है। शिक्षित समाज के लोग Classical language के [illegible] अपनी बोली सुधारते हैं। यहां [illegible]

खत्रीजी की हस्तलिपि का चित्र ('खड़ी बोली का गद्य' का अंश)

२ (ख)



खत्रीजी की हस्तलिपि का चित्र ('खड़ी बोली का गद्य' का अंश)

खड़ी बोली का गद्य

अयोध्या प्रसाद खत्री

१८८७

मुजफ्फरपुर

भूमिका

मैं इस किताब के पहिले भाग में लिख चुका हूँ कि 'खड़ी बोली के व्याकरण में व्रज भाषा छन्द को जगह देना और व्रज भाषा शब्दों को हिन्दी में Poetical License समझना हिन्दी वैयाकरण की, मेरी समझ में, भूल है।' इसी को, सर्व साधारण को दिखलाना और इस पर ध्यान दिलाना, इस : दूसरा भाग : का और इस के पहिले भाग का प्रधान उद्देश्य है।

●

: बिहार-बन्धु, १८वीं नवेम्बर १८८६ से :

"मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री की बनाई और लिथोग्राफी की छपवाई 'पीयूष प्रवाह' की समालोचना धन्यवाद पूर्वक स्वीकार की। समालोचना लिखना बुरा नहीं है। अंगरेजी की जो आज यह उन्नति देखते हो वह इसी समालोचना की बदौलत। और हिन्दी कविता की भाषा जो ऐसी हीन दशा में पाते हो, उसका क्या कारण? भाषा निरी गंदी, निरी गंवारी, व्याकरण के नियमों से बिलकुल विरुद्ध पाई जाती है। शब्दों को वाक्यों को कवि जैसा चाहता है मरोड़ता है, ऐंठता है, पर कोई जरा चूं नहीं करता। कवि की—

[२]

भाषा पर न स्वयम कवि का और न पढ़ने वालों का किसी का ध्यान ही नहीं है। जो समालोचकों के थप्पड़ कवियों को लगते रहते तो हिन्दी कविता की भाषा आज इस शोचनीय अवस्था को कभी न प्राप्त होती।"

: बिहार-बन्धु, १६वीं डिसेम्बर, १८८६ से :

'हिन्दी पद्य की अवस्था शोचनीय है। हिन्दी के प्राचीन कवि अपने समय की भाषा में रचना करते थे, और केवल कविताई पर ध्यान देते थे। भाषा पर उनका कुछ भी ध्यान न था। उनकी रचना का क्यों कर अन्वय होगा, किसी पद का व्याकरण में कौन-सा रूप बताया जायगा, इस का उन को भान ही न था, जैसा वाक्य मुंह से निकला वैसा ही लिख दिया, छन्द के मिलने में जो ओखा जान पडता तो अपना मन मानता ह्रस्व को दीर्घ कर दिया, दीर्घ को ह्रस्व कर दिया, युक्ताक्षर को असंयुक्त और असंयुक्त को यक बना दिया। जो जिसी विभक्ति ने कुछ गड़बड़ किया तो उसे भी उड़ा दिया, स्त्रीलिंग को पुल्लिग और पुल्लिग को स्त्रीलिग, एकबचन को बहुबचन और बहुबचन को एकबचन जैसा जी में आता था करते थे।

जिन को ये कवितायें सुनाई जाती थीं, वे भी आशय के चमत्कार में भूल जाते थे, भाषा की अशुद्धता पर ध्यान ही नहीं देते थे। आधुनिक कवि भी अन्ध परम्परा की लीक पर चले आते हैं। यहाँ तक कि इन्होंने प्राचीन कवियों की पुरानी भाषा का पिंड भी न छोड़ा। अब ये कवितायें लड़कों को पढ़ाना मानो साक्षात उन की बोल चाल बिगाड़ना है! कवियों को बोल चाल की भाषा से कुछ थोड़ा बहुत बहकने की अनुमति : Poetical license :

[३]

हर भाषा में दी गई है, पर कुछ ऐसी अनुमति नहीं है कि कहने को तो अंगरेजी कविता है पर भाषा बिलकुल फ्रान्सीसी देखता, कहने को तो आधुनिक अंगरेजी की कविता है पर जहाँ देखो वहाँ वेल्स या सेल्टिक मुहावरे के गवारपन भरे हुए हैं। यह विचित्रता हिन्दी छोड़कर और कहीं भी नहीं देख पड़ती, **हिन्दी के अंग उर्दू** के कवि भी ऐसे बेलगाम नहीं हैं।'

राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द अपने हिन्दी व्याकरण में लिखते हैं :—

Prosody is omitted, because it is beyond my present aim to suggest the means of reducing the Sanskrit and Arabic rules to a common system, applicable to Vernacular metrical composition in both forms alike.

●

इस : भाग में मौलवी-स्टाइल और यूरेशियन-स्टाइल मुख्य हैं।

उर्दू को मैं हिन्दी का एक स्टाइल समझता हूँ। उर्दू पद्य को खड़ी बोली का पद्य मानता हूँ। यह लोक विरुद्ध है। बहुत कम : परन्तु माननीय : विद्वानों, से इस विषय, में मेरी राय मिलती है।

John Beam's Comparative Grammar of the modern Aryan Languages, page 32—"It betrays therefore a radical misunderstanding of the whole bearings of the Question, and of the whole science of Philology to speak of Urdu and Hindi as two distinct languages."

[४]

हिन्दी प्रदीप, फेब्रुअरी १८८५—

: अथवा शोकावली, पृष्ठ, ६६ :—

"यह कौन कहता है कि उर्दू कोई दूसरी वस्तु है? सच पूछो तो उर्दू भी इसी हिन्दी का एक रूपान्तर है जब हम हिन्दुओं ने इसका अनादर कर इसे त्याग दिया तब मुसलमानों ने इस को दीनता पर दया कर, इसे अपने मुल्क के लिबास और जेवरों से आभूषित कर उसका दूसरा नाम उर्दू रक्खा। तात्पर्य यह कि इस नारी का कुल और गोत्र सदा एक ही रहा, समय २ इस का रंग रूप और भेष अलबत्ता पलटता गया।"

(A. F. Rudolf Haerlive Philological seeretary of the Asiatic society of Bengal's grammar of the Eastern Hindi.)

"Hindi is commonly said to be spoken over an area of more than 248000 square miles and to be the language of between 60 and 70 millions or fully ¼ of the inhabitants of India. This statement is true only in a very limited and special sense. It is true if by Hindi we understand the literary or High-Hindi (including under this term Hindustani or Urdu)."

The area in which Hindi is spoken, occupies the central portion of North India. It extends in the north to the lower ranges of the Himalaya mountain; in the west at a line drawn from the head of the gulf of Kachchh in a north-easterly direction to the upper Satlaj near Simla; in the south to the Narmada river of the Vindhya range of mountains; in the east to a line following the course of the Sankhasi river to its junction

[५]

with the Ganges and thence in a south-westerly direction to the Narmada. The Hindi area is bounded on the north by those of Garhwali, Kumaoni and Naipali; on the west by Punjabi, Sindhi and Gujrati on the south by the Marathi area, and on the east by Oriya and Bengali.

Hindi or High Hindi is merely a modified form of the Braj dialect, which was first transmuted into the Urdu by curtailing the amplitude of its inflexional forms and admitting a few of those peculiar to Punjabi and Marwari; afterwards Urdu was changed into High Hindi. The High-Hindi, as distinguished from the Urdu or Hindustani, is a very modern language; but Urdu itself is comparatively modern. It originated during the twelfth century in the country around Delhi, the centre of the Muhamedan power. It was only in the sixteenth century, chiefly in the reign of Akbar, that Urdu was reduced to a cultivated form. With the extension of the Muhamedan power, its use spread

over the whole of the Hindi area; but it remained the language of those inclusively who were more immediately connected with that power, either in the army or court or the pursuit of learning; it never became the Varnacular of the people. The High-Hindi dates only form the present century. It is an outcome of the Hindi revival under the influence of English Missions and education. Naturally enough, Urdu, the dominant and official dialect, came to hand in this move-

[६]

ment and was Hinduised or turned into High-Hindi by exchanging its Persian and Arabic elements for words of Native origin (more or less purely Sanskrit). Hence Urdu or High-Hindi are really the same language; they have an identical grammar and differ merely in the Vocabulary, the former using as many foreign words, the latter as few as possible.

(Director's Report on the Progress of Education in the N. W. Provinces for 1873-74 (page 138).) "I hope, however, ere long it may be possibe to have a common grammar for both forms of the Vernacular (Urdu and Hindi), and convertible scientific terms."

(Raja Siva Prasad's Hindi Grammar).

It is strange enough that our Vernacular should be constantly expressed in two such diverse characters as the Persian and Nagri, one written from right to left and the other from left to right ; but it is quite unique in having two grammars. The absurdity began with the Maulvis and Pandits of Dr. Gilchrist's time, who being commissioned to make a grammar of the common speech of Upper India made two grammars, the one exclusively Persian and Arabic, the other exclusively Sanskrit and Prakrit. The Maulvis knew nothing of Sanskrit and ignored the Aryan basis of the Vernacular. The Pandits were equally intolerant in

refusing to recognise the semitic after-growth. Hence arose the Persian-Urdu of the public offices, which is unintelligible to the mass of the population, and the almost equally unintelligible pure Hindi of the Prem Sagar. The one is not national enough to be acceptable to all, and the other childishly ignores the circumstances under which Urdu became a language.

[७]

चन्द की हिन्दी : जिस में 'था' और 'है' शब्द नहीं है : और आधुनिक हिन्दी में बहुत अन्तर है। आधुनिक हिन्दी को खड़ी बोली कहते हैं। इसी को मुसलमान उर्दू कहते हैं।

पण्डित जी : ब्राह्मण : बराबर संस्कृत पढ़ते पढ़ाते आये। संस्कृत मृत भाषा : Dead language : है। परन्तु पण्डित जी उसी में शास्त्रार्थ और पद्य रचना करेंगे। सर्व साधारण इन की लिखी पुस्तकें न समझें, यह इन का उद्योग हमेशे रहा। यह समझते हैं कि हमारी जीविका की दृढ़ता इसी में है।

आधुनिक हिन्दी में पहिली पुस्तक लल्लू लाल कवि कृत है। इसके ग्रन्थकर्ता ब्राह्मण और कवि हैं। यावनी शब्दों से पण्डितों को आज तक घृणा है। आप 'प्रेम सागर' की भूमिका में लिखते हैं, "यावनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में यह नाम प्रेमसागर धरा"। इस पुस्तक में गद्य और पद्य दोनों हैं। पद्य ब्रज भाषा है और गद्य की भाषा का नाम मैं नहीं बतला सका। दिल्ली आगरे की जबान में फ़ारसी अरबी के शब्द आते है। इनके खुद लिखने से यह स्पष्ट है। यदि नहीं आते हैं तो 'छोड़ कर' लिखने का क्या प्रयोजन था। जिस किसी को इस में सन्देह हो वह दिल्ली आगरा जाकर वहां की भाषा जांच ले। यदि यह पहिली पुस्तक : और चेहार दर्वेश : हिन्दुस्तानी : अर्थात् पण्डित और मौलवी के बीच की जबान में लिखी जाती और पद्य रचना ब्रज भाषा में न होती तो बहुत उत्तम होता।

लोग फ़ारसी अरबी की जगह संस्कृत शब्द बिठाल देते है परन्तु : Synonyms : (दो वा अनेक शब्दों के व्यवहार में अन्तर) : का कुछ भी विचार नहीं करते हैं। Synonyms की एक पुस्तक James W. Forell की लिखी हुई मेरे पास है। यह पुस्तक १८७३ ई० में छपी थी। इस विषय पर देशी आदमी को ध्यान देना चाहिये।

[८]

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द अपने 'विद्यांकुर' की भूमिका में लिखते हैं :—

"When employed under Mr. William Edwards, in Simla, I wrote, as an adoptation from Chamber's 'Rudiments of knowlege' and first few pages of 'Introduction to the sciences,' two little books in Nagri, called 'Malumat' and

'Bhugol,' for his schools in the Hill states. Mr. Thomson, the then Lieutenant-Governor of the North-Western Provinces, was so much pleased with them that he handed them over to Mr. H. Stewart Reid, the then Director of Public Instruction, to introduce in his village schools. He made them over to his Pandits, who, for the Hindi edition weeded out all the Persian words, giving their place to Sanskrit, and for the Urdu edition in the same way weeded out all the Sanskrit words and substituted Persian and Arabic. This practice of widening

[६]

the gulf between one form of the spoken language and the other, or creating two distinct languages for our Vernacular, lasted about one-third of a century. The Government order No. 175 A, of the 13th June, 1876, has put a stop to such pedantries of Pandits and Maulvies, and a reaction has commenced for the restoration of the common language. There is no doubt that the different shades will remain in the language for ages yet to come. Maulvies will write as many Persian and Arabic words as they know in Persian characters, and Panditjis will persist in introducing as many Sanskrit words pure and uncorrupted as they can in their Nagri Hindu poets will compose in Braj Bhasha and rustics cannot forget at once their different local dialects. There is a saying in India that the language differs every two miles! It is fortunate that it differs so much; but even if it had not differed, patois of the masses, no matter what may be their number cannot be adopted. The state must have a state language understood by the greatest number possible, yet not derided by well educated men of fashion and polished society. If not very elegant, it must be free from the coarseness of vulgar life; and if not admired by either Hindus of Muhamedans, it must not be shunned or detested by any;—I mean the language which many missionaries adopt when writing the varnacular in Roman characters,

although the same gentlemen when writing in Nagri proclaim a crusade against Persian words, as if Nagri were less adopted for them than the Roman.

An attempt is being made to bring out all the elementary class books used in the village schools of these Provinces in this common language, whether written in Nagri or Persian characters."

[१०]

'प्रेम सागर के स्टाइल को लोग अनुकरण करने लगे और उसी स्टाइल को आधुनिक हिन्दी समझने लगे। इस खड़ी बोली के पहिले लिखैये : First writer : यदि राय सोहनलाल अथवा राजा शिवप्रसाद होते तो इतना बखेड़ा न होता।

राजा शिवप्रसाद के स्टाइल और राय सोहनलाल के स्टाइल में कुछ अन्तर है। राजा शिवप्रसाद अब हिन्दी को फारसी अक्षरों में लिखते हैं तो कुछ शब्द बदल देते हैं परन्तु वहुत कम। 'विद्यांकुर' ७८ पृष्ट की पुस्तक है, फ़ारसी अक्षरों हक़ायकुल मौजूदात के नाम से जब इस को लिक्खा है तो ६६ शब्द बदल दिये है और उनकी फ़िहरिश्त किताब के अन्त में लिख दी है। राय सोहनलाल ने scientific terms को भी मौलवी और पण्डित के बीच के स्टाइल में : जिसको 'मैं मुन्शी स्टाइल' और यूरोपियन विद्वान हिन्दुस्तानी कहते हैं : निर्माण किया है। दोनों अक्षरों में एक ही स्टाइल लिखते हैं, शब्द कुछ भी नहीं बदलते, दोनों अक्षरों में पुस्तकों का एक ही नाम रखते है। शुद्ध हिन्दुस्तानी आप ही लिखते है मैं उनके tone और accent के विषय में उनसे नहीं मिलता। राजा शिवप्रसाद का accent राय मोहनलाल से उत्तम है। 'चमके थी' 'खिले था', 'मिले था', खले था इन का : राय सोहनलाल का : निराला accent है, जिसे मैं किताबों में लिखना पसन्द नहीं करता। राजा शिवप्रसाद का फ़ारसी और नागरी अक्षरों में पुस्तकों का भिन्न-भिन्न नाम रखना और किताबों में जुदे-जुदे अक्षरों के कारण जुदे-जुदे शब्दों की फ़िहरिश्त देना, मेरी

[११]

समझ में ठीक नहीं है। हिन्दुस्तानी स्टाइल लिखने के उद्देश्य से यह विरुद्ध है।

●

हिन्दुस्तानी स्टाइल लिखने वालों को ठेठ हिन्दी के शब्दों पर भी ध्यान देना चाहिये।

: हिन्दी प्रदीप, १ जुलाई १८८५ ई० से :

हम समझते हैं सर्व साधारण का कुछ ऐसा मत है कि हिन्दी के बारे में जो कोई कुछ लिखा चाहै उन का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि उस पुराने खुर्राट झगड़े को पहले तै कर लें जो हिन्दी, हिन्दुस्तानी, या बो-उर्दू के बीच उठ रहा है। स्पष्ट है कि हिन्दी और उर्दू का कोरा

लक्षण दे कोई कृतकार्य और सत्य संकल्प न हो सका इसलिये भाषाओं का भेद दर्शक लक्षण लिखने का उद्यम छोड़ हम उनके बोलने वाले कौन और किस ढंग के लोग हैं इस पर ध्यान देते हैं।

आप जो भाषा बोलेंगे वह किसी न किसी सांचे में ढली होगी। तो यह कैसी हो और किस साँचे में ढले इसका तै करना अत्यन्त आवश्यक है। लोग कहेंगे इसका ढलना अधिकतर कुल और जाति से सम्बन्ध रखता है अर्थात् एक ब्राह्मण का लड़का कभी संभव नहीं कि नित्य के बोल-चाल में 'खाकसार को क्या हुक्म होता है' ? इत्यादि के ढंग की फ़ारसी मिली

[१२]

हुई उर्दू बोलै। न यही संभव है कि कोई मुसलमान चाहे वह संस्कृत का बड़ा विद्वान क्यों न हो काशी के पण्डितों के ढंग की भाषा बोलें, पर थोड़ा ही सोचने से यह बात खुल जायगी कि कुल जाति या मज़हब का बहुत कम असर भाषा पर पहुँच सकता है। इस देश के मुसलमानों ही की भाषा को लीजिये हम समझते हैं वह आदमी निस्सन्देह मुसलमान है जो महम्मद को खोदा का रसूल मानता हो नित्य नमाज़ पढ़ता हो रोज़े रहता हो अर्थात् धर्म सम्बन्धी सबूत जहां तक काम दे सकता है वहां तक वह अवश्य मुसलमान है। अच्छा तो अब लखनऊ के एक मुसलमान को लीजिये और उसकी भाषा पर ध्यान दीजिये देखिये कैसी लच्छेदार शीन काफ से जड़ी हुई फसीह उर्दू बोलता है। तब ढाका और मुर्शिदाबाद के प्रान्त के एक बंगाली मुसल्मान को लीजिये और उसकी भाषा को भी कान खोलकर सुनिये सुनते ही चट आप कह उठेंगे यह तो न फारसी है न उर्दू बल्कि शुद्ध बंगला है। कलकत्ते की चीना बाजार में हिन्दुस्तानियों के घर के तोतो को भी कभी-कभी चीनियों की बोलियों का अनुकरण 'च्यां २ म्यांव २' करते सुना है तब आदमियों की कौन कहे। इसलिये यही बात ध्यान में आती है कि कुल जाति या धर्म नहीं बरन जैसे लोगों में कोई रहेगा वैसे ही उसकी भाषा बदल कर हो जायगी या कभी-कभी अंगरेजी संस्कृत या फ़ारसी आदि भाषाओं का प्रबल अभ्यास भी भाषा पर असर करता है। जिस भाषा का जो अधिक अनुशीलन किये रहेगा वही भाषा अपने मामूली बोलचाल में बोलेगा। अर्थात् पहले समाज का असर भाषा पर होता है फिर शिक्षा का। पर भाषा का पूरा-पूरा जोर देखने के लिये उन लोगों पर ध्यान दीजिये जो

[१३]

एक ढंग के 'शून्य भीति' है अर्थात् जिन पर किसी तरह की शिक्षा मात्र ने अपना रंग नहीं जमाया है और जो घर में तथा घर के बाहर छोटे-बड़े सब से एक तार की अपनी सहज भाषा बोलते हैं। सच पूछिये तो ऐसी भाषा से बढ़कर संसार में कोई दूसरी मीठी भाषा नहीं हो सकती। इस कारण अगर ठेठ हिन्दी शब्दों की आप को खोज है तो गत काल के या वर्त्तमान समय की नपी-जोखी प्रायः एक ही ढर्रे पर चलने वाली कवियों की वाणी से लेकर सहस्रों धार से चलती हुई सजीव ग्रामीण भाषा को देखिये—यदि आप यह कहें कि शिक्षा के अभाव से ऐसे लोग असभ्य या अश्लील शब्द अपनी बोल-चाल में बहुत भरते हैं तो साथ ही इसके यह भी सोचना चाहिये कि कितने हजारों-लाखों शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनके पुष्ट भाव या अर्थ-

गौरव को देख चकित हो हो जाना पड़ता है। कदाचित आप को यह सन्देह हो कि ग्रामीण भाषा से हमारा अभिप्राय निरे अपढ़ और नीच लोगों की बोलचाल से है तो इस प्रश्न की मीमांसा के उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि यदि पाठकजन टुक ध्यान दे सोचेंगे तो यह बात उनके मन में सहज ही आ सकती है कि जिसको वे मातृ भाषा कहते हैं वह उससे भिन्न है। जिसको घर के बाहर बोलते है अर्थात् आपस के बोलचाल की भाषा यद्यपि प्रिय से प्रिय मित्र के साथ प्रेमालाप में काम आती हो फिर भी वह भाषा एक तरह की बनावट से भरी हुई जँचती है। तात्पर्य यह कि जैसा कुछ सरल भाव और मिठास मातृ-भाषा मे भरा है बाहर की सभा या साधु भाषा मे आ ही नहीं सकता। इस समय भाषा से हमारा प्रयोजन कोरी उर्दू हो से नहीं है। किन्तु जिसका

[१४]

नाम : Provincial dialects : भिन्न-भिन्न स्थानों की भाषा है। और जो लोगों के घर के भीतर बोली जाती है और जिस भाषा का बरताव नौकर-चाकर के साथ किया जाता है उसकी सहज गति या प्रवाह होने के कारण उसमें एक विचित्र लालित्य माधुर्य या कोमलता आ जाती है और जिसमें अब तक हजारों लाखों अति पुष्ट अर्थ के द्योतक हिन्दी शब्द भरे हैं और जो दुर्भाग्य से मनुष्यों की सभा मंडली से निकालकर अलग फेंक दिये गए हैं—इस अन्याय का क्या कारण है ? कारण केवल यही जान पड़ता है कि हम लोगों के बीच बिना बोलाये ही एक पाहुना आ घुसा है और उसी का नाम उर्दू है। माना कि स्त्रियों तथा दास-दासी इत्यादिकों की भाषा सदा से सहज और 'प्राकृतिक' होती चली आई है पर समाज के दो भाग होते हैं एक पढ़े हुओं की भाषा दूसरे कम पढ़े या अपढ़ लोगों की भाषा इन दोनों में आजकल विचित्र भेद देखलाई देता है। पूर्व काल में भी भेद था पर इस तरह का नहीं या अगर वे पढ़े लोग प्राकृती बोलते थे तो इसको भी संस्कृत का बच्चा ही कहना चाहिये।

इन दिनों कोई कोई कायस्थ महाशय कुछ लोगों से तो अपनी जन्म भूमि की भाषा बोलते हैं और बाहर दूसरे लोगों से कुछ और ही चीज बोलते हैं और बिचित्र भद्दे फारसी शब्द मिला उर्दू बूकते हैं जिन पर उन लोगों में जिनकी निजकी भाषा उर्दू है बिना हंसे नहीं रहा जाता। ऐसों के सम्बन्ध में यह पुरानी कहाबत सुघटित होती है—'कौवा चला हंस की चाल अपनी भी भूल गया', 'आप जो पुजैं दयोहरा भूत पुजनी जोय,

[१५]

एक घर में दो मता कुशल कहां से होय।' जो बात हमारे कोई-कोई कायस्थ महाशयों के सम्बन्ध में ठीक है वह थोड़ी-थोड़ी सब पर घटती है।

फिर इस बात पर भी तो ध्यान देना चाहिये कि समाज का समाज एक बिचित्र रास्ते पर चले इसका कोई बड़ा भारी ही कारण होना चाहिये। इस बड़े कारण को खोजने के लिये आप को दूर न जाना होगा। बहुत दिन की बात नहीं है कि पढ़े लिखे लोगों के समाज में जो ठेठ हिन्दी शब्द बोलता था वह गंवार और दिहाती का खिताब पाता था। अधिक नहीं २५ वर्ष पहले के हिन्दी के इतिहास पर ध्यान दीजिये हरिश्चंद्र आदि के पूर्व

हिन्दी की क्या दशा थी. और जब उन्होंने अपना बहुत सा बित्त और मानसिक शक्ति को घर में मिलाय बड़े यत्न के उपरांत मर-मर कर लोगों को हिन्दी के पढ़ने का शौक़ दिलाया तब क्या दशा थी और अब क्या है। सच पूछिये तो इस थोड़े समय में हिन्दी की कुछ कम विजय नहीं हुई। वे ही सब शब्द जो किसी समय गंवारों की भाषा समझे गये थे सो अब काल चक्र के हेर फेर में अधिकारशाली पढ़े लिखे लोगों के बर्ताव में फिर आने लगे बरन ठेठ से ठेठ हिन्दी शब्दों की खोज लोगों को है और वह ठेठ हिन्दी हमारे ग्रामीण जनों ही के कंठ का आभरण है। सच है जिस पत्थर को म्यामारों ने बेकाम जान फेंक दिया वही पीछे कोने का सिरा हुआ। और भी, हम शब्दों को ठीक सिक्के की तरह मानते है जैसा बाजार में रुपया आदि का कुछ मोल होता है वैसा ही मानसिक वाणिज्य अर्थात् एक मनुष्य के हृद्गत भाव को दूसरे के मन में पैठाना

[१६]

शब्दों ही द्वारा हो सकता है। यदि ऐसा है तो सिक्के घिस भी तो जाते हैं ! मुसलमानों के समय के सिक्के अनोखी वस्तु को जागा कर रखनेवालो ही के सन्दूक ही में मिलेंगे बाजार में नहीं चलते। प्रयोजन यह कि ठेठ हिन्दी के शब्द हम लोगों के काम में जो लाये जाते हैं सो इसके बदले कि गंवारीपने का बू उनसे आवे एक बिचित्र लहलहापन और पुष्टता उनमें भरी हुई पाई जाती है और आप निश्चय जानिये बहुत जल्द ऐसे ही शब्दों की पूरी विजय होगी।

●

फ़ारसी अरबी के शब्द कुछ न कुछ हिन्दी में अवश्य आयंगे। अंगरेजी राज्य होने से, अंगरेजी भाषा की शिक्षा पाने से, अंगरेजों की निर्मित वस्तुओं का इस देश में प्रचार होने से अंगरेजी शब्द भी हिन्दी में अवश्य आयंगे। यह इतिहास की बात है। मुसलमानों के आने से फ़ारसी अरबी, और अंगरेजों के आने से अंगरेजी शब्द हिन्दुस्तान की कुल भाषाओं में आये हैं।

"The whole seven languages may be thus grouped, the left hand indicating the Arabic pole so to speak, and the right hand the Sanskrit, and the position of the languages on the page their degree of proximity to the respective poles.

Punjabi	Hindi	Oriya
Sindhi Gujrati		Bengali Marathi

(John Beam's Comparative grammar of the modern Aryan languages of India.)

●

[१७]

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द अपने इतिहास तिमिर नाशक, पहिले हिस्से, की भूमिका में लिखते हैं :—

"I may be pardoned for saying a few words here to those who always urge the exclusion of Persian words, even those which have become our house hold words, from our Hindi books, and use in their stead Sanskrit words, quite out of place and fashion, or those coarse expressions which can be tolerated only among a rustic population. The sister presidencies will sympathize with us when they remember that we are not blessed like them in having the same language and character for the court and the community. Our court language is Urdu, and the court language has always been regarded by all nations as the most fashionable language of the day. Urdu is now becoming our mother-tongue, and is spoken more or less and well or badly, by all in the North-Western Provinces. If we cannot make the court character, which is unfortunately Persian, universally used to the exclusion of Devanagri, I do not see why we should attempt to create a new language. Persian words such as Atish, Maruf, Shitab, Zamboor, Sardar, Koh, &c., have been used by our first Hindi author (as I at least regard him) Chand the famous bard of Prithiraj; and I think it is better for us to try our best to help the people in increasing their familiarity with the court language, and in polishing their dialect, than to make them strangers to the courts of the districts and ashamed when they talk before the higher classes."

: अवध अखबार, १ फेब्रुअरी १८८७ ई० से :

चार बजे शाम का वक्त है, हम दिन भर की रियाजत और दर्दसरी के बाद अपने **कमरे** में एक **कोच** पर लेटे हुए आराम कर रहे हैं और **चुरुट** पीते जाते हैं। चंद अहवास और

[१८]

एक ताजावरिद मेहमान जो कल सुबह दोखमत होने वाले हैं 'अवध अखबार की एक खत कितात पर जिस का उनवान' उर्दू जवान में अंगरेजी अलफाज है, वहस करके दिमाग़ चाटे जाते हैं। हम कहते हैं कि उर्दू जवान में अंगरेजी अल्फाज़ जरूर शामिल होते जायँ इस वासते उनके समझने की कोशिश करनी चाहिये। वह कहते हैं कि अंगरेजी का एक लफ़ज उर्दू के इस्तेमाल न करना चाहिये। मैं कहता हूँ कि वेगर अंगरेजी अलफ़ाज के बोले हुए इस जवान में चारा नहीं है। वह कहते हैं कि हम नें अहद कर लिया है कि कभी अंगरेज़ी लफ्ज़

न बोलेंगे। मैं कहता हूँ कि बहुत वेहतर। आप के अहद में मैं भी शरीक हूँ और इन्शाह अल्ला ताला! कल सुबह से एक लफ्ज अंगरेजी का उर्दू में न मिलाऊंगा। अब इस बहस में ग्यारह बज गये और हम लोग आब व गिजा से फराग़त हासिल करने के बाद यह अहद करके सो रहते हैं कि कल सुबह से अंगरेजी का कोई लफ्ज उर्दू तहरीर और न तकरीर में इसतेमाल करगे और शख्स ऐसा करेगा उसका मुंह बंद कर देंगे या उस के हाथ से कलम ले कर तोड़ डालेंगे। दो एक घंटे सोकर सात बजे के करीब बेदार ए (?)

हम । कोई है ?

आदमी । जी।

हम । क्या बजा है ?

आदमी । हजूर, अंधेरे में मुझ को न मालूम होगा, कहिये घड़ी उठा लाऊँ।

हम । अच्छा।

[१६]

आदमी । कौन सी घड़ी लाऊँ, टाइम पीस या क्लौक ?

हम । महज़ वक्त बताने वाली।

आदमी । उसका हाल मुझको मालुम नहीं है।

हम । अभी दो घड़ियों का नाम लिया है उस में से वह ला जिसका पहिले नाम लिया था।

आदमी । अब मुझे याद है कि किस का नाम पहिले और किस का नाम बाद लिया था ?

हम । अच्छा, फिर नाम ले।

आदमी । आप मुझसे जिस घड़ी को कहिये वह ले आऊँ।

हम । अच्छा, जाने दो, एक वह ले आवो तमाकू लपेटा हुआ पत्ता जो हम पीते हैं।

आदमी । तम्बाकू का पत्ता इस वक्त कहां से आय ? दूकानें खुलने दीजिये।

हम । अबे, वह जो वक्त : ऐ तावा ! सन्दूक़चा : में रक्खे हुए हैं।

आदमो । हजूर सन्दूक़चा में न छुऊंगा। उस में औवल तो कुलक़ लगा होगा, दूसरे, अगर खुला हो तो उन में रुपया पैसा रक्खा होगा।

हम । भाई वह सन्दूकचा नहीं, दूसरा लकड़ी का खाना ऐसा जिस में तम्बाकू की भिडियां रक्खी हुई हैं जिन को हम हुक्के के बदले पीते हैं और तुम लाते हो।

आदमी । साहब, हमको पहेलियां बूझना नहीं आता है, साफ़-साफ़ कहिये।

हम । अच्छा मुंह धोने को पानी और मिस्वाक ले आवो।

[२०]

आदमी । : नीम की मिस्वाक और पानी रख कर : लीजिये।

हम । यह नहीं। अंगरेजी मिस्वाक जिस में बाल ऐसे लगे होते हैं।

आदमी । पल्लू की मिस्वाक वह कहां है ? यह नीम की मिस्वाक तो अपने लिए लाया था, वर्ने यह भी इस वक्त नहीं मिलती।

हम । नाश्ता के लिये वलायती टिकियां और मुफतिर ले आव।

आदमी । दूसरी क्या चीज आप ने बताई ।

हम । वह पानी जो हम पीते हैं, छाना हुआ ।

आदमी । फ़िल्टर का पानी ?

हम । हां, हां, भाई ।

आदमी । : डेवढ़ी पर जाकर : मामां, वलायती टिकियां नाश्ते के लिये दे जाव ।

मामां । कह देना वलायती टिकियों के लिये आज आदमी लनडन भेजा जायगा ।

आदमी । हज़ूर, मामां ने कहा है कि वलायती टिकियां नहीं हैं ।

हम । कहना वही मामूली नाश्ता जो आता था भेज दो ।

आदमी । : थोड़ी देर के बाद आकर : हज़ूर बिस्कुट दिये हैं ।

हम । हां, यही मांगते थे ।

आदमी । : आपस में : आज मियां की तबियत कुछ बहक गई है । अजब २ बातें करते हैं । अभी कहा था कि वलायती टिकियां ले आव

[२१]

और जब कई मर्तबे चक्कर खाकर मैं बिस्कुट ले आया तो कहने लगे कि हां, यही मांगते थे ।

हम । : बाहर आकर : यहां आव ।

आदमी । जी ।

हम । गाड़ीवान को बुलालाव ।

आदमी । गाड़ीवान आज छकड़ा ले कर बाहर गया है ।

हम । वह नहीं, दूसरा गाड़ीवान जो घोड़ों की गाड़ी हांकता है ।

आदमी । क्या कोचवान को बुला लाऊँ ?

हम । हां ।

आदमी । : अस्तबल में जाकर : अरे भाई गाड़ीवान, चलो तुम को मियां बुलाते हैं ।

कोचवान । गाड़ीवान तुम और तुम्हारे बाप ! हम शरीफ आदमी हैं, बग्गी हाँकने से गाड़ीवान थोड़ा हो जाउंगा ?

आदमी । अरे ख़फ़ा न हो, आज यह ख़िताब मियाँ ने तुमको दिया है । वहां चलकर देखो तो कैसी वहकी-वहकी बातें कर रहे हैं ।

कोचवान । कहिये हज़ूर ।

हम । एक छोटी गाड़ी दो पहियोंवाली ले आव ।

मेहमान । हजरत नौ बजा चाहते हैं । रेल का वक्त आ गया है । अब स्टेशन जाने की जल्दी कीजिये ।

हम । लाहौलवला कुवत ! तुम ने तो आज आफियत तंग कर दी और आख़िर वही किया जो हम कहते थे ।

[२२]

मेहमान । क्यों ? क्या ?

हम । कोई अहद किया था ?

मेहमान । हाँ, तो फिर ?

हम । मैं आज सुबह से हैरान वो परेशान हूँ । न तो अभी तक मुँह धोआ है, न नाश्ता किया न कंघी, न कपड़े बदले । जो काम करना चाहता हूँ वह अहद माने होता है ।

मेहमान । हाँ ।

हम । भाई जान, मेरी आदत थी, सुबह को उठ कर एक चुरुट पीता था, ब्रुश से दाँत साफ़ करता था, बाद उस के दो एक बिस्कुट खाकर नाश्ता करता था, पानी में हमेशा फ़िलटर का पिया करता हूँ । इस सब चीजों को अजब-अजब तरकीबों से मैंने बताया और तबियत पर निहायत ज़ोर देकर तर्जमा करना चाहा मगर कुछ न हुआ आदमी अपने दिल में कहता होगा कि मियाँ को आज, ख़ोदा जाने क्या हो गया है ? बिस्कुट के बदले मैंने वलायती टिकियाँ तलब की, मामां ने जबाब दिया कि लन्डन को आदमी भेजा गया है ।

मेहमान । : क़हक़हे लगा कर : ऐ ! लाहौलवला कुवत ! तोबा ! तोबा !

हम । तुम ने सारी कैफ़ियत सुनी ही नहीं, वरना हँसते २ लोट जाते ।''

०

[२३]

: हिन्दी प्रदीप १ जुलाई सन् १८८५ से :

भाषाओं का परिवर्तन

यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि किसी भाषा पर प्रभुत्व होना या उस्से अच्छी तरह परिचित हो जाना तभी लोग मानते हैं जब कि सीखनेवाला उसी भाषा में सोच सके अर्थात् चित वृत्ति उसको मनन करने के विषयों को उसी भाषा के ढंग से ग्रहण करै—इस्के मानने में किसको इन्कार होगा कि हर एक भाषा के ढंग निरालेही हैं दो भाषा व्याकरण की रीति पर कुछ मिलती भी हो परन्तु वे चीज़ें जिनको 'महाबरे' कहते है कभी नहीं मिल सक्ते और यही माहाविरे ही हर एक भाषा की जान हैं—हिन्दी और अंगरेज़ी ही को लीजिये इन दो भाषाओं में थोड़ा-थोड़ा कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों का तो भेद हुई हैं किन्तु बड़ा भारी अन्तर मुहाविरों की निराली चाल का है जहाँ कहीं इन मुहाविरों की कोई ग़लती सुनने में आती है तो वह कान में चट खटक जाती है यह लोग कदापि न समझें कि मुहाविरे अंगरेज़ी ही में है और जब उधर आक्षेप होता तो "राधा बाजार अंगरेज़ी" या "बाबुओं की अंगरेज़ी" इत्यादि शब्द तंज जान है अर्थात् रोज मर्रे के काम में लोग उसे वर्तते हैं और पुष्ट रीति पर उस्की स्थिति बनी रहती है तब तक नये-नये मुहाविरे नित्य उस्में बनते ही जायंगे—सृष्टि के चेतन पदार्थों का जो नियम है कि वे कभी एक सां नहीं रहते वरन दिन प्रति दिन परिवर्तन के सान पर चढ़ते ही जाते हैं यह नियम भाषा

[२४]

के सम्बन्ध में बहुत पूरी रीति पर लगता है क्योंकि कुछ ऐसा मालूम होता है कि रुधिर और और अस्थि मनुष्य के शरीर से उतना निकट सम्बन्ध नहीं रखते जितना उनकी भाषा रखती है— और इसी कारण बड़े से बड़े पण्डित के आगे कोई अशुद्ध संस्कृत शब्द बोलिये तो वह इतना न खटकेगा जितना एक सामान्य से सामान्य बे मुहाविरे हिन्दी शब्द कान को चोट पहुंचावेगा। क्यों कि संस्कृत अब बोल चाल की भाषा न रह गई। बिचार कर देखिये तो जो हिन्दी हम आज कल बोलते हैं वह पहले क्या थी और अब क्या है—अब फ़ारसी उर्दू शब्द इसमें मिलते जाते हैं क्योंकि अब आप के बड़े-बड़े प्रमाणिक हिन्दी काव्यों में फ़ारसी अरबी के शब्द ग्रहण किये तो हमारे और आप के निकाले वे सब शब्द जो हमारी भाषा के नस में अन्तःप्रविष्ट हो रहे हैं क्यों कर निकल सकते हैं। बलिक इस में बिरुद्धता दिखलाना वैसा ही है जैसा किसी वेग गामिनी नदी के प्रवाह को अकेले एक हाथ से रोक कर उलट देने का यत्न करना है। जिस तरह के शब्द सर्व-साधारण अपनी भाषा में प्रचलित कर लेते हैं या जिस तरह के शब्द अपने नित्य के बोल-चाल से लोग निकाल कर फेंक देते हैं उस पर आप को कुछ भी अधिकार नहीं है आप मनुष्यों की भाषा तभी बदल सकते हैं जब जुलू या हबशी की सूरत का कोई आदमी इन देशों में पैदा कर सकें या उस से भी बढ़कर कोई दूसरा प्राकृतिक अनर्थ जो सर्वथा प्रकृति विरुद्ध है कर सकें क्योंकि यह कैसे संभव है कि प्रबल काल चक्र अपनी निशानी सब चीजों पर न छोड़ जाय। मुसलमानों के अत्याचार का फल जैसा हम अपनी

[२५]

रीति रसम सामाजिक व्यौहार अपनी और अपने यहां की स्त्रियों की दशा सब में पाते हैं तब यह क्योंकर हो सक्ता है कि मुगलों की भाषा का असर हमारी भाषा में न हो। सोचिये कि जिस हिन्दी को हम बोलते हैं वह कितने हज़ार वर्ष में घिसते २ करोड़ों टक्करें खा कर और न जानिये कौन २ सी मुसीबतें झेलकर न मालूम किसका २ जमाना देख भाल, आज हमारे बोल चाल के काम में आ रही है। यदि प्राकृत को भी हिन्दी ही मान लीजिये तो देखिये कि आज-कल की हिन्दी से और चंद या पृथ्वीराज के समय की हिन्दी से और चंद के समय की हिन्दी से और कालिदास, भवभूति प्रभृति कवियों के समय में भी संस्कृत जैसी उस के नाटकों में पाई जाती है केवल विद्वानों ही की मण्डली में बोली जाती थी और वे लोग भी कवित्व शक्ति के प्रकाशक गम्भिन शास्त्रार्थ के बाद घर जाते रहे होंगे तो नौकरों में या लड़केवालों और स्त्रियों में : या सृष्टि: स्रष्टुराद्या : के जोड़ की बड़े धूम धाम की संस्कृत न बोलते रहे होंगे—जमा वेदकी संस्कृत का व्याकरण व्यास, बाल्मीकि तथा कालिदास आदि कवियों की संस्कृत के व्याकरण से कुछ पृथक है वैसा ही नाटकों की प्राकृत का व्याकरण चंद आदि की प्राकृत से विभिन्न है अर्थात् जो एक समय के विद्वानों की साधु भाषा थी वही किसी पूर्व समय के बे पढ़े लिखे लोगों की भाषा रही और इस अदल बदल में एक बात सदा ध्यान देने लायक है कि भाषा का परिवर्त्तन शब्दों पर इतना निर्भर नहीं है जितना उसके व्याकरण सम्बन्धी विषयों पर या मुहाविरों के अदल-बदल होने पर अर्थात् नये शब्दों के भरती होने से कुछ डर

[२६]

की बात नहीं है बल्कि पढ़े-लिखे लोग या सर्व साधारण उन शब्दों को अपनाकर मान लें तो भाषा और भी पुष्ट हो जायगी—फ़ारसी में देखिये तो यही हाल है अँगरेज़ी में देखिये तो यही हाल है पृथ्वी की और-और भाषाओं में भी यही नियम पाया जाता है कि दूसरी २ भाषा के शब्द को बेधड़क अपना कर लेते हैं जैसा कोई किसी लड़के को गोद ले वैसा ही वह शब्द उसी भाषा का होकर रह जाता है एक दूसरी विचित्र बात यह भी है एक भाषा का शब्द जब दूसरी भाषा में जाता है तो बहुधा अपने शुद्ध रूप में कभी नहीं रहता और जब ऐसा अशुद्ध शब्द भी दूसरी भाषा का किसी भाषा में अच्छी तरह मिल जाता है तो फिर उसके शुद्ध करने का प्रयत्न भी व्यर्थ ही है क्योंकि बोलने वालों के मन या ज़बान पर जो एक बार चढ़ गया वह कभी निकल नहीं सकता।

भाषाओं के इतिहास में आप हिन्दी की दशा देख यह मत समझ लीजिये कि भाषा की सूरत बदलने के लिये विदेशी भाषा के साथ टक्कर खाना जरूरी बात है—ऐसा ख्याल करना। भूल है कि अगर विदेशियों की भाषा के साथ यह भाषा टक्कर न खाये होती तो शुद्ध रीति पर बनी रहती क्यों कि वेद की संस्कृत को नाटक और काव्यों की संस्कृत से किसने उतार दिया या संस्कृत को प्राकृत के रूप में किस विदेशी भाषा के साथ टक्कर खाने ने बदल दिया। और फिर भाषा की बाहरी आकृति पर विदेशियों का कुछ असर पहुँच सकता है पर उसके भीतरी नियमों को तिलभर भी खसकाना किसी की सामर्थ में नहीं है। हमने ऊपर कहा कि भाषा भी

[२७]

संसार की तरह चैतन्य सृष्टि का नियम मानती है। इस कारण जैसा पीटने से गदहा घोड़ा नहीं हो सकता उसी तरह बाहरवालों का सम्पर्क भी कुछ बहुत हानिकारक नहीं हो सकता और फिर भाषा के सम्बन्ध में : हानि : शब्द का पूरा २ तात्पर्य तै करना बड़ा कठिन है क्योंकि परिवर्त्तन के बीज तो भाषा में आप ही आप भरे हैं। क्यों संस्कृत से प्राकृत हुई और प्राकृत से वर्त्तमान हिन्दी ? हम लोगों का केवल इतनाही कर्तव्य है कि क्या-क्या अदल-बदल हुये हैं। अभेद्य दुर्ग सदृश पाणिनि के व्याकरण के आगे हिन्दी का व्याकरण छोटी सी फूस की झोपड़ी है। यह तो प्रगट है कि अब हमें उतने बड़े व्याकरण की आवश्यकता न रह गई। एक वह समय था कि अनेक जंजालों से भरे हुये पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि के सूत्र वार्तिक भाष्य में एक मात्रा का भी हेर-फेर जाने पर एक बड़ी भारी इमारत को ढहाकर फिर से खड़ी करना था और इसी का परिणाम है यह हुआ कि हमारे यहाँ का व्याकरण ऐसा झंझट से भरा हुवा शास्त्र हो गया जैसा पृथ्वी के किसी कोने में न हुआ होगा। सच पूछिये तो दो गाड़ी के बोझ की पुस्तकें शेखर, मंजूषा, कैयट आदि बड़े-बड़े जगड़बाल जो रचे गये उनमें और है क्या ? सिवा इसके कि कीचड़ में पांव बोर फिर धोओ एक बड़े यत्न और प्रयास से एक बने बनाये सुन्दर, मनोहर महल को तोड़-फोड़ छिन्न-भिन्न कर पीछे पछताय फिर उसी को बनाया है। इन्हीं बिफल चेष्टाओं में व्याकरण इतना बड़ा शास्त्र हो गया जिसमें नवीन और प्राचीनों का झगड़ा बढ़ते २ उमर बीत जाती है कोरे के कोरे मूर्ख रह

[२८]

जाते हैं। ऐसी सरल भाषा हिन्दी में इस सब खट पट का अब कुछ कामही न रह गया पर क्यों ऐसा हुआ यह तो आदमी तभी तै कर सकेगा जब और भी सैकड़ों हज़ारों : क्यों : का उत्तर दे सकेगा जैसा क्यों मनुष्य संसार में पैदा होता है ? क्यों फिर यहां से चला जाता है ? इत्यादि २।

अब एक प्रश्न इस के सम्बन्ध में और उठता है कि यदि भाषा की धारा ऐसे अपरिवर्तनीय ढंग पर इतने जोर-शोर के साथ बह रही है कि हम उसमें चूं भी नहीं कर सकते तो किसी समय के अच्छे-अच्छे लेखकों का क्या दबाव या असर उस पर होता है ? इस प्रश्न का उत्तर सहज में मिल सकता है। पुरानी हिन्दी ही को लीजिये पुराने ठेठ हिन्दी शब्दों को कोई अच्छी तरह सोच बिचार कर लिखने वाला फिर से जिला कर समाज में प्रचलित कर सकता है। अपनी निज की भाषा के काम काज शब्दों को मर जाने या मृतक प्राय हो जाने से बचाना अच्छे लेखकों का काम है। बाहरी भाषाओं के शब्दों को अपना सा कर डालना जिससे भाषा दिन प्रति दिन अमीर होती जाय यह भी एक बड़ा काम है और सबसे बड़ा काम अपनी भाषा में के विषयों को दूना चौगुना करते जाना अर्थात् जो २ विषय भाषा में पहले कम थे उनको जिला देना और जो विषय कभी थे ही नहीं उनको बाहर से लाय भरती करना–– इन सब का असर यह होगा कि भा ा की नमन शक्ति बहुत बढ़ जायगी अर्थात जिस तरह के विषय पहले उससे बाहर समझे जाते थे वे जल्द उसकी पहुच के भीतर आ

[२९]

जायगे। हमारे देखते ही देखते अंगरेज़ी मेमों ने हिन्दुस्तानी गहनों का पहिनना आरम्भ कर दिया जैसा सोने की चूड़ियां जड़ाऊ कंठ आदि। इसी तरह यदि हम अपनी मातृ भाषा को अंगरेजी भाषा के आभूषण में आभूषित करें तो क्या क्षति है ? ऐसे प्रश्नों की मीमांसा में अभी अनेक पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष रह गये हैं जिनका बिचार हम दूसरे अंक में करेंगे आगे के अंक में : ग्रामीण शब्दों : के गुण प्रगट किये जायंगे।

०

मुंशी टोडर मल ने, अकबर के समय में, दफ्तर की जबान और अक्षर फ़ारसी हो जाने का हुक्म दिया।

अमीर खुसरो लिख गया है कि मुसलमानों को "हिन्दवी" का सीखना बड़े फ़खर का बाइस था। मौलाना दाऊद ने सन् १३७० ई० में एक हिन्दिवी पुस्तक जिसका नाम चन्दायन था जौनाशाह खांजहां के हाल में बनाया था। हिन्दू फ़ारसी नहीं पढ़ते थे इसी लिये बादशाही बड़े उहदे नहीं पाते थे। पहिले पहल सिकन्दर लादी के समय में हिन्दू ने जिसका तखल्लुस बर्हमन था फ़ारसी किताब बनाई और विद्यार्थियों को पढ़ाई। अकबर के वक्त में इसका चरचा बहुत फैला। माल का काम सब हिन्दी में होता था। टोडरमल ने देखा कि जबतक हिन्दू, बादशाह की ज़बान न सीखेंगे, कभी बादशाही बड़े-बड़े उहदे न पा सकेंगे, हुक्म दिया कि सब दफ्तर फ़ारसी हो जाय! इतिहास तिमिर नाशक, तीसरा खण्ड, पृष्ठ ११२ : !

[३०]

लार्डबेनटिक ने सन् १८३४ ई० में अदालतों में फ़ारसी के बदले देशी बोली और अक्षरों में काररवाई होने की आज्ञा दी। परन्तु बिहार और उत्तर पश्चिम प्रदेशों की अदालतों में बोली तो बदल दी गई, पर अक्षर जों के तों फ़ारसी ही के जारी रहे। उर्दू में ऐक्ट सन् १८३३ ई० से गेजेट सन् १८३५ ई० से हर प्रेसिडेन्सी में, कोहनूर अखबार लाहौर १८५० ई० से निकलने लगे।

प्रेमसागर सन् १८६६ ई० छपा, और इसका स्टाइल बोल चाल की ज़बान में न होकर संस्कृत सदृश मृत भाषा सा हुआ, इसी लिये चेहार दर्वेश के स्टाइल का नाम उर्दू और प्रेमसागर के स्टाइल का नाम आधुनिक हिन्दी : खड़ी बोली : पड़ गया। एक ही शख़्स जब फ़ारसी अक्षरों में, एक ही विषय की पुस्तक को लिखता है, फ़ारसी अरबी के शब्दों को, जहां तक उस से बन पड़ता है और देवनागरी अक्षरों में, संस्कृत शब्दों को, काम में लाता है। सन् १८७६ में गवर्नमेन्ट ने, पण्डित स्टाइल और मौलवी स्टाइल के बीच में, 'हिन्दुस्तानी' : जिसको मैं मुंशी स्टाइल कहता हूँ : में किताबें लिखने की आज्ञा दी परन्तु बहुत कम आदमियों ने इस पर ख्याल किया।

[३१]

स्टाइल का ख्याल नहीं हुआ इसीलिये ज़बान समझ में नहीं आई। उर्दू को अन्य भाषा, और व्रज भाषा काव्य को हिन्दी पद्य समझने लगे। व्रज भाषा काव्य पढ़कर लोग हिन्दी के पण्डित और आचार्य्य समझे जाते हैं।

बाबू हरिश्चन्द्र : जो खड़ी बोली पद्य के विरोधी हैं : ने १८५० के सितेम्बर में जन्म ग्रहण किया। यह हिन्दी के आचार्य समझे गये। इन्होंने लल्लू लाल कवि से हिन्दी का चार्ज ले लिया।

१६ वर्ष की अवस्था में 'कविवचन सुधा' पत्र निकाला जो हिन्दी का पहिला अखबार समझा जाता है और अभी तक जारी है। इसके सिवा कई पत्रिका और पुस्तकें लिखीं। 'काश्मीर कुसुम' नामक पुस्तक के अन्त में उनकी छापी हुई और लिखी हुई पुस्तकों की संख्या ६५ लिखी हुई है। सन् १८८० के २७वीं सितम्बर के पत्र में उनके एक मित्र ने 'भारतेन्दु' की पदवी उनको देने के लिये एक प्रस्ताव छपवाया था और उसके छप जाने पर भारतवर्ष के हिन्दी समाचार पत्रों ने उसपर अपनी २ सम्मति प्रगट की और सब पत्र के सम्पादक और गुणग्राही विद्वान् लोगों ने मिलकर उनको 'भारतेन्दु' की पदवी दी तब से वह भारतेन्दु लिखे जाने लगे। ६ जनवरी सन् १८८५ ई० को प्रातः काल के समय जब भीतर से बीमारी का हाल पूछने के लिये मज़दूरिन आई तो आपने कहा कि

[३२]

जा कर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया-नया छप रहा है, पहिले दिन जर की दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है? 'इसीसे समझना चाहिये कि वह कैसे Dramatist : नाटक के आचार्य : थे।

खड़ी बोली के पद्य के आप विरोधी थे। आप की दलीलों का खण्डन में अपने "छन्द-बिचार" : Prosody : में करूंगा। लोग खातिर जमा रक्खें।

सन् १८७२ ई० में लिफ़टिनेनृट गवर्नर बेंगाल मोज़फ़्फ़रपुर में पधारे और मौलवी इमदाद अली खाँ के स्कूल की नेव दी। मौलवी साहब ने मौलवी स्टाइल में ऐड्रेस : अभिनन्दन पत्र : दिया। उस का नतीजा यह हुआ कि आप : लिफटनेनृट : ने हज़ारी बाग़ से एक रिज़ोल्येशन ३०वीं सेप्टेम्बर १७७२ को जारी किया।

रीज़ोल्युशन-गवर्नमेन्ट औफ़ बेंगाल, साधारण : शिक्षा : विभाग का संक्षेप।

पाठशालों में केवल बंगला, हिन्दी, आसामी, और ओड़िया अपने २ प्रान्त में, और विर्ले प्रदेश में जहाँ कि आदिम निवासी लोग अपनी २ निज भाषा बोलते हैं, जैसा, छोटा नागपुर में कोल, सोंताल पर्गना में सोंताल, खासो पहाड़ में खसिया, आसाम में खमती, कचारी, और दार्जिलिंग में लिपचा, प्राचीन

[३३]

आदि भाषा पढ़ाई जायं। बहुतेरे आदिम निवासियों को अपना कोई निज अक्षर नहीं है, उन को रोमन अक्षर में शिक्षा दी जाय।

सन् १८८१ ई० में विहार की कचहरियों में कैथी अक्षर जारी हुए। परन्तु कचहरियों में अभी तक स्टाइल वही मोलवी साहब का है। यह हज़ार शुक्र है। पश्चिमोत्तर देश से जब फ़ारसी अक्षरों का सत्यानाश होगा तब हम लोग : हिन्दी रसिकों : की मनकामना सिद्ध होगी और मोलवी स्टाइल निर्मूल हो जायगा।

बंगाले की कचहरियों में बंगला अक्षर जारी है परन्तु स्टाइल उस का समाचार पत्र और पुस्तकों के स्टाइल से भिन्न है। इस स्टाइल को बंगला में अदालती बंगला कहते हैं।

जिन लोगों को कैथी अक्षर अशुद्ध लिखे जाने का भ्रम हो वह बिहार—हिन्दी गेज़ट लेकर बाचें, सन्देह जाता रहेगा। हिन्दी शीघ्र लिखे जामे के लिये त्वरित लेख : Phonography : के अक्षर श्री नवीन चन्द्रराय ने निर्माण किये हैं। उनके "शब्दोचारण" नामक Hindi Primer में Phonography के अक्षर लिखे हुए हैं।

मुज़फ़्फ़रपुर
विजय दषमी १२९५ फ़स्ली
अथवा २६वीं सितम्बर १८८७ ई०

अयोध्या प्रसाद वर्म्मा

खड़ी बोली का पद्य

२रा भाग

१ला परिच्छेद

मुंशी-स्टाइल[1]

बारह मासा

अषाढ़ आया यह पहिला मास वर्सात
कटेगी किस तरह मेरी भला रात ?
कड़क विजुली मेरी छाती दुखावे
सखी बिन श्याम को यह दुख मिटावे ?
यह बूंदी तन प' जो मेरे पड़ी है
जखम दिल पर कटारी की करी है !
एकाएक जो कहीं बादल यह गरजा
कलेजा दलदलाया दिल यह धड़का ।
सखी खुश भाग उन के जो पिया साथ
रहै जंगल वियाबन हाथ में हाथ ।
महल में फूल के बिस्तर पर सोवे
अगर बालम नहीं तो भाग रोवे ।
विदेसी सब के अपने घर को आए
हर एक मुलकों की हैं सौगात लाए ।
कोई साड़ी बनारस की ले आया
कोई चूड़ी कोई चोली है लाया ।

। २ ।[2]

न आए पिउ मेरे न हाल भेजा ।
न राही से कहा सौगात लेजा ।
सभी चिड़िया चुनगुन घर बनावे
मेरा घर कंत बिन कौन छावे ?
अटारी चढ़ सजन की बाट जाहूं
कभी गंगा किनारे घाट जाहूं ।

---

१. "जैसी बहे बयार पीठ वैस ही दीजै ।"
२. दो खड़ी रेखाओं के बीच संख्या-चिह्न मूल संस्करण की पृष्ठ-संख्या के द्योतक हैं । —सं०

द्वारे जा बटोही को तकत हूँ
अकेली सेज पर टुकटुक तकत हूँ।
अंधेरी रैन, पिउ बिन नींद कैसी ?
बिरह माती जगत में कौन ऐसी ?
सभी दुख से बड़ा है दुख जुदाई
सो मुझ को हरने यह पहिले दिखाई।

—

बिल कुल लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं। मुझे स्टाइल से मतलब है विषय से नहीं।
—ले०

२रा परिच्छेद

मौलवी-स्टाइल[१]

इस परिच्छेद में नासिख और आतिश आदि का काव्य लिखना चाहिये परन्तु मैं बाबू हरिश्चन्द्र का काव्य लिखता हूं। इससे मुझे यह सिद्ध करना है कि वह खुद क्रियाओं में दीर्घ मात्रा रहते हुए मोलवी-स्टाइल की खड़ी बोली में काव्य करते थे। मोलवी-स्टाइल और पण्डित-स्टाइल में केवल संज्ञा में अंतर

। ३ ।

रहता है, क्रिया में नहीं।

। "प्रेमतरंग" से।

बाबू हरिश्चन्द्र : रसा : कृत।

तेरी सूरत मुझे भाई मेरा जी जानता है
जो झलक तूने दिखाई मेरा जी जानता है।
अरे जालिम तेरे इस तीर निगह से हम ने
चोट जैसी कि है खाई मेरा जी जानता है।
खायंगे जहर नहीं डूब मरेंगे जाकर
जी है कुछ जी में समाई मेरा जी जानता है।

---

१ काबुल गै मीगल हो आए खटिया तर है पानी
"आव" "आव" कह पूता मूए अपने सीर बिसानी।

क़त्ल करके न खबर ली मेरे क़ातिल अफसोस
जां इसी दुख में गंवाई मेरा जी जानता है।
प्यार की वह तेरी चितवन व नशीली आंखें
दिल की किस तरह है भाई मेरा जी जानता है।
देके जी और पै जीने का मज़ा खो बैठे
जीते जी जी पै बन आई मेरा जी जानता है।
सब की फौज के पा उठ गए दिल हार गया
आंख तू ने जो लड़ाई मेरा जी जानता है।
ख्वाब में हो गया शब की तेरी मुहब्बत का ख़याल
रात वह फिर न आई मेरा जी जानता है
दाग़ दिल पर यह रहेगा कि तेरे कूचे तक
थी रसा की न रसाई मेरा जी जानता है। १

दिल मेरा ले गया दग़ा करके।
बे वफ़ा हो गया वफ़ा करके।
हिज्र की शब घटा ही दी हमने

। ४ ।

दास्तां ज़ुल्फ़ की बढ़ा करके।
शुअलारू कह तो क्या मिला तुझ को
दिल जलों को जला जला करके।
वक्ते रेहलत जो आए बालीं पर
खूब रोए गले लगा करके।
सर्वे कामत ग़ज़ब की चाल से तुम
क्यों क़यामत चले बपा करके।
खुद बखुद आज जो वो बुत आया
मैं भी दौड़ा खुदा खुदा करके।
क्यों न दावा करे मसीहा का
मुर्दे ठोकर से वह जिला करके।
क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ़
इक झलक सी मुझे दिखा करके
दोस्तो कौन मेरी तुर्बत पर
रो रहा है रसा रमा करके। २

उर्दू में वज़ीर और अनीस का काव्य बाबू हरिश्चन्द्र को अतिप्रिय था। वह अनीस को अच्छा कवि समझते थे।

: शोकावली, पृष्ठ १७ :

३रा परिच्छेद

पण्डित-स्टाइल[1]

काशी पत्रिका, १६ सितम्बर १८८७ से।

। ५ ।

पण्डित श्रीधर पाठक रचित

जगत सचाई सार।

●

कहो न प्यारे मुझ से ऐसा—"झूठा है यह सब संसार।
"थोथा झगड़ा, जी का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार"॥
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान हैं निस्सन्देह।
फिर भी तो छोड़ा नहीं जाता, पल भर को भी उन से नेह॥

लगा हुआ है वस्तु मात्र का एक दूसरे से सम्बन्ध।
दूषित क्यों कर हो सका है उस कर्त्ता का अटल प्रबन्ध॥
जगत है सच्चा, तनक न कच्चा, समझो बच्चा इसका भेद।
पीओ, खाओ, सब सुख पाओ, कभी न लाओ मन में खेद॥

"मिट्टी उढ़ौना, मिट्टी बिछौना", मिट्टी दाना पानी है।
मिट्टी ही तन बदन हमारा सो सब ठीक कहानी है॥
पर जो उलटा समझ के इसको, बने आपही ज्ञानी है।
मिट्टी करता है जीबन को और बड़ा अज्ञानी है॥

मिट्टी क्या है माचो तो टुक अकल लड़ाके प्यारे मित्र।
पंच महाभूतों में घमके देखो इसकी बात बिचित्र॥
परम पवित्र पावनी पृथ्वी, भरी सकल सुघराई से।
पद पद पर शोभा से छाई, ईश्वर की चतुराई से॥

---

१. "कल भी महफ़िल से तेरी हम न टले, बैठ गये,
बोले "उठ, उठ" सभी, यांतक कि गले बैठ गये।"
पण्डित जी ब्रज भाषा का पिंड नहीं छोड़ेंगे।

अति अमोल रत्नों की जननी, सब द्रव्यों की माता है।
सदा सुधा रस भरी, खरी, यह सब प्रकार सुख दाता है॥
सब जीवों की भौतिक काया इस से पोषण पाती है।
जीव से नाता छुट जाने पर इसी में वह मिल जाती है॥

। ६ ।

तुम से, पृथ्वी से मिट्टी से है इतना ही सम्बन्ध।
काम तुम्हारे आती है वह, सुन्दर यह प्राकृतिक निबन्ध॥
समझ के मारे जगत को मिट्टी, मिट्टी जो कि रमाता है।
मिट्टी करके सर्बस अपना, मिट्टी में मिल जाता है॥

कभी नहीं ऐसा मूरख नर मार सृष्टि का पाता है।
जैसा ही आया था जग में, वैसा ही वह जाता है॥
इस शरीर से जो मनुष्य नहिं कुछ भी लाभ उठाता है।
उससे तो वह पशू भला जो काम सैंकड़ों आता है॥

उसका जन्म व्यर्थ है जो नर पौरुष कुछ न दिखाता है।
न इस लोक ना उसी लोक में हाथ उसे कुछ आता है॥
पृथ्वी को भी ऐसा कायर वृथा भार पहुँचाता है।
अपना जीना ही जिसको एक बड़ा बोझ हो जाता है॥

जो तन मन से करता है श्रम, उचित रीति ले चलता है।
सारी बसुधा का क्रम क्रम से सर्वस उसको मिलता है॥
हाथ, पैर और नाक, कान, बुद्धि से काम जो लेता है।
जीवन का सुख पाता है वह औरों को सुख देता है॥

पुत्र, कलत्र, मित्र, बान्धव में फैलाकर सच्चा आनन्द।
काम जगत का करता है, वह रहता है सुख से स्वच्छन्द॥
दुख कब ऐसे पुरुष सिंह के पास फटकने पाता है।
वह तो आलस का साथी है, आलसियों पर जाता है॥

जब तक तुम इस जग में सच्ची धर्म रीति पर चलते हो।
तब तक निस्सन्देह निरन्तर सब बातों में फलते हो॥
सारा संसारिक सुख पाकर ईश्वर को पहिचानो हो।
उसकी विद्यमानता, सत्ता, बस्तुमात्र में जानो हो॥

। ७ ।

रचा उसी का है अब यह जग निश्चय उस को प्यारा है।
इसमें दोष लगाना अपने लिये दोष का हारा है॥

ध्यान लगा के जो देखो तुम, सृष्टी की सुघराई को।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को॥

ये सब भांति भांति के पक्षी, ये सब रंग रंग के फूल।
ये बन की लह लही लता नव ललित ललित शोभा की मूल॥
ये नदियां, ये झील सरोवर कमलों पर भौंरों की गुंज।
बड़े सुरीले बोलों में अनमोल घनी वृक्षों का कुंज॥

ये पर्वत की रम्य शिखा और शोभा महित चढ़ाव उतार।
निरमल जल के सोते झरने, सीमा रहित महा विस्तार॥
छै प्रकार की ऋतु का होना नित नवीन शोभा के संग।
पाकर काल बनस्पति फलना रूप बदलना रंग बिरंग॥

चांद सूर्य की शोभा अद्भुत, बारी से आना दिन रात।
त्यों अनन्त तारा मंडल से सज जाना रजनी का गात।
त्यों समुद्र का पृथ्वी तल पर छाया जा जलमय विस्तार।
उस में से मेघों के मंडल हों अनन्त उत्पन्न अपार।

लर्जन गर्जन घन मंडल की बिजली बर्षा का संचार।
जिस में दीखे परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार॥
उस कारीगर ने कैसा यह सुन्दर चित्र बनाया है।
कहीं पै जल मय, कहीं रेत मय, "कहीं धूप कहीं छाया है"॥

विविध रूप का अनोखा अचरज जिस के बीच समाया है।
कोई कहता "कुदरत' जिस को कोई कहता "माया" है॥
पांच बजे तड़के उठके जिस दम हम नहाते धोते हैं।
आधी रात होने से उस दम लंडन वाले सोते हैं॥

। ८ ।

यहां जिन दिनों गर्मी से सब के घर पंखे झलते हैं।
अस्ट्रेलिया वालों के घर में गरम कोयले जलते हैं॥
इस प्रकार के दृश्य अनेकों दृष्टि नित्य जब आते हैं।
अचरज युक्त अनुपम अनुभव वे मन में उपजाते हैं॥

इन सब के कारण से होता नहीं है किस के मन को सुख।
कभी किसी को बताइये तो पहुंचा है इन से कुछ दुख ?॥
सब स्वभाव के मनुषय जिसकी सदा प्रशंसा गाते हैं।
जोगी, जती, विरक्त, उदासी भी उत्तम बतलाते हैं॥
जो नेत्रों से दिखाई देता, कानों से सुन पड़ता है।

जिसको चित्त ग्रहण करता है जिससे कुछ न बिगड़ता है।
सत्पुरुषों ने जिसकी बारम्बार पुकारा अच्छा है।
जो वोही नहिं सच्चा है तो भला और क्या सच्चा है॥

जिसका यह सब रचा हुआ है वह परमेश्वर सच्चा है।
जगत के सच्चे होने का मत, क्यों करके तब कचा है?॥

जो सचा है वह प्यारा है, वही सकल सुख का भंडार।
वही मनुषयों के जीवन को देता है आनन्द अपार॥

जगत को झूठा झूठा कहके करो नहीं उसका अपमान।
बुद्धि को अपने काम में लाओ हे मनुषय हे बुद्धिनिधान॥

जिसको तुम जानो यह दुख है सहो उसे धीरज के साथ।
दुख में सुख का अनुभव करना, है मनुषय को अपने हाथ॥

दुख तो मनुषय के जीवन की एक कसौटी है मानो।
इस में जैसा रहे रंग, वैसा ही भाव उस का जानो॥

काम क्रोध और लोभ मोह भी जीवन के सहयोगी हैं।
अनुचित बर्तावों से केवल हो जाते प्रतियोगी हैं॥

[६]

इनको जो अपने मन से जड़ मूल मिटाना चाहे हैं।
वे असमर्थ कभी न जगत का सत उद्देश्य निवाहे हैं॥

जैसा यह जग बना हुआ है, वैसा इसको पहचानो।
ईश्वर की व्यापकता इसमें सभी ठौर प्यारे जानो॥

देख देख उसकी महिमा, गुण निशिवासर उसके गाओ।
अर्थ, धर्म और काम मोक्ष पाने में पौरुष दिखलाओ॥

रूप जगत का यथार्थ देखो पड़ो भूल में कभी न तुम।
जीवन के कर्त्तव्य निवाहो, समझ के उसके शुद्ध नियम॥

चलोगे सच्चे मन से जो तुम निर्मल नियमों के अनुसार।
तो अवश्य प्यारे जानोगे सारा जगत सचाई सार॥

—

: भाषा प्रभाकर से :

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास कृत।

३१ अक्षर वाला कवित्त छन्द।

अमृत के रस की भरी सी उस मुरली को कब प्यारे आके
: मेरे सामने बजावेगा ?
चढ़के कदम्ब पर चारों ओर देख भाल हाथ को उठा के कब
: बच्छो को बुलावेगा ?
अम्बादत्त कवि को रसीली कविता की सुन मुकुट झुका के
: कब फिर मुसकावेगा ?
मुझ से गंवार की पुकार बार बार सुन सांवले सलोने कब
: दरस दिखावेगा ?

—

बनारसी की लावनी पण्डित स्टाइल और मौलवी स्टाइल दोनों में होती है।

[१०]

प्रगट हो कि पण्डित स्टाइल में, मेरे "खड़ी बोली का पद्य" पहिला हिस्सा के छापने के बाद, पण्डित अम्बिका दत्त व्यास और पण्डित श्रीधर पाठक ने पूर्वोक्त पद्य लिखे हैं।

बिहार-बन्धु के वर्तमान सम्पादक ने भी कुछ दोहे खड़ी बोली में बनाये हैं।

—

४था परिच्छेद

: अलपंच-- १६वीं जुलाई सन् १८८५ से :

: बकीये मज़मून :

यूरेशियन वासोख़।

साथ हर सुबह को यों होता था हम दोनों का।
शब को एक जा प ग़लत होता था ग़म दोनों का।
हाय ! क्या क्या नहीं करता था गिला एक से एक ?
एक मोमेन्ट जो रहता था जुदा एक से एक।
moment
चुप रहो, चुप रहो, अच्छा नहीं अब तूल मक़ाल !
कुछ भी मोडेस्टी का इन्सान को लाज़िम है ख़याल।
modesty

मुख़सर यह कि इसी तौर से गुज़रा एक साल।
झूठ कहती नहीं वाक़िफ़ है ख़ेदाय मताल
क्या कहूं? चर्ख़ जफ़ाजो न इसे देख सका।
दफ़फ़ेतन ऐश में बन्दी के ख़लल आन पड़ा।
एक दिन बैठी थी मैं घर में कि आया वह निगार,
कौन्टिनेन्स से कुछ फ़िक्र के ज़ाहिर आसार
Countenence

[११]

मैंने पूछा कि बता ख़ैर है? क्या है इसरार?
बे सबब आज नहीं ज़र्द यह तेरे रुख़सार।
बोला सर पीट के अब ख़ैर नहीं है, जानी!
कल घसीटे लिये जाता है यह दाना पानी।
आज यह आलमे बाला से है पहुँचा औडर।
Order
शख़्स आख़िर के बै बस चार्ज मे दे दूं दफ़्तर।
Charge
मैं समझता हूं कि इन बातों की पहुंची है ख़बर।
जब तो यों संडली आई है मुसीबत मुझ पर।
Suddenly
ग़म नहीं इस का कि इस शहर से जाते हैं हम।
इस का सदमा है कि तू छुटती है, ख़ालिक़ की क़सम
इतना सुन्ना था कि तारी हुई मुझ पर रिक्कत।
दिल की यारा न रहा जस का, ओफ़रे उलफ़त!
बाद दो घन्टे के जब ठीक हुई कुछ हालत,
अपने फादर से कहा मैंने यह करके मिन्नत।
father
इस के रहजाने से है मेरी भलाई, पापा!
papa
कीजिये कीजिये कुछ आप टराई, पापा!
try papa
मेरी दर्ख़ास्त का फादर ने दिया तब य जवाब—
father
सुबह से आज इसी फ़िक्र में हूं मैं बेताब।
हाल तुझ से तो ज़यादा है तेरी मां का ख़राब।
एक तेरी वजह से उस को भी जुदाई है अज़ाब।

[१२]

कारगर होती नहीं कोई भी अस्ला तदबीर।
कुछ समझ में नहीं आता है, करूं क्या तदबीर ?
ऐडवाइस तुम्हें एक करते हैं मानो उसकी ;
advice
याने चन्दे के लिये दिल को अभी समझाओ।
बद गुमानी का य लोगों का निकल जाने दो,
फिर खोदा चाहे तो जिस बात को चाहें वही हो।
देखो समझाते हैं हम मानो हमारी बातें।
मसलेहत से अभी खाली है तुम्हारी बातें।
सुन के फ़ादर की जबां से यह मुहब्बत के कलाम,
father
दिल तो उमड़ा, प लिया जप्त से म ने वां काम।
जोड़ कर हाथों को की अर्ज, कि ऐ आला मोक़ाम !
आज से अब न कभी लूंगी मैं उस शोख़ का नाम।
मैं भी राजी हूं अगर आप की मर्जी है यही,
पर प्रौमिस की रहे याद, जनाबे आली !
promise
अलग़रज़ दूसरे दिन तड़के ही पव जबकि फटी,
आया रुखसत को मेरे पास मेरा परदेसी।
उस वह फ़ेस ग्लूमी वह लबों पर शाई !
face gloomy shy
है फ्रेश हाफ़ज़ में वन्दी न अब तक भूली।
fresh
पहिले हसरत से मेरा उस ने सरापा देखा।
दौड़ कर फिर मुझे लिपटा के गले स यह कहा।
म तो जाता हूं तेरा हाफिज वो नासिर अल्लाह।

[१३]

पर रहे मुझ प जरा चश्मे एनायत की निगाह।
क्या क्रुएल है मेरे हाकिम आला, तोबाह !
cruel
दिल दुखाना भी नहीं कास्ट में इन की है गुनाह।
caste

: अशलील होने के कारण सम्पूर्ण नहीं लिखा गया। :

: अल्पंच,—१२वीं फ़रवरी १८८६ से । :

उदू॔ अंगरेज़ी की खिचड़ी ।

क्यों नन हों ब्लैक जेर मशके ह्वाइट नाउएडेज ?
black white nowadays
यह हैं पावर फुल वह हैं बेजार वो माइट नाउएडेज
powerful might nowadays
रेन्ट लौ का ग़म करें, या विल ऑफ़ इनकम टैक्स का ?
rent law bill of Income Tax
क्या करें ? अपना नहीं है सेन्स राइट नाउएडेज ।
Sence right nowadays
फंस गईं जानें हमारी किस मुसीबत में ? एलास ।
alas
नींद तक आती नहीं है होल नाइट नाउएडेज ।
whole night nowadays
रात दिन गुजरे ताब में फ़िक्रए ब्लैक के
black
चैन बस काटा करें हजरात ह्वाइट नाउएडेज ।
white nowadays
एक आफ़त तोड़दी भूपाल और कश्मीर पर ।

। १४ ।

डौग से कुछ कम नहीं है इन का बाइट नाउएडेज
dog bite nowadays
तसफ़ीया सहॅद का बारे हो गया अब चीन से ;
शोर वो शर करते नहीं हैं मस्क, आइट नाउएडेज
maskaite nowadays
पीस का नाम वो निशां अब वर्लड में बाक़ी नहीं ।
world
हरतरफ सुनने में आता है टू फ़ाइट नाउएडेज ।
To fight nowadays
थे जो मस्लह वर्ल्ड के अब हैं सीमी बारबेरियन ।
world semi barbarian
और जो सैवेज पहिले थे वह हैं पोलाइट नाउएडेज
savage polite nowadays
एम० ए० ए० स्कूल गो क़ायम हुआ इस शहृ में,
वैसा ही सोते हैं अक्सर पटनाइट नाउएडेज ।
Patnite nowadays

सफ़' बेजा करते हैं हसात में देते नहीं।
कुछ समझते ही नहीं यह रौंग राइट नाउएडेज़।
wrong right nowadays
एक सिरे से काम को बातें इन्हें आती नहीं।
सिर्फ़ आता है इन्हें टु प्लाइ काइट[१] नाउएडेज़।
डार्कनेस-छाया हुआ है हिन्द में चारों तरफ।
नाम की भी है कहीं बाक़ी न लाइट नाउएडेज़।

—

हम अली गढ़ में गुज़ारेंगे विकेशन अपना।

। १५ ।

नेचरियों से मिला लेंगे रिलेशन अपना।
तर्क मजहब से अगर हिन्द में बदनामी है।
जाके लन्डन में बदल डालेंगे नेशन, अपना।

—

जाया जो उन का कोई मोमेन्ट हो गया।
बिल्कुल खज़ाना माल का वैकेन्ट हो गया।

शेर—

लबे बर्ग पुना है वो सियह मिर्च खाल है,
रुख़ का पसीना तेरे पिपरमेन्ट हो गया।

—

मैं नेटिव फौरेन मुलकों का संयोग मुझे यहां लाया है।
मैं आया पढ़ने लिखने को तेरी ब्युटि ने मुझे सताया है।

—

५वां परिच्छेद

: अशुद्ध हिन्दी :

यूरोपियन स्टाइल।

ध्यान में जिस दम नई तहजीब को लाटा है हम,
छोड़कर काबे को लन्डन में चला जाटा है हम।
नाच घर में या कमीटी में अगर जाटा है हम
बिउटिफ़ुल लेडी को साथ ले जाटा है हम।

---

१. Placate

। १६ ।

ओढ़ कर पटलून कोट अल्पकाव गोल टाप
अपना फ़ैशन लौंडों का सा बना लाटा है हम।
पांव में है हाफ़ बूट और हाथ में लम्बा बेंत,
उस को घुमाटा हुआ घर से निकल जाटा है हम।
हाजत पेशाब और पायखाने की हुई तो वां
मेक वाटर कह खड़े ही मेंह सा वरसाटा है हम।
नाम पर्दा का व लें जोरु को रखें कैद में
काले लोगों की यह बाटें सुन के जल जाटा है हम।
हम मुहज़्ज़ब हैं मरोरी मुर्ग़ी खाने का है शौक़
और जामें शामपीन को पीके फ़र्माटा है हम।
बीन बाजे पर फड़क कर नाचना हैगा रवा
सिविलिज़ेशन की हदीसों से सनद लाटा है हम।
नीम नंगा होके मिस जब नाचटी है राट को
है कसम दुमदार टोपी की कि मर जाटा है हम।
मुल्ला को क्या खबर उस लुत्फ़ की
जो मज़ा और लुटफ़ ऐसे नाच में पाटा है हम।
सरके बल लन्डन नजाये जब तलक यह अहूल हिन्द
वह मुहज़्ज़ब ही न होगा ठीक फ़र्माटा है हम।
है खयाली खौफ़ मज़हब में जहन्नुम का ध्यान
खौफ़ दुनिया मे मगर लब पर नहीं लाटा है हम।
अहले यूरप जब कि हम को कहटा है रिफ़ौर्मर

। १७ ।

ध्यान में फिर हिन्दयों का कब भला लाटा है हम।
उस बुते लन्डन की हम तो आंख के बीगार हैं
पंच साहब हाल तो यह है जो फर्माटा है हम।

बंगालियों की हिन्दी भी अंगरेजों की हिन्दी के करीब होती है। १६वीं डिसेम्बर, १८८६ के विहार बन्धु में एडिटर ने इस विषय में अपनी राय यों लिक्खी है—"इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि जब किसी बंगाली ने सात समुद्र पार का अंगरेजी को मातृभाषा से भी बढ़कर बना रक्खा है तो फिर पड़ोस की हिन्दी किस गिनती में है ? बंगाली लोग हिन्दी बोलने और लिखने में जो अपना नाम धरा रहे हैं वह और कोई बात नहीं है केवल 'हाथ की आस्कत मोंछ टेढ़ी' समझो।" मेरी राय भी यही है।

बाबू इंग्लिश : Babu English : का जवाब यह काफ़ी है।

६ठा परिच्छेद
मुतफ़र्क़ात : विविध : ।
Miscellaneous.

सैर ख़ाब अज़तसीफ़ अख़र हुसेन ।

मैं यह बैठा हुआ समझता था अपने दिल को ।
ख़ूब की गोशनशीनी ज़रा चल फिर तो लो ।
दिल की ख़ाहिश हो जहां वां तमाशा देखो
यही कहता था कि नींद आगई उस दम मुझको ।
मैंने जो ख़ाब देखा है वह सुन कर हँस लो ।

। १८ ।

२ पहुंचा तिहुंत में तो एक मर्द मुसलमां देखा
पूछने मुझ से लगा, घर हौ कहाँ पर तोरा ?
कहाँ आयह ? कहां जैह ? हिया रहिय का ?
देख इमामा कहा खूब हो सिर का फेटा ।
मोलवी आय हैं, देख त ज़रा चचा हो ।
३ निकला दर्या की तरफ़ सैर के ख़ातिर जो मैं
देखा नंगी कई छोकड़ियाँ ग़ुसुल करती हैं ।
दिल में आया कि उसी गोल में हम कूद पड़ें
देख डाढ़ी को मेरी कहने लगीं आपस में ।
राम । भिन्सार मुंह स्नान करैत की देख लों
निकलीं दर्या से वह फ़िलफ़ौर घड़े सर पर धरे
चलीं कहती हुई "गोविंद ! हरे कृष्ण ! हरे !"
तुर्क मुंह में अपने देखौ लौहं तखन हमरा के,
हम न जाएव कोई ठाँव आई मे अपने संगे ।
एक टा गौ दान के लेहे अरे रमचेखारो !
गौ हुई दान तो लेने को बरहमन आया
गाएसे दान हक़ीकत में मुसलमां एक था ।
दान पापा के वह भिखार बरह न हरजा
हुआ खुशदिल तो मुसलमान के लिये कहता चला ।
राम जो दसटा मुसलमानक नित दर्शन हो !
वां से फिर चलूं के मैं आख़िर को कलकत्ता पहुंचा
एक मुहल्ला जो है मशहूर वहाँ ताल तला

। १९ ।

देखा बंगालिनें कस्बी हैं बहुत सी एकजा
कोई चलता है तो कहती है कि एशो माशा ।

मेरबानी कोरे आमार बाड़ी ते थाको।
बाबू ! रांड़ेर मदेर आमी तो चमत्कार आशो
आपनी बाबू आशेन, आमी आशा आपनार दाशो।
आखिरश जिस ने शौक़ से की शब बाशी
सुबह को निकले वह चेहरा किये अपना माशी
और वह कहती है कि टाका आमार दीते जाओ
बढ़के देखा कि अगरेज़िने वां पर एक सर
कुर्सियां मोंढ़े लगाये बतकल्लफ़ घर घर
खुश लेबासों को पुकारे है कि वेल माइ डियर।
Well my dear
विल यू बी काइन्ड एनफ़ ऐज़ टु कम ओवर हियर
will you be kind enough as to come over here
लोग मुश्ताक़ हुए चल के ज़रा देखें तो
हुए दाख़िल तो किया उसने मोहब्बत से कलाम
डाल कर हाथ गले में दिया दो मै का जाम
वक्त मोहब्बत लगी करने मोकर्रर अनआम
दस रुप से जो कहा कम तो बने फूल और डाम
Fool Dam
उठ के भागे तो सिपाही से कहा बेल पकड़ो।
देखा कलकत्ते में मैने जो यह सब मक्र वो फ़तूर
भागा हंसता हुआ वां से बदिले नामसूर
पहुंचा एक चश्मे अदन में बशह ग़ाज़ीपुर

। २० ।

क्षत्री जो आये नजर चंद बकारे मजदूर
कहा हिन्दू में तो अलबत्त बहादुर तुम हो
बोला हमनि म जे बरियार ह आवत बाटै
लाठी मोंटन में त हमनि मैं कोऊ घाटै
देखौं गोस्सा स जा सेरन के त गंड़िये फाटै
तेगा हमनि के भया लोहा के खचखच काटै
कहा सच मुंह से तुम अपने मिया मिट्ठू बनलो
पहुंचा काबुल के करीब जब तो उड़े मेरे होश
काबुली लोग नज़र आए वहां कम्मल पोश
बोले, कुम अग़ले ? चरजल लजे ? आग़ा ! ओश ओश
चैन, डौडी ख़ोड़िली, ड़ावड़ा जिगुल खान गोश
और ऊंटों को चराते थे वह कह हुश हुश शो
बह काबुल में जो आया तो यह नैमत पाई
एक हमीन आन के बोला "ज़े कुजामी आई" ?

कहा हिन्दीम वो दिल दादे ता शदाई
बोला शोखी से वह हंस कर "चे सोखन फ़र्माई ?"
खाही गरशह बेबीनी व्या हम्राहम शो
दिल जा एक बारगी काबुल से बहुत घबड़ाया
खास पंजाब में पहुंचा तो अजब नकशा था
कंजरी एक शाख मितमगार को मैंने देखा
बोली का लोढ़ ? तनु चंदड़े हो, अस्मी वेखा
साढे वल आब तुसी कौन हो ? मानु दस मो
में बमिन्नत यह कहा उस मे कि ऐ रश्क क़मर !

। २१ ।

क्या हाले परीशां की नहीं तुझको खबर ?
जुस्तजू में तो तेरे ही मैं फिरूं दर दर
गर्दिशे वक्त ने खिलवाए हैं लाखों चक्कर !
क़िस्मतों से तो मिला आज बगल गीर तो हो
सुन के यह बात गुरेज़ां हुई वां से वह दूर
लखनऊ आया तो फिर दिल हुआ अपना मसूर
यानी एक रश्क क़मर हुस्न प अपने मग़रूर
दरे खान से हुई देख के मुझको काफ़ूर
और चिल्लाई मैं सदके मेरी अन्ना दौड़ो।
आके एक दाई ने बातों में किया मुझ से अयां
अश्क ग़मजे की जगह यह तो नहीं है मियां
हो चुका जाइये बस आप को जाना हो जहां
सुन के यह बात न दम लेने को ठहरा मैं वां
दिल का हरदम यह तक़ाजा था कि भागो भागो
देखा एक जा प है महफिल रक्स और तरब
जमघटा यारों का है रक्स के सामान हैं सब
मादए राह तो याही वहां नींद आइ ग़जब
लोग कहने लगे तड़के को उठी महफ़िल जब
शाम के सोए हुए मर्द मोसाफिर जागो
नींद से आंख खुली जब तो न वह जलसा था
न वह महफ़िल थी न अहबाब का वह गुन्चा था
फिर तो काबुल का सफ़र था न वह कलकत्ता था

। २२ ।

कहा अखतर ने यह गफ़्लत थी तेरी और क्या था
खाब ही खाब है सब दीदए ग़फ़्लत खोलो

APPENDIX

परिशिष्ट ।

: श्री हरिश्चन्द्रका, अगस्त सन १८८५ से :

मुशायरा ।

चिड़या मार का टोला
भांत भांत का जानबर बोला ।

लखनऊ दिल्ली बनारस पूरब और दक्खिन कई मुफ़्तखोरे शायर एक जगह जमा हुए और लगे रंग बिरंग की बोलियां बोलने । मैंने भी वहीं मैक्राफ़ून की कल लगा दी । जो कुछ उस में आवाज बन्द हो गई आप लोग भी सुन लीजिए ।

सब के पहिले लाला साहब उठे और बन्दगी करके यों चोंच खोली ।

ग़ज़ल ।

गल्ला कटै लगा है कि जो है सो है,
बनियन का ग़म भवा है कि भैया जो है सो है ।
लाला की भैंसी शोर निचोवत मां शाशी जब,
दूध मोह मा मिल गवा है कि भैया जो है सो है ।
इक तो क़हत मां मर मिटी खिलकत जो हैगा सब,
तेह पर टिकस बंधा है कि भैया जो है सो है ।
अंगरेज से अफ़गान से वह जंग होता है,

: आगे फटा हुआ है :

। २ ।

कुप्पा भए हैं पूल के बनियां व फ़र्ते मान ।
पेट उन का दमकला है कि भैया जो है सो है ।
अखबार नाहीं पंच से बढ़कर भआ कोऊ,
सिक्का यजम गवा है कि भैया जो है सो है ।

इसके बाद लाला साहब ने रें रें करके एक होली भी गा ही दी।

कैसी होरी खिलाई ?
आग तन मन में लगाई,

पानी की बूंद से पिंड प्रगट कियो,
सुन्दर रूप बनाई।

पेट अधम के कारन मोहन
घर घर नाच नचाई।

तबौ नहीं हवस बुझाई।

भूंजी भांग नहीं घर भीतर,
का पहिनी का खाई ?

टिकस पिया मोरी लाजा को रखल्यो,
ऐसे बनो न कसाई।

तुम्हें कसर की दोहाई।

कर जोरत हों बिनती करत हों,
छांड़ो टिकस कन्हाई।

आग लगी ऐसी फाग के ऊपर,
भूखन जान गंवाई।

: आगे का भाग फटा हुआ है :

अयोध्याप्रसाद खत्री : जीवनी तथा हिन्दी-सेवा

परिवार

खत्री जाति ने भारत के आर्थिक विकास में जितना योग दिया है, उससे कम साहित्य के क्षेत्र में नहीं दिया है। अयोध्याप्रसाद, खत्री-जाति के ही एक रत्न थे। उनके पूर्वज बलिया जिला के अन्तर्गत सिकन्दरपुर के निवासी थे। यहीं खत्रीजी का जन्म सन् १८५७ ई० में हुआ था। उनका शैशव सिकन्दरपुर में ही बीता। जब वे पढ़ने योग्य हुए, तब उनके पिता जगजीवनलाल खत्री उन्हें मुजफ्फरपुर में लाये। वहाँ वे एक व्यवसायी के रूप में आये थे। वे पुस्तक-विक्रेता थे। उनकी किताब की दूकान कल्याणी पर थी। उनकी दूकान की स्थिति बहुत अच्छी थी। उनकी शिक्षा अधिक न थी, परन्तु उन्हें हिन्दी, संस्कृत और अरबी का अच्छा ज्ञान था। उनके रहन-सहन, आचार विचार और वेष-भूषा में सादगी और सरलता थी। वे परिश्रमी, कर्त्तव्य-परायण, दृढ-संकल्प, स्पष्टवक्ता, सत्यवादी और समय के पाबन्द थे। वे अपने बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाना चाहते थे। बालक अयोध्याप्रसाद ने पिता के ये गुण पाये थे।

अयोध्याप्रसाद की माता भी बहुत ही धर्मनिष्ठ थीं। उनका स्वभाव शुद्ध तथा निर्मल था। प्रतिदिन मन्दिर में जल चढ़ातीं और दीप जलाती थीं। पूजा, पाठ, व्रतादि नियम से करती थीं। जहाँ पिता से प्राप्त संस्कारों के आधार पर खत्रीजी साहसी, दृढ-निश्चय और सिद्धान्तप्रिय बने, वहीं माता की सरल प्रकृति, दयालुता एवं धर्मनिष्ठता ने उन्हें धर्म-परायण बनाया। उनकी माता को सम्पूर्ण गीता कंठस्थ थी। उन्होंने बालक अयोध्याप्रसाद को भी बचपन में ही गीता कंठस्थ करा दी थी।

अयोध्याप्रसाद खत्री तीन भाई थे। उनके बड़े भाई वकील थे और छोटे व्यवसायी। स्वयं खत्रीजी के दो लड़के और एक लड़की थी। एक लड़के का देहान्त बचपन में हो गया था, दूसरे लड़के का देहान्त ४१ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इस लड़के का नाम जयनारायण खत्री था। लड़की का नाम था कृष्णाकुमारी। उसका विवाह वाराणसी में गायघाट-निवासी गजाधरप्रसाद से हुई थी। अब उनकी पुत्री और जामाता में से कोई नहीं है; केवल कृष्णाकुमारी की तीन लड़कियाँ हैं, जिनका विवाह हो चुका है।

अयोध्याप्रसाद खत्री का देहान्त ४ जनवरी, १६०५ को हुआ था। उन दिनों खत्रीजी मुजफ्फरपुर के कलक्टर के पेशकार थे। खत्रीजी की मृत्यु के पहले ही उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था। अयोध्याप्रसाद खत्री ने अपने पुत्र जयनारायण खत्री को, जो उस समय ११ वर्ष के थे, अपने मित्र झगड़ूलाल को मरने के पहले सौंप दिया था। झगड़ूलाल युद्धविक्रम मारूक के नाम से प्रसिद्ध थे। स्वर्गीय भुवनेश्वर मिश्र ने उनका नाम पहले बदलकर युद्धविक्रम राय रखा था, बाद में उन्होंने ही युद्धविक्रम मारूक कर दिया था। युद्धविक्रम अयोध्याप्रसाद खत्री के बाल-सखा थे। उन्होंने इस बच्चे पर काफी खर्च किया था। तत्कालीन कलक्टर लेविंज ने भी खत्रीजी के अनाथ बच्चे की देख-रेख के लिए कोर्ट ऑफ् वार्ड्स की व्यवस्था की थी। इस कोर्ट ऑफ् वार्ड्स के संचालक तत्कालीन कार्यालय-अधीक्षक रूपलाल मेहता थे। रूपलाल मेहता की पुत्री से, जो जयनारायण खत्री की समकालीन हैं, मुझे यह सूचना मिली कि ५ वर्ष तक ही जयनारायणजी सरकारी व्यवस्था के अन्दर रहे, बाद में खत्री जी के छोटे भाई द्वारकाप्रसाद खत्री की संरक्षकता में चले गये। अब खत्रीजी के परिवार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं बचा रह गया, जो उनकी कृतियों को सुरक्षित रखता। इस परिवार की एक महिला ही बची हुई है, जो खत्रीजी की विधवा पुत्रवधू है और अपने मायके, दरभंगा में रहती है। मुझे मुजफ्फरपुर की रजिस्ट्री ऑफिस में एक अभिलेखा देखने को मिला था, जिससे यह ज्ञात होता है कि अभी खत्रीजी के नाम पर ८ बीघा, ७ कट्ठा, ३ धूर खेत पड़ा हुआ है। उस अभिलेखा की नकल ली गई। खेत का पता चला, जिसके कुछ हिस्से अन्य लोगों के कब्जे में हैं। उनकी पुत्रवधू ने अपने भाई द्वारा मुझे यह खबर भिजवाई कि खेत पर कब्जा करके और उसे बेचकर हिन्दी-प्रचार में लगा दें। दानी की पुत्रवधू से ऐसी ही आशा की जा सकती है।

शिक्षा-दीक्षा

खत्रीजी का जिस समय अक्षरारम्भ हुआ था, उस समय स्कूलों और कचहरियों की भाषा उर्दू और फारसी थी। प्रचलित रीति के अनुसार अयोध्याप्रसाद खत्री को भी उर्दू-फारसी पढ़ाने के लिए एक मौलवी साहब घर पर आने लगे। वे बड़े ही सज्जन और विनोदी व्यक्ति थे। वे सरल और मनोरंजक ढंग से पढ़ाते थे। मौलवी साहब हिन्दुओं के अवतारों की कहानियाँ कहते थे और खत्रीजी मन लगाकर सुनते थे। कुछ ही दिनों में उर्दू और फारसी की कई किताबें खत्रीजी ने पढ़ लीं। बाद में निश्चय हुआ कि उन्हें स्कूल में प्रवेश कराया जाय।

इसी निश्चयानुसार बालक अयोध्याप्रसाद खत्री मुजफ्फरपुर के एक स्कूल में भरती कराये गये। वे पढ़ने में तेज थे। उन्होंने अपना पाठ कभी अधूरा नहीं रखा। कहा जाता है कि वे साहित्य और गणित दोनों में अच्छे थे। पर, वे नटखट और शरारती भी थे। वे कसरत भी करते थे और अखाड़े में भी जाते थे। जहाँ कहीं भी सेवा का काम आ पड़ता था, वे सबसे आगे रहते थे। मुजफ्फरपुर मेलों का जिला कहा जा सकता है। कार्तिक पूर्णिमा से मेला

लगना आरम्भ होता है और चैत्र की रामनवमी तक चलता है। इस अवधि में मुजफ्फरपुर के किसी-न-किसी अंचल में मेला जरूर लगता है। मेले-तमाशे में भीड़ का प्रबन्ध करना उन्होंने बचपन में ही सीखा था। खत्रीजी अपने हमजोलियों को लेकर भीड़ हटाते-फिरते थे। इस काम में उनका सबसे बड़े सहयोगी युद्धविक्रम मारूक थे।

खत्रीजी के पिता जगजीवनलाल खत्री संगीत के भी बड़े प्रेमी थे। उन्हें सूर, मीरा और तुलसी के पद याद थे। अपने पुत्र को भी उन्होंने अनेक पद याद कराये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्य के प्रति उनका आकर्षण हुआ। सामाजिक समस्याओं ने उन्हें निबन्ध लिखने की भी प्रेरणा दी। पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में ही वे सामाजिक समस्याओं पर निबन्ध लिखने लगे। स्कूल के दिनों में उन्होंने एक हस्तलिखित पत्रिका भी निकाली थी। खत्रीजी जिस स्कूल में पढ़ते थे, उसमें एक वाद-विवाद-परिषद् भी थी। उस परिषद् में आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक विषयों पर वाद-विवाद हुआ करते थे। खत्रीजी उनमें भाग लेते थे। वे एक अच्छे वक्ता थे। कहा जाता है कि एक बार वाद-विवाद-प्रतियोगिता में वे जिला में सर्वप्रथम आये थे। खत्रीजी ने कुछ दिनों के बाद स्कूल तो छोड़ दिया, पर अध्ययन नहीं छोड़ा। वे घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, फारसी, अरबी एवं अँगरेजी की पुस्तकें पढ़ने लगे। उन्होंने इन विषयों का इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया कि अधिकारी विद्वानों की भाँति इन पर बोलने, लिखने लगे।

पुस्तक-विक्रेता

खत्रीजी के पिता की अचानक मृत्यु हो गई। खत्रीजी तब इंट्रेंस क्लास में पढ़ रहे थे। व्यवसाय सँभालने के लिए इन्होंने स्कूली पढ़ाई छोड़ दी और पिता की पुस्तकों की दूकान पर बैठने लगे। उन दिनों अधिकांश पुस्तक-विक्रेता ऐसी ही पुस्तकें बेचते थे, जिनकी बिक्री से उन्हें अधिक लाभ होता था। पर, खत्रीजी इसके लिए तैयार न थे। दूकान में उन्हें सहायता देने के लिए उनके छोटे भाई द्वारकाप्रसाद खत्री थे। वे व्यवसायी मात्र थे। दोनों भाइयों की प्रवृत्ति एवं प्रकृति में मौलिक भेद था। इस सम्बन्ध में एक घटना यह बताई जाती है कि द्वारका बाबू ने एक बार किसी पुस्तक का विज्ञापन देखा। विज्ञापन बहुत ही आकर्षक था। उससे प्रभावित होकर उन्होंने पुस्तक की दस प्रतियाँ मँगाईं। पुस्तक को देखकर खत्रीजी को बहुत दुःख हुआ; क्योंकि वह सुरुचिपूर्ण नहीं थी। पुस्तक तो आ गई थी, अब करना ही क्या था। वे चाहते, तो भाई पर बिगड़ते, पर उन्होंने यह भी नहीं किया। उन्होंने विवेक से काम लिया। उन्होंने रसीद काट दी और बक्स में पुस्तकों का मूल्य रख दिया और सभी पुस्तकों को अपने एक निकट सम्बन्धी के पास भेज दिया। इस प्रकार, उन्होंने अपने भाई की व्यावसायिक मनोवृत्ति के साथ-ही-साथ आदर्श की भी रक्षा की। पर, बाद में भाई को जब मालूम हुआ कि पुस्तक बेची नहीं गई है और खत्रीजी ने अपने पास से पैसे चुकाये हैं, तब उन्हें बहुत ही दुःख हुआ और उन्होंने खत्रीजी से क्षमा माँगी।

खत्रीजी ने एक आन्दोलन ही आरम्भ कर दिया था कि सस्ती एवं अशुद्ध छपी पुस्तकें न बेची जाएँ। वे जहाँ जाते थे, वहीं इस प्रकार का आन्दोलन करते थे। श्रीशारदाप्रसाद भण्डारी ने इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक घटना का उल्लेख किया है : "खत्रीजी एक बार काशी गये और एक हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता की दूकान पर जा धमके। वहाँ कुछ हिन्दी-पुस्तकों को उठा-उठाकर देखने लगे। अभाग्यवश दो-एक पुस्तकों के मुख-पृष्ठ पर ही छापे की कुछ भद्दी भूलें रह गई थीं, जिन्हें देखकर उन्हें क्रोध आ गया और तमककर बोले—'आप हिन्दी की पुस्तकें बेचते हैं या अशुद्ध हिन्दी का प्रचार करते हैं ?' विचारा दूकानदार खत्रीजी की बातों को समझ न सका और उसने नम्रतापूर्वक पूछा—'क्या बात है ?' खत्रीजी ने उन पुस्तकों को इङ्गित कर उनकी अशुद्धियों को बताया। ऐसा मालूम पड़ता था कि खत्रीजी उन अशुद्ध पुस्तकों को पुन: छूकर अपवित्र होना नहीं चाहते थे। विचारे पुस्तक-विक्रेता का सर झुक गया। पता नहीं, शर्म से उन अशुद्धियों के कारण या श्रद्धा से उस हिन्दी के हिमायती खत्रीजी के प्रति। पुस्तक-विक्रेता ने खत्रीजी से नाम पूछा। उन्होंने कहा—'अयोध्याप्रसाद खत्री'। पुस्तक-विक्रेता, जो उनके नाम और ख्याति से परिचित था, बोल उठा—'क्या आप ही बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री हे ?' खत्रीजी के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने कहा—'क्या आपको आज से पहले भी किसी दूसरे अयोध्याप्रसाद खत्री से भेंट हुई थी ?' पुस्तक-विक्रेता हँस पड़ा और बोला कि 'जैसा सुनता था ठीक उसी तरह मैंने पाया—बात-बात में आलोचना और नुक्ता-चीनी।' फल यह हुआ कि उस पुस्तक-विक्रेता ने उन सारी पुस्तकों को, जिनमें अशुद्धियाँ थीं, अपनी दूकान से हटा दिया और खत्रीजी को यह विश्वास दिलाया कि वे पुन: दूकान पर दिखलाई नहीं पड़ेंगी। खत्रीजी ने उन पुस्तकों का मूल्य देना चाहा, पर विचारे पुस्तक-विक्रेता ने अशुद्ध पुस्तकों को बेचकर पैसा लेना उचित नहीं समझा। उसने कहा—'बाबू साहब, अब और शर्मिन्दा न कीजिए।'

शिक्षक

दूकान की स्थिति खराब हो जाने के कारण खत्रीजी पहले तो किसी स्थानीय स्कूल में हिन्दी के शिक्षक हुए, पर बाद में मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत कुढ़हनी माइनर स्कूल में हिन्दी-शिक्षक नियुक्त हुए। हिन्दी ने कुछ ही दिनों पूर्व स्कूलों में प्रवेश पाया था। शिक्षकों के सामने सबसे बड़ा प्रश्न था—पुस्तकों का अभाव। अच्छी पुस्तकें प्रकाशित ही नहीं होती थीं। खत्रीजी ने प्रकाशकों को अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए उत्साहित किया। बच्चों के लिए अच्छी पाठ्य-पुस्तकें हों, इसके लिए उन्होंने आन्दोलन आरम्भ किया। स्वयं उन्होंने 'हिन्दी व्याकरण' लिखा। इसे उन्होंने तबतक प्रकाशित सभी व्याकरणों से सुगम और सुबोध बनाया। खत्रीजी को शिक्षक के रूप में दूसरी बात यह खटकी थी कि कैथी अक्षरों में पाठ्य-पुस्तकें तैयार होती थीं। इसका भी उन्होंने विरोध किया। उन्होंने तत्कालीन लाट के पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा था कि प्राइमरी और मिडल परीक्षा की पाठ्य-पुस्तकें केवल देवनागरी अक्षरों में ही छापी जाएँ। बिहार के शिक्षा-सेवियों ने उन

दिनों एक आन्दोलन छेड़ रखा था कि शिक्षा का माध्यम क्या हो ? इस आन्दोलन के नेता पटना-निवासी मुन्शी राधालाल, छपरा-निवासी श्रीभगवानप्रसाद, जो पीछे सीताराम शरण भगवानप्रसाद रूपकला के नाम से प्रसिद्ध हुए, खड्गविलास प्रेस के स्वामी रामदीन सिंह, बिहार-बन्धु के सम्पादक केशवराम भट्ट, आरा-निवासी शिवनन्दन सहाय तथा मुजफ्फरपुर-निवासी अयोध्याप्रसाद खत्री आदि थे। इनके भी अगुआ थे भूदेव मुखोपाध्याय। उन्होंने सभी की राय लेकर शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के पास एक प्रस्ताव रखा कि 'बिहारी हिन्दू बालक अपनी मातृभाषा हिन्दी, धर्म की भाषा संस्कृत और राज्यभाषा अँगरेजी सीखें और मुसलमानों के लड़के प्रचलित भाषा हिन्दी, धर्म की भाषा अरबी और राज्यभाषा अँगरेजी सीखें।

शिक्षक के रूप में खत्रीजी ने पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन, पाठ्य-पुस्तकों के नागरी-लिपि में मुद्रण एवं शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी की मान्यता के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

वे केवल आन्दोलनकर्त्ता ही नहीं थे। वे एक आदर्श शिक्षक भी थे। वे जानते थे कि वे आगामी भारत के भाग्य-विधाताओं का निर्माण कर रहे हैं। वे उनकी मानसिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक उन्नति चाहते थे। खत्रीजी चाहते थे कि बच्चों के चरित्र की नींव उनकी प्राचीन संस्कृति पर हो। वे शिक्षा और शारीरिक श्रम का समन्वय करना चाहते थे। अयोध्याप्रसाद खत्री को सदैव यह बात खटकती रहती थी कि हिन्दू बच्चों को अपने धर्म-ग्रन्थों का ज्ञान नहीं हो पाता था। अतः, वे साहित्य की शिक्षा के साथ-ही-साथ धर्म की शिक्षा भी देते थे।

कुछ दिनों बाद उन्होंने शिक्षक के पद को भी त्याग दिया, पर अध्यापन-कार्य नहीं छोड़ा। वे मुजफ्फरपुर में सिविलियनों को हिन्दी पढ़ाने लगे। उस समय बिहार में ऐसे बहुत-से सिविलियन थे, जो उनके शिष्य थे। उस समय ऐसा नियम था कि एक निर्धारित समय में अँगरेज सिविलियनों को स्थानीय भाषा की जानकारी प्राप्त कर लेनी होती थी। मुजफ्फरपुर में सिविलियनों के लिए खत्रीजी से बढ़कर दूसरा कोई शिक्षक नहीं मिल सकता था। इसी पढ़ाई के क्रम में किसी सिविलियन से खत्रीजी की बातें सरकारी नौकरी के सम्बन्ध में हुईं। खत्रीजी की शिक्षा इंट्रेंस तक की हुई थी, अतः उन्हें एक लिपिक के पद से अधिक बड़ा पद नहीं मिल सकता था। खत्रीजी ने लिपिक का पद स्वीकार कर लिया।

पेशकार

मुजफ्फरपुर में अयोध्याप्रसाद खत्री 'पेशकार साहब' के नाम से ही पुकारे जाते थे। उस जमाने में कलक्टर का पेशकार बनना भी लोग सौभाग्य समझते थे। तब कलक्टर अँगरेज ही हुआ करते थे, और उनतक लोगों की पहुँच कठिन होती थी। 'पेशकार साहब' ही कलक्टर के पास पहुँचने-पहुँचाने के माध्यम थे। अयोध्याप्रसाद खत्री ने कचहरी में १८८६ ई० में प्रवेश किया और १९०५ ई० की जनवरी तक वहाँ रहें। पहले वे लिपिक रहे,

बाद में लेखापाल हुए। इसके बाद वे कलक्टर साहब के पेशकार हुए। उन दिनों कलक्टर साहब को न तो आज की तरह वैयक्तिक सहायक ही मिलते थे, न गोपनीय सहायक ही। पेशकार को ही वैयक्तिक सहायक और गोपनीय सहायक का काम करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में यह समझा जा सकता है कि पेशकार की महत्ता उन दिनों क्या थी।

अयोध्याप्रसाद खत्री प्रायः १० वर्षों तक 'पेशकार' के पद पर रहे और छह अंगरेज कलक्टरों के साथ काम किया। अयोध्याप्रसाद खत्रीजी की विशेषता थी कि जहाँ वे अपने अधिकारियों को संतुष्ट रख सके, वहीं उन्होंने नौकरी के लिए अपनी आत्मा नहीं बेची। उनके सहयोगी कर्मचारी उनका उतना ही विश्वास करते थे, जितना उनके अधिकारी। ४ जनवरी, १९०५ को जब उनका देहान्त हुआ, तब मुजफ्फरपुर के तत्कालीन कलक्टर, लेविंज ने कहा था कि कोई भी गोपनीय कार्य विश्वास के साथ उनके हाथों में दिया जा सकता था। तत्कालीन कार्यालय-अधीक्षक रूपलाल मेहता ने यह उद्‌गार व्यक्त किया था कि खत्रीजी कलक्टरी के पूरे कर्मचारी-वर्ग के विश्वासपात्र थे।

सरकारी पदाधिकारी के रूप में खत्रीजी की सफलता के कई कारण थे। उनमें कर्त्तव्य-पालन, अनुशासन, समय की पाबन्दी, सुव्यवस्था, गोपनीय बातों को अपने तक रखने की क्षमता और तीक्ष्ण स्मरण-शक्ति उनकी सफलता के मूल कारण थे। इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख मिलता है—खत्रीजी बोर्ड ऑव रेवेन्यू, कलकत्ता, के लिए कोई प्रारूप तैयार कर रहे थे। किसी बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय पर प्रारूप तैयार किया जा रहा था। काफी खोज के बाद प्रारूप के लिए तथ्य जमा किये गये थे। उसी बीच कलक्टर ने दूसरा काम खत्रीजी को दे दिया और साथ-ही-साथ यह भी आदेश दिया कि वह उस दिन ही तैयार हो जाना चाहिए। यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं था, अतः पहले वे जिस काम को हाथ में लिये हुए थे, उसे ही पूरा करने में लग गये। उनके सहयोगियों ने कहा—'कलक्टर साहब का आदेश है, इसलिए वही कार्य पहले होना चाहिए।' खत्रीजी बिगड़ गये, और कहा—'दोनों काम तो कलक्टर साहब का ही है। हमें देखना है, दोनों कामों में कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है।' खत्रीजी ने पहले बोर्ड ऑव रेवेन्यू का प्रारूप ही तैयार किया, और नम्र शब्दों में कलक्टर से कहा—'आज समय हो गया है, कल आपके दूसरे आदेश का पालन होगा।' कलक्टर को मालूम था कि खत्रीजी दूसरे दिन काम पूरा कर देंगे।

खत्रीजी न तो एक मिनट देर कर कार्यालय जाते थे, न कार्यालय के निर्धारित समय से एक मिनट देर कर घर लौटते थे। निर्धारित समय के बीच, जो भी काम उनसे लिया जा सकता था, वे उसे अपनी योग्यता के अनुसार समुचित ढंग से करते थे। खत्रीजी को अनेक गोपनीय बातों की जानकारी रहती थी, जिन्हें वे कभी प्रकट नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख किया जाता है। उनके कोई सम्बन्धी उन दिनों कानूनगो के पद पर थे। उन पर कई अभियोग लगाये गये थे। कलक्टर लेविंज ने उन अभियोगों के सम्बन्ध में स्थानीय जाँच की। जाँच-रिपोर्ट के कागजात उसने खत्रीजी के जिम्मे किये। कलक्टर को जानकारी थी कि जिस अफसर के विरुद्ध जाँच की गई थी, वह खत्रीजी का सम्बन्धी था और उन दिनों खत्रीजी के

ही साथ रहता था। फिर भी, उसने इस विश्वास से उन कागजों को दिया कि खत्रीजी के द्वारा जाँच-रिपोर्ट की गोपनीयता की सुरक्षा बनी रहेगी।

खत्रीजी और हिन्दी

अयोध्याप्रसाद खत्री ने खड़ी बोली के लिए बहुत त्याग किया था। उन्होंने खड़ी बोली के पद्यों के संकलन काफी खर्च करके छपवाया था। खड़ी बोली को प्रतिष्ठित कराने के लिए उन्होंने हस्ताक्षर-संग्रह की युक्ति भी अपनाई थी। वे कवियों को हिन्दी में पद्य-रचना करने के लिए उत्साहित करते थे। श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद वर्मा ने 'सरस्वती', मार्च, १६०५ ई० में, लिखा था कि खड़ी बोली के प्रचार के लिए खत्रीजी ने इतना द्रव्य खर्च किया कि राजा-महाराजा भी कम करते हैं। 'खड़ी बोली का पद्य' का प्रकाशन उन्होंने अपने रुपयों से किया था और उसका बिना मूल्य वितरण उनके निःस्वार्थ त्याग का साक्ष्य है। 'चम्पारन-चन्द्रिका' में खत्रीजी ने एक सूचना दी थी कि जो रामचन्द्र का पद्यबद्ध वर्णन खड़ी बोली के पद्य में करेगा, उसे प्रति पद्य १०) पुरस्कार दिया जायेगा। रामचरितमानस के अनुवाद के लिए भी उन्होंने यह घोषणा की थी कि जो कोई मानस का अनुवाद खड़ी बोली में करेगा, उसे प्रत्येक दोहे और चौपाई के लिए १) पुरस्कार वे देंगे।

उन दिनों ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म के व्यापक प्रचार के लिए खड़ी बोली का सहारा लिया था। जनरल बाप्टिस्ट मिशन सोसाइटी, लन्दन मिशनरी सोसाइटी, चर्च मिशनरी सोसाइटी, अमेरिकन एपिसकोपल मेथोडिस्ट आदि संगठन खड़ी बोली के माध्यम से अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। इन संस्थाओं की पुस्तकें कम मूल्य पर या निःशुल्क बाँटी जाती थीं। स्वामी दयानन्दजी ने भी १८७४ ई० में 'सत्यार्थ प्रकाश' द्वारा अपने विचारों का प्रचार किया था। स्वामी श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भी इन्हीं दिनों अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'सत्यामृतप्रवाह' लिखा था। इन सभी पुस्तकों की भाषा खड़ी बोली थी। खत्रीजी ने भी खड़ी बोली के प्रचार के लिए धर्म का सहारा लिया। दयानन्दजी या ईसाई मिशनरियों ने खड़ी बोली के सहारे धर्म-प्रचार किया, तो खत्रीजी ने धर्म के सहारे खड़ी बोली का प्रचार किया। खत्रीजी मुजफ्फरपुर में ब्राह्मणटोली मुहल्ले में रहते थे। उस मुहल्ले में ब्राह्मणों की संख्या काफी है। उन्होंने उनके बीच यह घोषणा कर दी थी कि जो पंडित अपने यजमानों के यहाँ खड़ी बोली में सत्यनारायण की कथा बाँचेगा, उसे वे प्रत्येक कथा-वाचन के लिए १०) स्वयं देंगे। कथा-वाचन के बाद कथा-वाचक अपने यजमानों से खड़ी बोली में सत्यनारायण कथा-वाचन का प्रमाण-पत्र लेकर आते थे, और १०) लेकर घर वापस जाते थे। उन्होंने कर्मकाण्ड की अनेक पुस्तकों का अनुवाद खड़ी बोली में कराया था और उन्हें निःशुल्क वितरित किया था। उन्होंने हिन्दी के प्रचार के लिए संकेत-पट्टों का हिन्दीकरण आज से ७५ वर्ष पूर्व आरम्भ किया था। वे अपने साथ रंगसाज को लिये जाते थे और अपने पैसे से अँगरेजी भाषा के संकेत-पट्टों का हिन्दीकरण करते थे, और साथ-ही-साथ हिन्दी में जो संकेत-पट्ट थे, उनकी अशुद्धियों की शुद्धि भी कराते चलते थे।

सन् १८७० में हिन्दी स्कूलों में आई। हिन्दी में पुस्तकों की कमी थी। खत्रीजी ने इस काम में भी हाथ बँटाया। इसके पूर्व कैथी-लिपि में पुस्तकें छापी जाती थीं। इसका उन्होंने विरोध किया। उन्होंने बंगाल के लाट के पास एक स्मृति-पत्र भेजा, जिसमें यह अनुरोध किया कि नागरी-लिपि में ही पुस्तकें छापी जायँ। कचहरी की भाषा भी हिन्दी हो, इसके लिए उन्होंने आन्दोलन किया। सन् १८३७ ई० में एक कानून बना था, जिससे देशी भाषा का प्रयोग कचहरियों में होने लगा था। बंगाल-सरकार के मुख्य सचिव ने सदर बोर्ड ऑफ् रेवेन्यू को अपने पत्र, संख्या ६१४, दिनांक ३० जून, १८३३, में लिखा था—"श्रीमान् गवर्नर महोदय इस बात को स्पष्ट रूप से समझा देना चाहते हैं कि केवल यूरोपीय अफसरों के आपस के पत्र-व्यवहार को छोड़कर जो अँगरेजी में हुआ करें, प्रत्येक विभाग में सरकारी काम देशी भाषा में हो।" इसी कानून के अनुसार बंगाल की भाषा बंगाली और उड़ीसा में उड़िया भाषा का प्रचार हुआ। पर, बिहार की भाषा 'हिन्दुस्तानी' मान ली गई। हमारे पूर्वजों को इसके लिए भी आन्दोलन करना पड़ा कि बिहार की भाषा हिन्दी है और हिन्दी का कचहरियों में प्रवेश होना चाहिए। संघर्ष करनेवाले हमारे पूर्वजों में खत्रीजी भी एक थे। खत्रीजी के एक सहकर्मी, बाबू जंगलीलाल, जो आरा के कलक्टर के पेशकार थे, पटना-प्रमण्डल के कमिश्नर के सामने अपने लेखन की त्वरा और सुपाठ्यता की परीक्षा देकर यह प्रमाणित कर दिया था कि नागरी-लिपि सभी गुणों से पूर्ण है। इसी परीक्षा के बाद, सन् १८८१ ई० में, हिन्दी का प्रवेश कचहरियों में हुआ। पर, एक कठिनाई थी। सरकारी कर्मचारियों, अर्जीनवीसों और वकीलों द्वारा हिन्दी का व्यवहार नहीं होता था। कारण यह था कि फारसी भाषा और फारसी लिपि में उनकी शिक्षा हुई थी। पर, अयोध्याप्रसाद खत्री इससे घबरानेवाले न थे। मुजफ्फरपुर-कचहरी में उन्होंने कई दर्जन स्वयंसेवकों को इस काम में लगाया। उन्होंने कुछ ऐसे आवेदन-पत्रों के हिन्दी-प्रारूप बनाये, जो साधारणत: कचहरियों में प्रयुक्त होते थे। बाद में आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा तथा ओल्डहम साहब की कृपा से कुछ आवेदन-पत्रों के प्रारूप हिन्दी में छपकर भी बँटे थे।

उन दिनों हिन्दी-प्रचार के लिए संस्थाएँ स्थापित होती जा रही थीं। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा तथा आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हो चुकी थी। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से उनका सम्बन्ध पुराना था, पर उसके संचालकों से उनका कुछ मतभेद था, जिसके फलस्वरूप खत्रीजी उस प्रतिष्ठा से वंचित रहे, जिसके अधिकारी सभा की दृष्टि में भी वे अवश्य ही माने जाते। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के भवनोत्सव के समय बाबू श्याम-सुन्दरदास का खत्रीजी के प्रति अच्छा रुख नहीं रहा। गुलेरीजी ने सन् १६०५ ई० में एक लेख लिखा था, जो जयपुर से निकलनेवाली एक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उसमें इस घटना का उल्लेख है। बाबू श्यामसुन्दरदास एक बार काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के लिए चन्दा करने मुजफ्फरपुर आये थे। खत्रीजी से शिष्टाचार के नाते भी वे नहीं मिले। फिर भी, खत्रीजी ने, बाबू साहब जिस काम के लिए आये थे, उस काम में परोक्ष रूप से मदद की। खत्रीजी ने मुजफ्फरपुर में इसी प्रकार की एक सभा, 'हिन्दी-प्रचारिणी सभा' स्थापित की। इस सभा ने नागरी और हिन्दी के प्रचार-प्रसार में पर्याप्त योग दिया। खत्रीजी ने अखिल-

भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की नींव भी दी थी। सन् १९०२ ई० में यह सम्मेलन सोनपुर में हुआ था। पं० सकलनारायण शर्मा ने बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से कहा था—"स्वर्गीय अयोध्याप्रसाद खत्री ने उक्त सभा (आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा) को पचास रुपये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन करने के लिए दिये थे। सभा ने आन्दोलन भी किया, पर सफलता न मिली। फिर, बाबू साहब (खत्रीजी) के उद्योग से हरिहर-क्षेत्र में एक छोटा-मोटा सम्मेलन हुआ, पर अधिक दिनों तक नहीं चल सका और उनके स्वर्गवासी हो जाने पर उसकी चर्चा ही बन्द हो गई।.......काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इस प्रश्न को नये सिरे से उठाया था, तथा वही भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की जन्मदात्री बनी, पर इसका आदि जनक मुजफ्फरपुर ही है। यह देखकर उक्त बाबू साहब (खत्रीजी) की आत्मा स्वर्ग में कितनी प्रसन्न होती होगी, वह कल्पना करने में भी आनन्द होता है।"

सन् १८९० से १९०० ई० तक खत्रीजी ने साहित्य से एक प्रकार संन्यास ही ले लिया था। उन्होंने खड़ी बोली और हिन्दी-प्रचार के लिए भगीरथ-प्रयत्न किया था। जब वे अपने परिश्रम एवं आर्थिक व्यय से अपनी सफलता को तौलते थे, तब उन्हें असन्तोष होता था। खत्रीजी साहित्य के लिए भिखारी बन गये थे। जो कुछ उनके पास था, उसका अधिकांश उन्होंने साहित्य-प्रचार में लुटा दिया था। परन्तु, उन्हें वह प्रतिष्ठा भी नहीं मिली थी, जो आज देकर हम धन्य होते हैं। अतः, उन्होंने साहित्यिक संन्यास ले लिया। इस संन्यास की अवधि में उन्होंने साहित्यिक कार्य तो नहीं किया, पर साहित्यिक गति-विधि पर ध्यान रखा। सन् १९०१ ई० में, जब 'सरस्वती' में बाबू श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी-भाषा का इतिहास लिखना आरम्भ किया, तब खत्रीजी फिर साहित्य के मैदान में आ डटे। उनके पुनरागमन पर बाबू श्यामसुन्दर दास ने उन्हें बधाई दी थी और श्रीधर पाठक ने अपने १५ फरवरी, १९०१ ई० के एक पत्र में लिखा था—'आपको कोई नहीं भूला था, पर हिन्दी को इतने दिनों तक कैसे भूले रहे। हर्ष है कि हिन्दी के प्रेम ने आप के चित्त में पुनः स्थान पाया।'

खत्रीजी की इच्छा थी कि हिन्दी-प्रचार के लिए तीन मासिक पत्रिकाएँ निकाली जायँ। २६ फरवरी, १९०१ को इस सम्बन्ध में उन्होंने बाबू श्यामसुन्दर दास को एक पत्र भेजा था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनका इरादा एक नहीं, तीन पत्र निकालने का था—'खड़ी हिन्दी', 'अदालती हिन्दी' और 'तिरहुत'। बताया जाता है कि तिरहुत और खड़ी-हिन्दी के लिए उन्होंने 'डेक्लरेशन' भी ले लिया था। परन्तु, वे यह योजना, कार्य-रूप में परिणत कर ही रहे थे कि उनका देहान्त हो गया। वे हिन्दी का इतिहास भी लिखना चाहते थे, पर इसका आरंभ भी वे न कर पाए।

खत्रीजी का व्यक्तित्व-विश्लेषण

संसार-प्रसिद्ध साहित्यकार वेल्स ने विश्व के महामानवों के सम्बन्ध में लिखने का एक बार निश्चय किया था। उसने अपने लिए महामानव के सम्बन्ध में एक धारणा

बना ली थी। उसकी धारणा थी कि हम उसे ही महामानव की संज्ञा देंगे, जिसकी कृति का अधिक प्रभाव, अधिक लोगों पर अधिक समय तक पड़े। उसी पूर्व-निश्चित धारणाओं को लेकर उसने विश्व-इतिहास का मन्थन किया था। बाद में चलकर वही धारणा महामानव की कसौटी बन गई। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पत्ति का जिक्र करते हुए कहा है—"निडरपन, शुद्ध सात्त्विक वृत्ति, ज्ञानयोग में व्यवस्था, दान, तप, यज्ञ, स्वाध्याय, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, उदारता, सभी प्राणियों में दया, तृष्णा न रखना, अनुचित काम में लज्जा, गम्भीरता, तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धता, द्रोह न करना और अहंकार का अभाव—ये दैवी सम्पत्तिवाले पुरुषों में गुण होते हैं।" जब इन दोनों कसौटियों पर खत्रीजी को कसते हैं, तब वे खरे उतरते हैं।

अयोध्याप्रसाद खत्री अनुकूल परिस्थिति में न तो अधिक प्रसन्न होते थे और न प्रतिकूल परिस्थिति से वे घबड़ाते थे। खड़ी बोली का आन्दोलन जब उन्होंने आरम्भ किया, तब उनका काफी विरोध हुआ। विरोध की गति काफी तीव्र थी। उनके सहयोगियों में घबराहट आ गई। उनके प्रबल सहयोगी श्रीमहेश नारायण ने उनसे आग्रह किया था कि खड़ी बोली का दूसरा भाग प्रकाशित नहीं किया जाय। उन्होंने यह सुझाव दिया था कि खड़ी बोली के विरोध में जो विषाक्त वायु-मण्डल तैयार हो गया है, उसे शान्त हो जाने दें, इसके बाद ही खड़ी बोली का दूसरा भाग प्रकाशित किया जाय। पर, खत्रीजी क्या माननेवाले थे। उन्होंने अपने सहयोगी युद्धविक्रम मारूक से कहा था—'विरोध से काम में प्रगति आती है। विरोधियों के विरोध से हमें घबराना नहीं चाहिए।' उनकी धारणा थी कि दूसरे उनके सम्बन्ध में क्या विचार रखते हैं, उसे न सुनें और न उस पर विचार करें। अपने उद्देश्य के लिए हमें क्या करना है—यही हमारा विचार-विषय हो।

अयोध्याप्रसाद खत्री सत्य के पारखी थे। सत्य के पारखी कटु आलोचक होते हैं। सत्य अप्रिय लगता है। पर, बाद में वही ठीक भी होता है। बड़े-से-बड़े लोगों की वे मुँह पर आलोचना करते थे। अपने और पराये सभी की एक दृष्टि से आलोचना करते थे। उनकी आलोचनात्मक प्रवृत्ति के कारण लोग उनसे दूर भागते थे। वे लोगों के बीच रहना उतना पसन्द नहीं करते थे। वे समझते थे कि जितना ही ये लोगों के बीच रहेंगे, उतना ही उनकी कमजोरियों को वे देखेंगे। अतः, उनसे वे दूर ही रहना चाहते थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मार्च, १९०५ ई० की सरस्वती में लिखा था—'बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री जिसे स्वयं सत्य समझते थे, उसे दूसरों के लिए अप्रिय होने पर भी कह डालते थे। उनकी आलोचना से घर-बाहर का कोई आदमी नहीं बचता था।' उनकी इस प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए द्विवेदीजी ने लिखा था—'आप (खत्रीजी) लोगों की खानगी चिट्ठियों तक को छाप-छापकर उनकी गलतियाँ बतलाते थे।' खत्रीजी ने वेष-भूषा, बोल-चाल, आहार-विहार, आचार-विचार, लिखने-पढ़ने, चलने-फिरने सभी के लिए आदर्श बना लिये थे। उनकी कसौटी पर जो खरे नहीं उतरते थे, वे चाहे उनके अपने ही क्यों न हों, उनकी आलोचना वे अवश्य करते थे। उन्होंने केवल पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० प्रतापनारायण मिश्र और

राधाचरण गोस्वामी का ही विरोध नहीं किया; अपने समर्थक बाबू श्यामसुन्दर दास, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक और महेशनारायण तक की भी आलोचना की।

किन्तु खत्रीजी आलोचक-मात्र नहीं थे, वे गुणग्राहक भी थे। वे अतिथि-सत्कार करने में भी अपना सानी नहीं रखते थे। उनके समय में मुजफ्फरपुर में जो कोई भी साहित्यकार या सन्त आया, वह छोटा हो या बड़ा, वे उसका हृदय से सत्कार करते थे। एक बार पंडित श्रीधर पाठक, जो आबकारी विभाग के अधिकारी थे, अपने सरकारी कार्य के सम्बन्ध में मुजफ्फरपुर पधारे हुए थे। उनका खत्रीजी ने राजाओं के लिए भी दुर्लभ सम्मान किया था। यह उचित भी था। यदि पं० श्रीधर पाठक खड़ी बोली-काव्य के सम्राट् थे, तो खत्रीजी चाणक्य के समान थे, जिनके प्रयास से ही खड़ी बोली का साम्राज्य स्थापित हुआ था।

अयोध्याप्रसाद खत्री समय के बड़े पाबन्द थे। वे अगर किसी को समय देते थे, तो उसका पालन भी अवश्य करते थे। कहा जाता है कि पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने एक बार अपने निवास-स्थान पर साहित्यकारों की एक गोष्ठी बुलवाई थी। खत्रीजी ने व्यासजी को यह वचन दिया था कि वे उसमें भाग लेंगे। सभा आरम्भ होने के पूर्व बड़े जोर का आंधी-पानी आया और मार्ग जलमग्न हो गया। व्यासजी ने सोचा, सभा में कोई नहीं आयेगा। पर उन्होंने देखा, सभा के लिए जो निर्धारित समय था, उसके पाँच मिनट पूर्व ही अयोध्याप्रसाद खत्री वहाँ पहुँचे हुए हैं। खत्रीजी को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति उसमें भाग लेने के लिए नहीं आया, इसलिए बैठक न हो सकी।

खत्रीजी समय का मूल्य जानते थे। वे एक मिनट समय भी व्यर्थ नहीं खोते थे। वे समय पर कचहरी जाते थे और समय पर घर वापस आते थे। कचहरी से लेकर ब्राह्मण-टोली मुहल्ले के मार्ग के लोगों के लिए वे घड़ी बन गये थे। उन्हें देखकर लोग समय का सही अनुमान कर लेते थे। कचहरी से लौटने के बाद वे हिन्दी की चर्चा में लग जाते थे। उनके जो मित्र उनसे मिलने के लिए आते थे, उनसे पहले वे हिन्दी के सम्बन्ध में ही बातें करते थे।

खत्रीजी की इन विशेषताओं पर हम विचार करते हैं, तो स्पष्ट हो जाता है कि एक साधारण मध्यवित्त परिवार का व्यक्ति त्याग, तप एवं साधना के आधार पर महापुरुष बन सका था। खत्रीजी किसी के कन्धे पर बैठकर नहीं, अपने कर्म से बड़े हुए थे। ऐसा लगता है कि खत्रीजी ने दैवी शक्ति लेकर और किसी दैवी प्रेरणा से हिन्दी का निर्माण एवं विकास किया था।

—उमाशंकर

खड़ी बोली के प्रवर्त्तक स्व० खत्रीजी

कुछ लम्बा-सा, पर दुबला-पतला शरीर, लम्बी नाक, बड़ी-बड़ी ओजपूर्ण आँखें कुछ धँसी हुईं; चिड़चिड़ा स्वभाव, जल्दी-जल्दी बोलने की आदत, कुछ तुतलाहट की ध्वनि, बात-बात में नुक्ताचीनी करने की प्रवृत्ति—

साधारण पहनावा, अस्त-व्यस्त कपड़े, अधिकतर पैर में स्लीपर, कभी-कभी जूते, पर कचहरी जाते समय शमला, अचकन और उसपर चोंगा।

यह चित्र है सरस्वती के वर-पुत्र अयोध्याप्रसाद खत्री का, जिसने हिन्दी में 'खड़ी बोली' की धारा बहाकर स्थापित किया उसके तट पर अनेक तीर्थों को,—'साकेत', 'पंचवटी' आदि !

× × ×

सन् १८५७ भारत के इतिहास में अपना एक अलग स्थान रखता है। देश में विद्रोह की आग उसी साल भड़की थी। देश को स्वतंत्र करने का व्रत शूरमाओं ने उसी साल लिया था और उसी साल जन्म लिया खड़ी बोली का प्रवर्त्तक अयोध्याप्रसाद खत्री ने, विद्रोह की आग लिये, भारत को स्वतंत्र करने के उद्देश्य से, हिन्दी-कविता को एक नई दिशा देने के लिए।

खत्रीजी लड़कपन से क्रोधी स्वभाव के थे। मध्यवित्तवाले परिवार में दो भाइयों के बीच उनका जन्म हुआ था। घरवालों ने उनके पढ़ने-लिखने का यथासाध्य प्रबन्ध कर दिया था। पर, लगन तो थी हिन्दी के लिए, यद्यपि फारसी, उर्दू और अंगरेजी का भी अभ्यास कराया गया। जितना प्रेम उन्होंने हिन्दी सीखने की ओर दिखलाया और जितनी जल्दी उन्होंने हिन्दी पढ़ी, उसे देखकर सभी को आश्चर्य हुआ।

खत्रीजी को आरम्भ से ही कविता पढ़ने का शौक था। वे व्रजभाषा की कविताओं को पढ़ते तो थे, पर उसकी भाषा और शब्द-विन्यास पर बराबर ही सोचते रहते, उसे सरल बनाने पर सदा विचार करते और शुद्ध हिन्दी के प्रचार के लिए अथक परिश्रम करते थे। मिश्र-बन्धुओं ने खत्रीजी के सम्बन्ध में लिखा है कि उन्होंने यावज्जीवन खड़ी बोली का पद्य में प्रचार किया और छन्दों से व्रजभाषा उठा देने का प्रयत्न किया।

कौन जानता था कि सुदूर मुजफ्फरपुर नगर का एक साधारण युवक हिन्दी-भाषा में 'क्रान्ति' ला देगा, जो 'क्रान्ति' हिन्दी को नवीनता देगी और देगी प्रोत्साहन वर्त्तमान हिन्दी के महाकाव्यों के रचयिताओं को।

खत्रीजी द्वारा लाई गई 'क्रान्ति' अक्षरशः सफल हुई। हिन्दी-भाषा और राष्ट्र को 'राष्ट्रकवि' मिला, महाकाव्य मिले और खड़ी बोली की धारा 'मन्दाकिनी' जैसी शुभ्र और

पवित्र हुई और आज उसी के पुनीत तट पर बैठकर हजारों-लाखों नर-नारी भगवती भारती की अर्चना में संलग्न हैं।

'हिमालय' भी अपनी गाथा आज खड़ी बोली में ही सुन रहा है।

× × ×

खत्रीजी ने सोचा था कि अध्यापक का पद सँभालकर वे हिन्दी की अधिक सेवा कर सकेंगे, अतः उनकी नियुक्ति एक अध्यापक के पद पर हुई। पर, जिस काम के लिए उन्होंने नौकरी की थी, उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्होंने उक्त पद से त्यागपत्र दिया और स्थानीय कलक्टरी में एक किरानी के पद पर नियुक्त हुए। पीछे वे मुजफ्फरपुर के कलक्टर के पेशकार हुए।

अपना काम करने में पूरे चौकस—समय पर कचहरी जाना और आना; सुबह-शाम—बहुत रात बीते तक नगर में हिन्दी का अलख जगाना; हिन्दी और खड़ी बोली की चर्चा—यही उनकी दिनचर्या थी।

उन दिनों कलक्टर, एस्० डी० ओ० तथा अन्य उच्चपदाधिकारी 'गोरे साहब' ही होते थे—फाइलों में अँगरेजी भाषा का ही व्यवहार होता था। पर, खत्रीजी जैसे हिन्दी-हिमायती के लिए तो यह धर्म-संकट था—गोरे साहबों से वे प्रयत्न कर हिन्दी में ही बोलते और यदि वे नहीं समझते, तो अँगरेजी में अनुवाद कर बातें समझाते थे। परन्तु, उनकी सदैव यह चेष्टा रहती थी कि 'साहब' को भी हिन्दी का ज्ञान प्राप्त हो—और कभी-कभी किसी बेसुरे अँगरेज से तो 'हिन्दी-प्रेम' के लिए उन्हें झड़प भी खानी पड़ती थी। किन्तु, इन 'झड़पों' की तनिक भी पर्वाह न कर वे अपने पथ पर चलते रहे।

× × ×

जिन लोगों ने शमला-अचकन और चोंगा से लैस, कभी-कभी चाँदी की कमानीवाले चश्मे को नाक पर लटकाये—खत्रीजी की इस सौम्य मूर्त्ति को, दमड़ी मिस्त्री द्वारा निर्मित इक्के पर—कुछ अस्तव्यस्त फाइलों को लादे, गम्भीर मुद्रा में बैठे, पैर ऊपर इक्के पर रखे, नगर की सड़कों से गुजरते देखा है, वे उसे भूल नहीं सकते। मालूम पड़ता था कि खत्रीजी किसी घोर चिन्ता में निमग्न हैं और कहीं तूफान बरपा होनेवाला है। 'काजीजी दुबले क्यों, शहर के अन्देशे से'—यह कहावत खत्रीजी पर अक्षरशः चरितार्थ होती थी।

× × ×

हिन्दी में कविता की अपनी भाषा हो—व्रजभाषा से दूर, यह लगन थी खत्रीजी के हृदय में। भारती ने उन्हें बल दिया, वाणी दी और उन्होंने 'खड़ी बोली' को एक रूप दिया। हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य एवं काव्य-ग्रन्थ और कविताएँ खत्रीजी की घोर तपस्या के फल हैं।

खड़ी बोली के आन्दोलन ने हिन्दी-संसार में एक तहलका मचा दिया था। व्रजभाषा के बड़े-बड़े विद्वानों ने इसका घोर विरोध किया था। व्रजभाषा के अनेक महारथियों ने खत्रीजी को पत्र लिखे और उनमें खड़ी बोली के आन्दोलन की विफलता पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया,

पर वह क्रान्ति-पुत्र अपनी जगह से विचलित नहीं हुआ और पत्र लिखनेवालों को फटकार-फटकारकर उनका पोल खोलने लगा। अन्त में लोगों ने उनके पास लिखना छोड़ दिया। कारण, खड़ी बोली आन्दोलन का प्रवर्त्तक सारी विघ्न-बाधाओं को झेलता हुआ माँ सरस्वती के मन्दिर की ओर बढ़ता ही जा रहा था—अपनी अविचल आस्था, लगन और उत्साह के साथ।

खत्रीजी ने 'खड़ी बोली आन्दोलन' नामक एक पुस्तिका छपवाई और उसे विना मूल्य देश में वितरित किया और जब वे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के गृहप्रवेशोत्सव में आमन्त्रित होकर काशी गये, तब उन्होंने उक्त पुस्तिका का खूब वितरण किया और उसकी प्रतियाँ 'मिश्रबन्धुओं' को भी दीं, जिसका उल्लेख मिश्रबन्धु-विनोद में भी मिलता है।

खत्रीजी जिससे भी मिलते थे, खड़ी बोली के विषय में बातचीत करते थे, और खड़ी बोली का प्रचार उनके जीवन का उद्देश्य था। मिश्रबन्धुओं ने लिखा था—'ऐसे उत्साही पुरुष बहुत कम देखने में आते हैं।' हिन्दी में व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव कर खत्रीजी ने संवत् १९३४ वि० में एक व्याकरण-ग्रन्थ की भी रचना की थी।

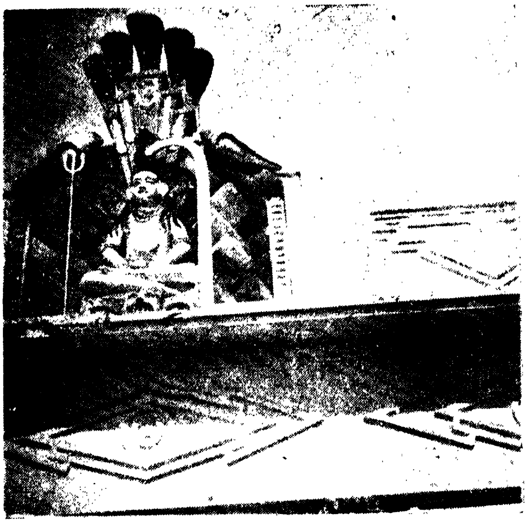
× × ×

खत्रीजी हिन्दी में लिखे 'अशुद्ध' साइनबोर्डों को देख नहीं सकते थे। मुजफ्फरपुर नगर में उन दिनों बिजली की रोशनी न थी, फिर भी कचहरी से लौटते समय नगर की विभिन्न सड़कों की दूकानों पर लगे 'साइनबोर्डों' का सावधानी से निरीक्षण करते थे।

जहाँ भी किसी अशुद्ध साइनबोर्ड पर नजर पड़ जाती, तुरत इक्के से उतर पड़ते, दूकानदार से साइनबोर्ड की अशुद्ध हिन्दी को शुद्ध करने की प्रार्थना करते और यदि उसका रुख प्रतिकूल होता, तो उसकी आज्ञा लेकर अपने खर्च से अपने पेंटर द्वारा शुद्ध कराकर उसे पुनः टँगवा देते थे।

कलक्टर साहब के पेशकार होने के नाते कभी-कभी तो दूकानदारों के लिए—'अशुद्धि को शुद्ध करा देना'—यही कहना काफी था। खत्रीजी दूकानदारों को साइनबोर्ड की न केवल गलतियाँ ही बता देते थे, पर स्वयं अपने हाथों से लिखकर क्या शुद्ध-रूप होगा—दे देते थे। उनकी आँखें बराबर सचेष्ट रहती थीं और अशुद्धि शुद्ध हुई या नहीं, इसकी खबर लेती रहती थीं। मुजफ्फरपुर नगर के एक ख्यातनामा वैद्य थे—राजवैद्य पण्डित द्रव्येश्वरनाथजी, जो खत्रीजी के एक अन्तरङ्ग मित्र थे। खत्रीजी उनके यहाँ अक्सर जाते—खड़ी बोली के आन्दोलन की चर्चा चलाते और रात होने पर घर वापस आ जाते थे।

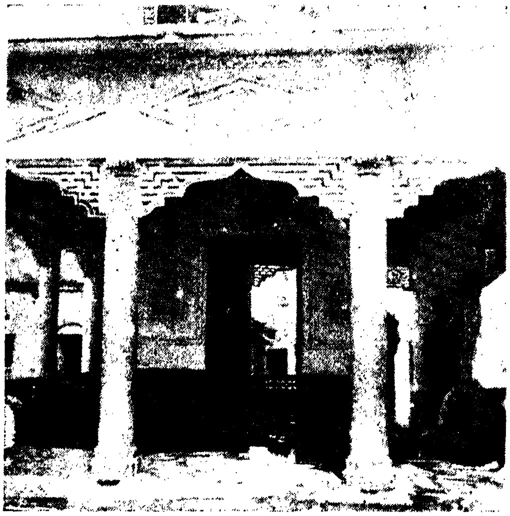
एक दिन की बात है कि वैद्यजी ने दमे की दवा का एक साइनबोर्ड बनवाया, जिसमें पेण्टर की भूल से कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं। उसी दिन संध्या समय खत्रीजी कचहरी से वापसी वैद्यजी के यहाँ आये और दो-एक सीढ़ियों पर चढ़े ही होंगे कि उनकी दृष्टि उक्त साइनबोर्ड पर पड़ी। फिर क्या था, खत्रीजी उल्टे पाँव सड़क पर मौजूद थे। आँखें लाल हो रही थीं। वे गुस्से में सामनेवाली सड़क पर दस डेग आगे जाते और पुनः लौटते, उसी बोर्ड को घूरते हुए। खत्रीजी को सड़क पर चक्कर काटते हुए देखकर वैद्यजी ने कहा—'पेशकार साहब,



खत्रीजी द्वारा निर्मापित और स्थापित
शिवालय का कलश



खत्रीजी के मन्दिर का पूरा दृश्य



खत्रीजी के मन्दिर का नीचेवाला भाग



खत्रीजी के मन्दिर का नीचे से
ऊपर तक का भाग

क्या बात है ? आइए !' उन्होंने कहा---'क्या आऊँ, जब आप जैसा व्यक्ति भी हिन्दी की हत्या करता है। आप इस बोर्ड की अशुद्ध हिन्दी शुद्ध कीजिए, अन्यथा आज से आपके यहाँ आना-जाना बन्द।' बोर्ड में लिखा था—'दम्मे कि अकसिर अच्छा दबा।' वैद्यजी ने गलती महसूस की और बिगड़ती परिस्थिति को सँभालने की इच्छा से बोर्ड को फौरन ही उतरवा दिया। तब खत्रीजी हाँफते हुए ऊपर आये और धम्म से एक कुर्सी पर बैठ गये। पर, उनके चेहरे पर हँसी की रेखा थी, मालूम पड़ता था, जैसे कोई योद्धा लड़ाई के मैदान से विजयी होकर आया हो।

दूसरे दिन बोर्ड का शुद्ध रूप था। खत्रीजीने स्वयं उसे अपने हाथों से टाँग दिया। इसलिए नहीं कि वैद्यजी की दवा खूब बिके, पर इसलिए कि अशुद्ध हिन्दी का प्रचार न हो।

यह था खत्रीजी का अगाध हिन्दी-प्रेम।

खत्रीजी का स्वभाव शुरू से ही आलोचक-जैसा था। खाने-पीने, लिखने-पढ़ने और बोलचाल में भी विना आलोचना किये उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। उनकी इस प्रकृति को पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'खत्रीजी की नुक्ताचीनी करने की प्रवृत्ति' कहा है।

× × ×

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास उन दिनों मुजफ्फरपुर जिला स्कूल में संस्कृत और हिन्दी के अध्यापक थे। व्यासजी एक घंटे में १०० श्लोक बनाते थे। आशुकवि थे, अतः उन्हें 'घटिकाशतक' एवं 'शतावधान' की उपाधियाँ मिली थीं। व्यासजी ने मुजफ्फरपुर से हिन्दी में 'पीयूष-प्रवाह' नामक एक मासिक पत्र निकाला था। मुखपृष्ठ पर छपा था—'पीयूप प्रवाह मासिक'। व्यासजी उक्त पत्र का एक अंक लेकर खत्रीजो के पास उनकी सम्मति के लिए आये। खत्रीजी ने अंक हाथ में लेते ही कहा—'मैं अशुद्ध अंक पर अपनी सम्मति नहीं देता।' व्यासजी, हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् थे, पर बात उनकी समझ में नहीं आई। खत्रीजी ने चिड़चिड़ाते हुए स्वर में कहा—'पीयूप का भी कहीं प्रवाह हुआ है और वह भी मासिक ?' व्यासजी हँसने लगे और उन्होंने शुद्ध किया—'पीयूष-प्रवाह' मासिक पत्र।

छोटी-छोटी बातों से भी हिन्दी का कितना अहित हो सकता है, यह खत्रीजी समझते थे और उन्हें दूर करने की सतत चेष्टा करते रहते थे।

× × ×

खत्रीजी धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे, शिव के बड़े भक्त थे। उन्होंने शिवजी के एक मन्दिर की स्वयं स्थापना की थी और वह वही मन्दिर है, जिसका त्रिशूल कुछ वर्ष पहले हिलने लगा था और हजारों की संख्या में नर-नारियों ने जाकर स्वयं उसे आँखों देखा और पूजा की। अब भी उस मन्दिर का त्रिशूल कभी-कभी हिलता दिखाई पड़ता है।

सतुआनी (मेष-संक्रान्ति) और तिल-संक्रान्ति (मकर-संक्रान्ति) जैसे पर्वों पर जो ब्राह्मण उनके घर आते, उनकी बड़ी आवभगत करते, सत्तू-चूड़ा, तिलवा और दक्षिणा से उनका सत्कार करते और यदि उनके पुरोहित उक्त पर्वों पर न आ सकते, तो वे उनके घर जाकर सामान दे आते थे। पर, उनलोगों से बराबर यही प्रार्थना करते थे कि वे सत्यनारायण

भगवान् की कथा शुद्ध हिन्दी में कहा करें और बम्बई से प्रकाशित 'सत्यनारायण भगवान' की छपी पोथियों के हिन्दी-अर्थ को बड़े चाव से शुद्ध कर दिया करते थे ।

यदि कथा कहते समय पण्डितजी से भाषा की भूल हो जाती थी, तो खत्रीजी उसे तत्क्षण ही शुद्ध कर देते थे ।

× × ×

कुछ दिनों के लिए खत्रीजी ने हिन्दी-संसार से संन्यास ले लिया, पर खड़ी बोली के आन्दोलन ने अपना रूप पकड़ लिया था—

और, शायद खत्रीजी दूर से उसकी प्रगति देखना चाहते थे ।

सन् १९०५ ई० में मुजफ्फरपुर में भीषण प्लेग हुआ और खड़ी बोली के प्रवर्त्तक और हिन्दी-पुजारी खत्रीजी उसके शिकार हुए और ४ जनवरी (१९०५ ई०) को उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग किया ।

× × ×

खत्रीजी की मृत्यु से हिन्दी-संसार को गहरा धक्का लगा । समवेदना और सहानुभूति के अनेक पत्र उनके पुत्र जयनारायणप्रसाद खत्री के पास आये । पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में शोक-सूचक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी और मिश्रबन्धुओं ने लिखा—"खत्रीजी के अकाल स्वर्गवास से खड़ीबोली के आन्दोलन को बड़ी हानि पहुँची । इस आन्दोलन को पूर्ण बल के साथ पहले-पहल इन्होंने उठाया । आपने इसमें इतना उत्साह दिखाया कि आपको देखते ही खड़ी बोली की याद आ जाती है ।"

—शारदाप्रसाद भण्डारी

परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी। मू० ३·२५।

२. यूरोपीय दर्शन—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। मू० ३·२५।

३. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। मू० ६·५०।

४. विश्वधर्म-दर्शन—श्रीसाँवलियाविहारीलाल वर्मा। मू० १३·५०।

५. सार्थवाह—डॉ० मोतीचन्द्र। १०० ऐतिहासिक चित्र। मू० ११·००।

६. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डॉ० सत्यप्रकाश। मू० ८·००।

७. संतकवि दरिया : एक अनुशीलन—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। मू० १४·००।

८. काव्यमीमांसा (राजशेखर-कृत)—अनु० स्व० पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत। मू० ६·५०।

९. श्रीरामावतार शर्मा-निबन्धावली—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। मू० ८·७५।

१०. प्राङ्मौर्य बिहार—डॉ० देवसहाय त्रिवेद। मू० ७·२५।

११. गुप्तकालीन मुद्राएँ—स्व० डॉ० अनन्त सदाशिव अलतेकर। मू० ६·५०।

१२. भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी। मू० १३·५०।

१३. राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त—श्रीगोरखनाथ सिंह। मू० १·५०।

१४. रबर—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा, एम्० एस्-सी०। चित्र ६१। मू० ७·५०।

१५. ग्रह-नक्षत्र—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस्०। मू० ४·२५।

१६. नीहारिकाएँ—डॉ० गोरखप्रसाद (प्रयाग-विश्वविद्यालय)। मू० ४·२५।

१७. हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह। मू० ३·००।

१८. ईख और चीनी—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा। चित्र १०४। मू० १३·५०।

१९. शैवमत—मूल लेखक और अनुवादक डॉ० यदुवंशी। ८.००।

२०. मध्यदेश : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा। मू० ७·००।

२१-२२. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण—(पहला और दूसरा खण्ड) सं० डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। प्रत्येक का मू० २·५०।

२३-२६. शिवपूजन-रचनावली—आचार्य शिवपूजन सहाय (चार खंडों में)। मू० क्रमशः ८·७५; ६·००; १०·००; ८·५०।

२७. राजनीति और दर्शन—डॉ० विश्वनाथप्रसाद वर्मा। मू० १४·००।

२८. बौद्धधर्म-दर्शन—स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव। पृ० ८५०। मू० १७·००।

२९-३०. मध्य एसिया का इतिहास—(दो खंडों में) महापंडित राहुल सांकृत्यायन। प्रथम खण्ड मू० १२·२५। द्वितीय खण्ड ८·५०।

३१. दोहाकोश—मूल कवि : बौद्धसिद्ध सरहपाद। पुनरनुवादक—महापंडित राहुल सांकृत्यायन। मू० १३·२५।

३२. हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा। मू० ११·२५।

३३. रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव। मू० १०·२५।

३४. अध्यात्मयोग और चित्त-विकलन—स्व० वेङ्कटेश्वर शर्मा। मू० ७·५०।

३५. **प्राचीन भारत की सांग्रामिकता**—पं० रामदीन पाण्डेय। मू० ६·५०।

३६. **बाँसरी बज रही**—श्रीजगदीश त्रिगुणायत। मू० ८·००।

३७. **चतुर्दश भाषा-निबन्धावली** —पृ० १८४। मू० ४·२५।

३८. **भारतीय कला को बिहार की देन**—डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह। मू० ७·५०।

३९. **भोजपुरी के कवि और काव्य**—श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह। मू० ५·७५।

४०. **पेट्रोलियम**—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा। चित्र ४०। मू० ५·५०।

४१. **नीलपंछी**—(मूल लेखक मारिस मेटरलिंक)। अनु० डॉ० कामिल बुल्के। मू० २·५०।

४२. **लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् मानभूम एण्ड सिंहभूम**। मू० ४·५०।

४३. **षड्दर्शन-रहस्य**—पं० रंगनाथ पाठक। मू० ५·००।

४४. **जातक-कालीन भारतीय संस्कृति**—श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी'। मू० ६·५०।

४५. **प्राकृत भाषाओं का व्याकरण**—मूल ले० श्रीरिचर्ड पिशल। अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी। पृ० १००४। मू० २०·००।

४६. **दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा**—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन। मू० ६·००।

४७. **भारतीय प्रतीक-विद्या**—डॉ० जनार्दन मिश्र। पृ० ६१२। मू० ११·००।

४८. **संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय**—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। मू० ५·५०।

४९. **कृषिकोश (प्रथम खण्ड)**—सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद। मू० ३·००।

५०. **कुवँरसिंह-अमरसिंह**—अनु० पं० छविनाथ पाण्डेय। मू० ५·००।

५१ **मुद्रण-कला**—पं० छविनाथ पाण्डेय। मू० ७·२५।

५२. **लोक-साहित्य : आकर-साहित्य-सूची**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। मू० ००·५० न.पै.।

५३. **लोककथा-कोश**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। मू० ००·३२ न०पै०।

५४. **लोकगाथा-परिचय**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। मू० ००·२५ न०पै०।

५५. **बौद्धधर्म और बिहार**—पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'। ७७ दुर्लभ चित्र। मू० ८·००।

५६. **साहित्य का इतिहास-दर्शन**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। मू० ५·००।

५७. **मुहावरा-मीमांसा**—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त। मू० ६·५०।

५८. **वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति**—म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। मू० ५·००।

५९. **पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली**— मू० ४·५०।

६०-६१. **प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण (खण्ड ३-४)**—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। मू० १·२५ और १·००।

६२. **हिन्दी-साहित्य और बिहार (बिहार का साहित्यिक इतिहास : सातवीं शती से अठारहवीं शती तक)**—सं० आचार्य शिवपूजन सहाय। मू० ५·५०।

६३. **कथा-सरित्सागर**—मूल लेखक महाकवि सोमदेव भट्ट। अनु० स्व० पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत (प्रथम खण्ड; षष्ठ लम्बक तक) पृ० ८४६। मू० १०·००।

६४. **सदलमिश्र-ग्रन्थावली**—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। मू० ५·००।

६५. **भारतीय अब्दकोश**—सं० गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ। मू० ५·००।

** उपर्युक्त प्रत्येक सजिल्द पुस्तक पर तिरंगा नयनाभिराम आवरण है।*